पुराणेतिवृत्तम्
PURĀṆETIVṚTTAM

पुराणों में विविध मत-सम्प्रदाय और स्थापत्य-कला

डॉ. हर्षवर्धन सिंह तोमर

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri
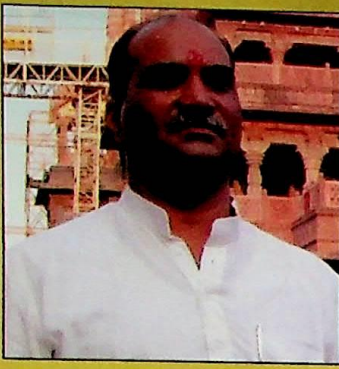
भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अमूल्य निधि पुराणवाङ्मय है। यह हमारे इतिहास एवं संस्कृति के स्वरूप बोध के लिए प्रमुख तत्वों में मुख्य माना गया है। इस राष्ट्र के यथार्थ अवबोध हेतु भारतीय जनमानस भारत के इतिहास एवं संस्कृति के प्रति सश्रद्ध दृष्टि से पुराणों के प्रति आकर्षित हो रही है। पुराणों की अमृतधारा में भारतीय गौरव अपने पूर्ण वैभव के साथ परिलक्षित होता है। लोककल्याण एवं बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय के अनेक विषय पुराणों में समाविष्ट है। भारतीय समाज पुराणों के माध्यम से ही अपने यशस्वी, तेजस्वी पूर्वजों की यशोगाथा का, उनकी अमर पुण्य स्मृतियों का यशोगान करके स्वाभिमान से परिपूर्ण होकर अपनी परंपरा के संरक्षण में तत्पर हो जाता है। पुराणों के माध्यम से ही हमारे महापुरुषों, ऋषियों, आचार्यों तथा पूर्वजों का इतिवृत्त हमारे राष्ट्रीय स्मृति में व्याप्त होकर भारत के जनमानस में प्रचलित है। यही कारण है कि हमारे पूर्वजों के द्वारा काल के उस अलक्षित क्षण में जहाँ से सृष्टि का आर्विभाव हुआ वहाँ सबसे पहले पुराण वाङ्मय की स्थापना कर दी गयी थी। इतिहास परंपरा ने वैदिक ज्ञान के गूढ़ एवं दुर्गम तत्वों को साधारण भाषा में कथा, प्रवचन, परंपरा के माध्यम से भारत के जन-जन तक पहुँचाया। इसी ने प्रत्येक भारतीय को अपने पुरुषार्थ सिद्धि के लिए श्रेष्ठतम आचरणों को आख्यानों एवं उपाख्यानों के द्वारा लोकहृदय में अवतरित करा दिया। इसलिए पुराणवाङ्मय भारतीय समाज के धार्मिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक, वैयक्तिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक आदि का लोकसम्मत विश्वकोश ही है। इस राष्ट्र की चाहे राष्ट्रीय परंपरायें हों या सांस्कृतिक; सामाजिक हो या धार्मिक इन्हें अक्षुण्ण बनाये रखने में पुराणों के महान योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। हमारे राष्ट्र की सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक परंपराओं के अमूल्य तत्त्वों को प्रकाशित करने वाला यह वाङ्मय हमारी राष्ट्र-अराधना के ग्रंथ हैं।

डॉ० बालमुकुन्द पाण्डेय

(राष्ट्रीय संगठन सचिव)
अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना
बाबा साहेब आपटे-स्मृति भवन, 'केशव-कुञ्ज',
झण्डेवाला, नयी दिल्ली-110 055
मो. : 9212447876
ई-मेल : balmukund23@gmail.com
वेबसाइट : www.abisy.org

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पुराणेतिवृत्तम्

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पुराणेतिवृत्तम्

PURĀṆETIVṚTTAM

संपादक :

डॉ० हर्षवर्धन सिंह तोमर

संपादक-मण्डल :

डॉ० देवेन्द्र वर्मा

डॉ० एकता व्यास

डॉ० रत्नेश त्रिपाठी

डॉ० पूनम पाराशर

प्रकाशन-विभाग

अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नयी दिल्ली

एवं

प्रशासक, श्रीमहाकालेश्वर मन्दिर प्रबन्ध समिति, उज्जैन (म०प्र०)

के संयुक्त तत्वावधान में प्रकाशित

2016

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

PURĀṆETIVṚTTAM

Edited by Dr. Harshvardhan Singh Tomar

Published by:
PUBLICATIONS DEPARTMENT
Akhila Bhāratīya Itihāsa Saṅkalana Yojanā, New Delhi
&
Administrator, Shree Mahakaleshwar Temple Management Committee, Ujjain (M.P.)

Distributed by :
Akhila Bhāratīya Itihāsa Saṅkalana Yojanā
Baba Sahib Apte Smriti Bhawan, 'Keshav Kunj',
Jhandewalan, New Delhi-110 055
Ph.: 011-23675667
e-mail : abisy84@gmail.com
Visit us at : www.abisy.org

नानाजी देशमुख पुस्तकालय (भाजपा) क्रमांक 6043

© Copyright : ABISY

First Edition : Kaliyugābda 5118, i.e. 2016 CE
Typesetting & Cover Design by:
Jitendra Sharma
Printed at : Panchayatiraj Mudranalaya, Ujjain

Price : ₹ 500/-
(Funded by Administrator, Shree Mahakaleshwar Temple Management Committee, Ujjain)

ISBN : 978-93-82424-25-3

प्रकाशक :
प्रकाशन–विभाग
अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नयी दिल्ली
एवं
प्रशासक, श्रीमहाकालेश्वर मन्दिर प्रबन्ध समिति, उज्जैन (मध्यप्रदेश)

वितरक :
अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना
बाबा साहेब आपटे–स्मृति भवन, 'केशव–कुञ्ज',
झण्डेवाला, नयी दिल्ली–110 055
दूरभाष : 011–23675667
ई–मेल : abisy84@gmail.com
वेबसाइट : www.abisy.org

© सर्वाधिकार : अ०भा०इ०सं०यो०

प्रथम संस्करण : कलियुगाब्द 5118, सन् 2016 ई०
टाइपसेटिंग एवं आवरण–सज्जा :
जितेन्द्र शर्मा
मुद्रक : पंचायतीराज मुद्रणालय, उज्जैन

पुस्तक में प्रकाशित सभी शोध–पत्रों में किसी भी त्रुटि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे। इसके लिए प्रकाशक, संपादक एवं योजना उत्तरदायी नहीं है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri
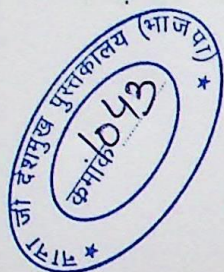
मार्गदर्शक एवं परामर्शदाता :

डॉ० बालमुकुन्द पाण्डेय

(राष्ट्रीय संगठन सचिव, अ.भा. इतिहास संकलन योजना, नयी दिल्ली)

श्री पराग अभ्यंकर

(प्रांत प्रचारक, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ मालवा प्रांत)

डॉ० आनंद मिश्र

(कुलसचिव, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

श्री कवीन्द्र कियावत

(जिलाधीश एवं अध्यक्ष, श्री महाकालेश्वर मंदिर प्रबंध समिति, उज्जैन)

डॉ० तेजसिंह सैंधव

(अध्यक्ष, मालवा प्रांत, भारतीय इतिहास संकलन समिति, उज्जैन)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अनुक्रम

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पुरोवाक्

प्रस्तुत पुस्तक का शीर्षक दो विषयों से संबंधित है प्रथम - पुराणों के अंतर्गत विभिन्न धार्मिक, मत-सम्प्रदाय तथा द्वितीय पुराणों में मंदिर स्थापत्य।

पुराणों का अध्ययन कर यह नितांत स्पष्ट दिखता है कि सभी सम्प्रदाय एक ही शाश्वत परम सत्य की खोज की विभिन्न प्रविधियाँ देते हैं। सभी की पृष्ठभूमि में वैदिक तथा आगमिक दोनों विचारधाराओं का समन्वय है। वेदान्त, सांख्य, योग तथा स्मार्त धार्मिक परम्पराओं को भक्ति के सूत्र में पिरोया गया है। यद्यपि अनीश्वर सांख्य के स्थान पर ईश्वर को रखा गया है। इसी प्रकार अद्वैतवादी अवधारणा भी सभी पुराणों में दिखती हैं। यह माना गया है कि तत्वतः एक होते हुए भी ईश्वर विश्वरूपी है। यास्क का कथन **''महाभाग्याद देवतायाः एक आत्मा बहुधा स्तूयते तथा एकस्यात्मनो अन्ये देवा प्रत्यङ्गानि भवन्ति''** यहाँ चरितार्थ होता है। विष्णुपुराण तथा भागवतपुराण में Pantheism से अधिक Panentheism है। जहाँ Pantheism में अर्थ सब कुछ ईश्वर है यह विचार है, वहीं Panentheism में सब कुछ ईश्वर में है, यह विचार है। विष्णुपुराण में बहुत रोचक ढंग से जड़ भरत के आख्यान से अद्वैतवाद की व्याख्या की गयी है।

विष्णुपुराण में बुद्ध को भी विष्णु का अवतार माना जाता है तथा रोचक बात यह है कि विज्ञानवाद की तकनीक को भी आत्मसात किया गया है। कूर्म पुराण में पांचरात्र, कापालिक, लकुलीश पाशुपत, पूर्वशास्त्र; काश्मीर शैवमत भी हैं। लकुलीश पाशुपत मत के विषय में शिव पुराण में भी महत्वपूर्ण जानकारी है। इसमें काश्मीर शैव धर्म के स्त्रोत शिवसूत्रों का भी वर्णन है।

पुराणों में वर्णित अनुष्ठान भी सर्वधर्म समवाय की ओर संकेत करते है। शिवपुराण में मण्डल शास्त्र विधि तथा आवरण पूजा का वर्णन है जिसमें न ही केवल शिव परन्तु आदित्य, ब्रह्मा, विष्णु, वासुदेव, संकर्षण, लक्ष्मी, सरस्वती आदि अनेक

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

देवताओं की पूजा का विधान हैं। इसमें सबका नमन करते हुए भक्त अपने इष्ट शिव के परम रूप के ध्यान को प्राप्त होता है। इसमें पिंड और ब्रह्माण्ड में ऐक्य तथा इष्ट देवता एवं अन्य देवताओं में भी भेद नहीं रह जाता था।

पुस्तक का दूसरा पक्ष पुराणों में स्थापत्य कला है। पुराणों में स्थापत्य के प्रमुखतः दो आयाम है- प्रथम वास्तु है जिसके आधार पर लौकिक स्थापत्य है तथा दूसरा मंदिर स्थापत्य है जिसके प्रमुख आधार धर्म के पीछे के दर्शन हैं। सर्वव्यापी पुरूष, जो सार्वभौमिक सार है वही मंदिर का रूप ले लेता है । दूसरा आधार आगमों द्वारा वर्णित ज्ञान, योग, क्रिया व चर्या थे। क्रिया मंदिरों सें संबंध रखती थी तथा चर्या के अंतर्गत अभिगमन, उपादान, इज्या, स्वाध्याय, एवं योग आते थे। मंदिरों की प्रदक्षिणा अभिगमन था। उपादान तथा इज्या अनुष्ठानों की सामग्री तथा विधि से संबंधित थी। वैदिक काल में यज्ञ की प्रतीकात्मकता अब मंदिरों में ''पुरा नवं भवति'' द्वारा समाहित हो जाती थी।

मत्स्यपुराण, अग्निपुराण, गरूड़पुराण, विष्णु धर्मोत्तर पुराण ने मंदिरों के तल विन्यास तथा ऊर्ध्वाधर संरचना के विभिन्न सूत्र दे रखे हैं जिसमें शोडषभागिक, लिंगमान, द्वारमान, प्रतिमामान, त्रैवेदम क्षेत्र आदि हैं। शोडषभागिक में तल विन्यास सोलह भागों में विभाजितकर, लिंगमान में लिंग के अनुपातानुसार, द्वारमान में द्वार के अनुपातानुसार, प्रतिमामान में प्रतिमा के अनुसार, त्रैवेदम क्षेत्र में तीन भागों में प्रासाद के क्षेत्र को विभाजित करने के अनुसार दिये हैं।

इसके अतिरिक्त मंदिरों को अग्निपुराण नें पांच समूहों में वर्गीकृत किया है वैराज अथवा चौकोर, पुष्पक आयताकार, कैलाश गोल, मणिक, वृत्तायत, त्रिविष्टम अष्टकोणीय। प्रत्येक के नौ प्रकार दिये हैं। इसी प्रकार विष्णु धर्मोत्तर पुराण में 101 प्रकार के मंदिर वर्णित हैं। यह वर्गीकरण विभिन्न देवताओं के अनुसार हैं।

इन मंदिरो से न ही केवल भारतीय स्थापत्य तथा कला की गरिमामय परम्परा दिखती हैं अपितु सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक सुदृढ़ता भी प्रतिबिम्बित होती है।

मंदिरों मे सार्वजनिक पाठ की परम्परा से शिक्षा-दीक्षा का प्रसार, विभिन्न उत्सव, त्योहारों, नृत्य, संगीत आदि से सांस्कृतिक उत्कर्ष तथा अनेक प्रकार के कार्यो में प्रयुक्त होने से अनेक प्रकार के व्यक्तियों को जीविका प्राप्त होती थी।

सुस्मिता पांडे
अध्यक्ष
राष्ट्रीय स्मारक संस्थान,
भारत सरकार (संस्कृति मंत्रालय) नई दिल्ली

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रतिवेदन

पुराण भारतीय ज्ञान, धर्म संस्कृति, परम्परा, सभ्यता इतिहास आदि के स्वरूप अवबोध के लिए विश्वकोश है। पुराण हमारी सभ्यता, संस्कृति एवं इतिहास की आधारभूमि है। पुराणों का इतिहास के साथ धनिष्ठ संबंध है कि दोनों को सम्मिलित रूप से पुराणेतिहास शब्द से उल्लेखित किया जाता है ।

पुराण विद्या का उल्लेख वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद एवं वेदांग-साहित्य में प्राप्त होता है, इससे यह ज्ञात होता है कि पुराण विद्या अत्यन्त प्राचीन है। चतुर्दश विद्या स्थानों में इसका विशेष स्थान है। पुराण न केवल प्राचीन भारतीय धर्म तथा दर्शन का ज्ञान देते है बल्कि कला, स्थापत्य, विज्ञान, चिकित्सा, शास्त्र आदि के भी वृहद कोष है।

पुराणों का स्वरूप धर्ममयी है। मनुष्य जीवन की विभिन्न समस्या-समाधान से संबंधित जीवन-दृष्टि को पुराणों में धार्मिक अभिव्यंजना के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। पुराणों में अंतर्निहित विषय-वस्तु लौकिक व पारलौकिक है। लौकिक जगत में वह धर्म में रूप में उन सभी व्यवस्थाओं का प्रतिपादन है जिसका प्रत्यक्ष संबंध मनुष्य के जीवन से है। पारलौकिक रूप में वह देववाद की व्याख्या है। पुराणों में निहित धर्म चेतना व उसमें विविध उपादनों की विस्तृत गवेषणा में उद्देश्य से भारतीय इतिहास संकलन समिति, मालवा प्रान्त के निवेदन को अध्यक्ष श्री महाकालेश्वर मन्दिर प्रबंध समिति ने सहर्ष स्वीकार किया। श्री महाकालेश्वर प्रबन्ध समिति व मालवा प्रांत अखिल भारतीय इतिहास संकलन समिति के संयुक्त तत्वावधान में पुराणों में विविध मत सम्प्रदाय व स्थापत्य और कला का इतिहास विषय पर 25 व 26 सितम्बर 2015 को दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का भव्य आयोजन किया गया। इस संगोष्ठी में सम्पूर्ण भारत से 200 विद्वानों ने सहभागिता की। इस संगोष्ठी की प्रमुख विशेषता यह भी है कि उद्घाटन सत्र में देश के 25 वरिष्ठ इतिहासज्ञों को भारतीय इतिहास संस्कृति पुरातत्व में उत्कृष्ट

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri
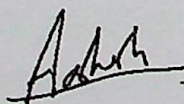
योगदान के लिये जिलाधीश व अध्यक्ष श्री कवीन्द्र कियावत व प्रशासक श्री जयंत जोशी के द्वारा प्रशस्ति पत्र व शाल श्री फल द्वारा सम्मानित किया गया।

संगोष्ठी के गरिमामयी उद्घाटन सत्र में विद्वान प्रमुख सचिव संस्कृति मंत्रालय श्री मनोज श्रीवास्तव मुख्य वक्ता के रूप में उपस्थित थे। विषय प्रवर्तक प्रो. ईश्वरशरण विश्वकर्मा (आचार्य दीनदयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर) द्वारा किया गया। सत्र की अध्यक्षता डॉ. बालमुकुन्द पाण्डे (राष्ट्रीय संगठन सचिव, इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली) ने की। विशेष अतिथि के रूप में श्री अशोकजी सोहनी (क्षेत्र संघचालक, रा.स्व.से. संघ, मध्यक्षेत्र, भोपाल) का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ।

इस दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में ''पुराणों में विविध मत सम्प्रदाय एवं कला और स्थापत्य का इतिहास'' विषय से सम्बन्धित सभी पक्षों पर शोधपत्र पढ़े गये। कुल 150 शोधपत्र प्राप्त हुए। प्रथम दिवस में प्रथम चिन्तन सत्र में 25 शोधपत्रें का वाचन हुआ तथा द्वितीय चिन्तन सत्र में 35 शोधपत्रों का वाचन किया गया। द्वितीय दिवस में तीन चिन्तन सत्रों का आयोजन हुआ, जिनमें 90 शोधपत्रों का वाचन शोधार्थी एवं विद्वानों द्वारा किया गया।

समापन सत्र में मुख्य वक्ता प्रो. सुष्मिता पाण्डे (पूर्व विभागाध्यक्ष, प्रा.भा. इतिहास एवं पुरातत्व अध्ययनशाला विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन) थी तथा विशेष अतिथि डॉ. सुभाष आर्य (कुलसचिव, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन) थे। मुख्य अतिथि डॉ. बालमुकुन्द पाण्डे (राष्ट्रीय संगठन सचिव, इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली) थे।

यह महत्वपूर्ण संगोष्ठी जिनके अथक प्रयासों से सम्पन्न हुई, वे है डॉ. तेजसिंह सैंधव (अध्यक्ष, मालवा प्रान्त इतिहास संकलन समिति), जिलाधीश श्री कविन्द्रजी कियावत (अध्यक्ष, श्री महाकालेश्वर मन्दिर प्रबंध समिति, उज्जैन), प्रशासक जयंत जोशी, डॉ. रमण सोलंकी (प्रभारी पुरातत्त्व संग्रहालय, विक्रम वि.वि. उज्जैन), डॉ. प्रशान्त पुराणिक, डॉ. सुमेरसिंह सोलंकी, डॉ. ब्रह्मदीप अलुने, डॉ. प्रीति पाण्डे, डॉ. एकता व्यास, डॉ. देवेन्द्र वर्मा, डॉ. पंकज वर्मा, मालवा प्रांत इतिहास संकलन समिति के समस्त सदस्यगण एवं कार्यकर्ताबंधु श्री महाकालेश्वर मंदिर के समस्त कर्मचारियों के प्रति हम आभारी हैं।

(आशीष नाटानी)
संगठन सचिव
मालवा प्रांत अ.भा. इतिहास संकलन समिति, उज्जैन
मोबा. 9826425568

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सम्पादकीय

भारतीय संस्कृत वाङ्मय में पुराण हिन्दू संस्कृति की अनुपम निधि है। वेदों के पश्चात् पुराण ही हिन्दू संस्कृति का सर्वव्यापी व सर्वस्पर्शी स्त्रोत है। पुराण नित्य नूतन है, पुराण इतिहास का श्रेष्ठ साधन है। पुराणों से प्रवाहित होती हिन्दू संस्कृति की सतत् अविचल, अविच्छिन्न धारा ने अपने ज्ञान-दर्शन तत्व से संपूर्ण विश्व की मानव-मेधा को प्रभावित किया है। इस धारा का स्वरूप चाहे वह राष्ट्रीय परम्परा हो या सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक इन्हें अक्षुण्ण बनाये रखने में पुराणों की महती भूमिका रही है। पुराण वह आधार स्तम्भ है, जिस पर आधुनिक हिन्दू समाज अपने नियमन को प्रतिष्ठापित करता है। पुराणों में वर्णित आख्यान, गाथा, इतिवृत्त अधिक श्रेयस्कर और भावना-प्रधान रूप में लोक प्रचलित हुये। इसलिए पुराणों में वर्णित हमारे ऋषियों, आचार्यों, तथा पूर्वजों का इतिवृत्त आज भी हमारी राष्ट्रीय स्मृति में व्याप्त है। पुराणों में वेद, स्मृति तथा पुराण के परस्पर संबंध के विषय में गंभीर चिन्तन मिलता है। देवी भागवत पुराणों की श्रेष्ठता को उद्घोषित करते हुये कहता है कि - **'श्रुति-स्मृति उभे नेत्रे पुराणं हृदयं स्मृतम्'** अर्थात श्रुति और स्मृति का स्थान नेत्र है, परंतु पुराण तो धर्मरूपी पुरूष का हृदय है। इस प्रकार लौकिक जीवन की व्यावहारिकता का सम्पूर्ण भाव पुराणों में निहित है। भारतीय जनों में भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार को दृढ़तापूर्वक प्रतिष्ठित करने का श्रेय पुराणों को ही है। यही कारण है कि हमारे पूर्वजों के द्वारा काल के उस अलक्षित क्षण में जहाँ से सृष्टि का आर्विभाव हुआ है वहाँ सर्वप्रथम पुराण वाङ्मय की स्थापना कर दी गयी। ब्रह्मादि ने समस्त शास्त्रों में सर्वप्रथम पुराणों का स्मरण कर उन्हें व्याख्यायित किया है। तत् पश्चात् उनके मुख से वेद प्रकट हुये।

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम।
अनन्तरं च वक्त्रोभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥

(मत्स्य पुराण-53.3)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ऐतिहासिक अनुशीलन से अनुभव में आता है कि वर्तमान में ज्ञान-विज्ञान,की जितनी नई-नई शाखाऐं, मत-मतान्तर, वाद-प्रतिवाद अस्तित्व में है उनकी पृष्ठभूमि पुराणों पर ही अधिष्ठित है। पुराण विश्व कोष है। प्राचीनकाल से वर्तमान तक अनेक मत-मतान्तरों के प्रवर्तन में होने के बाद भी पुराणों की उपादेयता व शिरोधार्यता, स्वीकार्यता यथारूप किञ्चित संशोधन-परिवर्द्धन के साथ बनी हुयी है। इसी कारण पुराण इतिहास ग्रन्थ है। यही कारण है कि भारतीय वाङ्मय में मनीषियों ने पुराण विद्या को प्रथम स्थान दिया है।

पुराण न्याय मीमासां धार्मशास्त्र मित्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश।।

अर्थात पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, छः वेदांग और चार वेद यह चौदह विद्या और धर्म के स्थान है। वेद, उपनिषद, ब्राह्मण ग्रन्थ, स्मृतियाँ समान रूप से पुराणों की महत्ता व प्रतिष्ठा को उद्घाटित करते है। ऋक् संहिता(3.54.9,3.58.10.130.6) के अनेक मंत्रों में पुराण शब्द का प्रयोग मिलता है। अथर्ववेद की दृष्टि में इतिहास और पुराण, पञ्चम वेद का प्रतिनिधित्व करते है। यही नहीं अथर्ववेद एवं उपनिषद पुराणों की गणना वेदों के साथ करते है।

स वृहती दिशमनुव्यमलत् । तमितिहासः च पुराणं च गाथाश्च नारशंसीश्चनुव्यचलन्।

इतिहाससस्य च स वै पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद (15.1.6)

"ऋचः समानि छन्दासि पुराणं यजुषासह" (11.4.24)

स होवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेद माथवर्णं। चतुर्थमितिहासपुराणं वेदानां वेदम।। (छा०उपनिषद-7.1.13)

पुराण अपने विशिष्ट निहितार्थ में वेदों का ही सम्पोषण करते प्रतीत होते है। अर्थात पुराण वेदार्थ के ही बोधक हैं पुराणों में वैदिक तत्वों की व्याख्या विविध कथा दृष्टांतों के रूप में मिलती है। पुराणकार भी इस मत का समर्थन करते है कि पुराणों के बिना वेदों का ज्ञान प्राप्त करना कठिन कार्य है। नारद पुराण(24.18) में अभिमत मिलता है कि **''वेदाःप्रतिष्ठताःस र्वेपुराणेष्वेवस र्वदा''**। श्रीमद्भागवत् में भी स्पष्ट किया गया है कि **''इतिहास पुराणं च पञ्चमों वेद उच्यते''**।

पुराण अपनी व्युत्पत्तिमूलक अभिव्यंजना से **''यस्मात्पुरा ह्यनस्तीदं पुराणं तेन तत् स्मृतम्''** (वायु पुराण-1/203) जो प्राचीनता की अर्थात परम्परा की कामना करता है, वह पुराण कहलाता है। इसके अन्यत्र पुरां नवं भवति अर्थात जो प्राचीन होकर

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भी नवीन होता है, उसे पुराण कहा गया है। वस्तुतः पुराण वेदों में वर्णित ज्ञान-तत्व व दार्शनिक परम्परा की लोकाभिव्यक्ति है। लोकभाषा में वर्णित होने के कारण वेदों की अपेक्षा पुराणों की विषय-वस्तु को हृदयगंम करना सरल है। पुराणों की लोकप्रियता इससे उद्घाटित होती है कि भारत में आज तक पुराणों में प्रतिपादित आख्यान एवं कथारूपी इतिहास का उपदेश गृह-गृह, ग्राम-ग्राम, नगर-नगर में होता आ रहा है। सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर मानव के समुन्नत होने तक ज्ञान-परम्परा की ऐसी कोई विद्या या शाखा नहीं जिसकी परम्परा पुराणों में नहीं मिलती हो। दूसरे शब्दों में लोक-जगत के विविध विषयों राजनीति, धर्मनीति, अर्थनीति, इतिहास, समाज विज्ञान, ग्रह-नक्षत्र, विज्ञान, आयुर्वेद, व्याकरण, भूगोल, ज्योतिषी, स्थापत्य, साथ ही इसके समानान्तर धर्म-संस्कृति, अध्यात्म, पुरूषार्थ चतुष्टय, वर्ण-धर्म, आचार-नीति, दण्ड-नीति आदि अन्य-अन्य विषयों के संकलित स्वरूप को ही पुराण नामाभिधान मिला। पुराण गाथाओं, कथाओं, इतिवृत्तों, आख्यानों में निहित इतिहास का पर्याय है। पुराण भी अपने उद्देश्य को स्पष्ट करते है कि, जो मनुष्य बिना किसी परिश्रम के यहाँ अनन्त पुण्य प्राप्त करना चाहते है, उसको भक्ति-भाव(श्रद्धा) से पुराणों का श्रवण करना चाहिये।

अनायेस यः पुण्यानीच्छती हे द्विजोन्तमाः।
श्रोतण्यानी पुराणानी तेन वै भक्तिभावतः।। (नारद-57.61)

पुराणों की संख्या को लेकर भी विद्वानों में मतान्तर है। पुराणविद्वों ने लाक्षणिक अभिव्यंजना के आधार पर पुराणों को अट्ठारह की संख्या में परिगणित करने का प्रयास किया है। पुराणों में इन महापुराणों के नाम समरूपता लिये हुये है। इन पुराणों के नाम यथा-ब्रह्म, पद्म, विष्णु, भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, वराह, लिङ्ग, स्कन्द, वामन, मत्स्य, ग़रूड़ और ब्रह्माण्ड। देवीभागवतपुराण में इन महापुराणों के नामों का उल्लेख मिलता है कि

मद्वयं भदयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्।
नार्लिपाग्निपुराणानि कूस्कं गारूडमेव च।। (1.3)

अर्थात (आद्यक्षर) 'म' वाले दो, 'भ' वाले दो, 'ब्र' वाले तीन, 'व' वाले चार, 'ना' वाले एक, 'लिं' वाला एक, अग्निपुराण एक, 'कू' वाल एक, 'स्क' वाला एक और एक गरूडपुराण है। इनके अतिरिक्त उपपुराण भी है। उप पुराण महापुराणों के बाद के पुराण रहे हैं। विभिन्न स्थलों पर उपलब्ध इनकी संख्या भी अट्ठारह है। इन उपपुराणों के अंतर्गत सनत्कुमार, नरसिंह, नन्द, शिवधर्म, दुर्वासस्, नारदीय, कपिल, वामन, उशनस्, मानव, वरूण, कलि, महेश्वर, साम्ब, सौर, पाराशर, मारीच और भार्गव को परिगणित किया जाता है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भारतीय संस्कृति का विशिष्ट ज्ञान हमें पुराणों में मिलता है। पुराण भारतीय मेधा-प्रतिभा का उत्कृष्ट पर्याय है। समय के साथ जैसे-जैसे मानव की अन्वेषण की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही हैं, वैसे-वैसे पुराणों में निहित इतिहास व ज्ञान-परम्परा की निर्मलता सुस्पष्ट होती जा रही हैं। वस्तुतः पुराणों का स्वरूप धर्ममयी है। सृष्टि की उत्पत्ति के साथ-साथ प्रगत होती विकास की अवधारणा भी पुराणों से परिलक्षित होती है। पुराण स्वयं अपने शब्दार्थ व लक्षणों से अपनी विषय-वस्तु को स्पष्ट करते है। मत्स्यपुराण कहता है कि-

ब्रह्मविष्णार्करूद्राणां माहात्मयं भुवनस्य च।
संसहारपदानां च पुराणे पञ्चवर्णके ।।
धर्मश्चार्थञ्च कामाश्च मोक्षऽवान्त कीर्त्यते।
सर्वेष्वपि पुराणेषु तद्विरुद्धं च यत्फलम्।। (53/65.66)

पांच लक्षणों वाले सभी पुराणों में सृष्टि और संहार करने वाले ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और रूद्र के तथा भुवन के महात्म्य का वर्णन किया गया हैं। इनके विरूद्द करने का जो फल प्राप्त होता है, उसको भी निरूपित किया गया है। अतः पुरूषार्थ चतुष्टय प्रदाता, दिव्य ज्ञान-कोष पुराणों का श्रवण-मनन, अनुशीलन हमारा अभीष्ट होना चाहिए। पुराणों के पञ्चलक्षणों में सर्ग, प्रतिसर्ग, देवताओं और ऋषियों का वंशवृत्त, मन्वन्तर और राजवंश आदि को परिगणित किया जाता है। इनमें से पूर्वोक्त तीन विषयों में प्राचीन धर्म, आख्यान, तत्वज्ञान और सृष्टि-वर्णन इन विषयों का संकलन है। इसके अतिरिक्त राजाओं के वंशवृत्त और इतिहास की सामग्री मिलती है। अन्य धार्मिक विषयों में धार्मिक शिक्षा, कर्मकाण्ड, दान, व्रत, भक्ति, योग, विष्णु और शिव के अवतार, श्राद्ध, आयुर्वेद, संगीत, व्याकरण, साहित्य, छंदःशास्त्र, नाट्य, ज्योतिष, शिल्पशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजधर्म इत्यादि विषयों का समावेश पुराणों में है।

पुराण धर्म-संस्कृति का कोष है और भारत में धर्म संस्कृति का और संस्कृति राष्ट्र का पर्याय है। इसलिए पुराण भारतीय जीवन-आदर्श, सभ्यता-संस्कृति, विद्या-वैभव, के उत्कर्ष का इतिहास है। पुराण वाङ्मय से भारतीय संस्कृति के साथ-साथ भारत के सर्वविधि इतिहास की जानकारी प्राप्त होती है। पुराण केवल मात्र इतिहास ही नहीं है अपितु एक जीवन-दृष्टि हैं। धार्मिक दृष्टि से विश्व का मङ्गल करने का साधन है। भारतीय मनीषा में व्यक्ति, समाज, राष्ट्र यहाँ तक कि सम्पूर्ण विश्व का धारण, पोषण, संघटन, सामंजस्य का सम्पादन करने वाला एकमात्र नियामक तत्व धर्म ही है। पुराणों में वर्णित धार्मिक मत-सिद्धान्तों, जीवन-मूल्यों के आधार पर ही हिन्दू संस्कृति अन्यान्य संस्कृतियों की तुलना में अपनी श्रेष्ठता बनाये रखने में सफल रही है। पुराणों

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

का हेतु किसी विशेष धर्म-सम्प्रदाय को लेकर नहीं है। यहाँ धर्म नित्यापयोगी नियमों की साधना है जो मनुष्य की सर्वतोभावेन भौतिक-आध्यात्मिक उन्नति व सुख-समृद्धि का मार्ग प्रशस्त करता है। इसलिए पुराणों में धर्म की कहीं-कहीं लौकिक-पारलौकिक तो कहीं-कही कर्मकाण्डीय व्याख्या मिलती है। धर्म की यह अवधारणा शून्य से सृजना की प्रतिपालक है। यह धर्म अपने लाक्षणिक निहितार्थो में कहीं ईश्वर की आज्ञा तो कहीं कर्तव्यों-सदाचार का समुच्चय बोध है। जैसा कि मनु ने व्याख्यायित किया है-

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

घी र्विधा सत्यमक्रोधा दशकं धर्मलक्षणम् ॥ (6/92)

धृतिः(धैर्य) अर्थात संतोष, क्षमा अर्थात् सामर्थ्य रहते हुए भी अपकारी का अपकार न करना, दम, अर्थात विषयों का संसर्ग होने पर भी मन को निर्विकार रखना, अस्तेय अर्थात काय, वचन और मन से परद्रव्य को न चुराना, शौच अर्थात शास्त्रानुसार मिट्टी-जल आदि के द्वारा देह शुद्धि, इन्द्रिय निग्रह, घी अर्थात आत्मविषयिणी बुद्धि यथा-"मैं शरीर नहीं आत्मा हूँ" इस प्रकार की बुद्धि, विद्या अर्थात आत्मज्ञान जिससे हो उस ब्रह्मविद्या का अनुशीलन, सम्य अर्थात यथार्थ कथन और प्राणियों का हित साधन, अक्रोध अर्थात क्रोध का कारण उपस्थित होने पर क्रूद्ध न होना इन दसों का नाम धर्म है। इसके अलावा धर्म क्या है ? इसका लक्ष्य क्या है ? किस कर्म को करने से धर्म होता है ? किस कर्म को करने से धर्म नहीं होता है ? धर्म जिज्ञासा अर्थात धर्म को जानने की आवश्यकता क्या है तथा धर्म के कौन-कौन से साधन है ? इन जिज्ञासाओं की मीमांसा करते हुये जैमिनि प्रतिपादित करते है -"चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः" अर्थात क्रिया में परिवर्तित करने वाले शास्त्र वचन का नाम चोदना है। अर्थात आचार्य से प्रेरित होकर जो याग आदि किये जाते है उसी का नाम धर्म है। जो कार्य मनुष्य के कल्याण के लिए होता है, उसका नाम धर्म है। अर्थात जिस कर्म का अनुष्ठान करने से मङ्गल होता है, वही धर्म हैं, तथा जिससे भूत, भविष्यत्, वर्तमान और सूक्ष्म व्यवहित, विपकृष्ट अर्थ अवगत करने में समर्थ हो सकते है, वही धर्म है। जो कुछ श्रेयस्कर अर्थात मङ्गलजनक है, उसका नाम धर्म है। यतोऽभ्युदयानिः श्रेयससिद्धिः सधर्मः अर्थात जिससे इस लोक में अभ्युदय हो और परम कल्याण की प्राप्ति हो वह धर्म है।

पुराणों में धर्म की जो मीमांसा मिलती है वह वर्णाश्रम धर्म तथा उसके यथा पालन से मोक्ष प्राप्ति के लिए पुरूषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) जैसी संकल्पना पर अधिष्ठित है। यहाँ धर्म लौकिक अर्थात भौतिक जगत के प्रति उदासीनता के भाव को पुष्ट नहीं करता हैं। पौराणिक धर्म प्रवृत्तिमार्गी है न कि निर्वत्तिमार्गी। पौराणिक धर्म-दर्शन प्रवृत्ति से निवृत्ति का संवाहक है। धर्म की आध्यात्मिक प्रवंचना के साथ-साथ

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पुराण युगधर्म के अनुरूप विभिन्न देवी-देवताओं एवं उनसे संबंधित मत-सम्प्रदाय और जीवन-दर्शन को भी व्याख्यायित करते है। पुराणों में विभिन्न देवी-देवताओं की उपासना के रूप में अवतारवाद को प्रधानता दी गई है। पृथ्वी पर धर्म संस्थापना के निमित्त समय-समय पर अवतरित हुयी ईश्वरीय शक्तियों एवं उनसे संबंधित विविध सम्प्रदायों शैव, वैष्णव, शाक्त, बौद्ध जैन सम्प्रदाय आदि का विस्तृत विवेचन ही पुराणों की अभीष्ट विषय-वस्तु है। इसके अलावा पुराण इन सम्प्रदायों से संबंधित देवस्थान यथा- मठ-मंदिर, देव-प्रतिमा ,यज्ञ-स्थल, देवता स्थापना, शिला-विन्यास, प्रतिमा वास्तु व लक्षण, पूजा-पद्धति, मन्दिरों से संबंधित वास्तु योजना की विस्तृत जानकारी प्रदान करते है।

यह ग्रन्थ पुराणों में विविध मत-सम्प्रदाय कला और स्थापत्य के इतिहास का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास है। यह ग्रन्थ श्री महाकालेश्वर मन्दिर प्रबंध समिति, उज्जैन एवं इतिहास संकलन समिति मालवा प्रान्त, उज्जैन के संयुक्त तत्वाधान में 25-26 फरवरी 2015 को "पुराणों में विविध मत-सम्प्रदाय कला और स्थापत्य का इतिहास" विषय पर आयोजित द्वि-दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का प्रभावोत्पादक परिणाम है। श्री महाकालेश्वर मन्दिर प्रबंध समिति के अध्यक्ष श्रीयुत कवीन्द्र कियावत (जिलाधीश उज्जैन) साधुवाद के पात्र है। उनके अतुलनीय सहयोग से इस ग्रन्थ का प्रकाशन हो सका। अन्ततः इस ग्रन्थ की भूलवश त्रुटियों और इसकी सफलता-असफलता को राजाधिराज भगवान श्री महाकाल के चरणों में समर्पित करता हूँ।
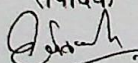
तिथि
अश्विन
शुक्ल पक्ष - शारदीय नवरात्र
प्रथम, विक्रम संवत् 2073
युगाब्द-5118
तदनुसार - 1/10/2016

संपादक

डॉ. हर्षवर्धन सिंह तोमर
अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना
10196, केशव कुञ्ज, झण्डेवालान, नयी दिल्ली-110055
ई-मेल- harshtomar79@gmail.com
चलित दूरभाष-09407528546

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

खण्ड प्रथम

धर्म, संस्कृति

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पुराण : अनन्त ज्ञान का अक्षय भण्डार

डॉ० सतीशचन्द्र मित्तल*

सर्वप्रथम मैं देवताओं के देवता महाकालेश्वर को प्रणाम करता हूँ जिन्होंने विश्व में काल चक्र की गति, अस्तित्व, स्थिति तथा भविष्य को निर्धारित किया है। मैं इस विद्वानों की महानगरी उज्जैयनी को प्रणाम करता हूँ जो महाकवि कालिदास सहित महाराजा विक्रमादित्य के नवरत्नों की कर्मभूमि रही तथा जहाँ निरन्तर देश के श्रेष्ठतम प्राणियों, मनीषियों का आना होता रहा। मैं विश्वविख्यात न्याय प्रिय, वीर, विजेता, सफल प्रशासक तथा अति श्रेष्ठ महाराजा विक्रमादित्य को प्रणाम करता हूँ। रा. स्व. संघ के द्वितीय सर संघचालक श्री गुरुजी (श्री माधवराव सदाशिव राव गोलवलकर) के श्री मुख से एक बार मैंने स्वयं सुना था कि महाराजा विक्रमादित्य के सिंहासन की यशकीर्ति इतनी थी कि उस पर यदि कोई अनपढ़ गडरिये का लड़का बैठ जाये तो भी उसका निर्णय, श्रेष्ठ व उसका विचार सात्विक ही होगा।

मैं विद्वानों की इस संगोष्ठी में महाराजा विक्रमादित्य के सन्दर्भ में मक्का में प्राप्त दो प्रशस्तियों के बारे में बताना चाहूँगा। इनमें एक प्रशस्ति अरब प्रायःद्वीप के मक्का अथवा मक्केश्वर महादेव के विशाल कक्ष में हजरत मोहम्मद साहब के मक्का आक्रमण से 165 वर्ष पहले स्वर्ण जड़ित अक्षरों में टंगी हुई थी। यह वहाँ की अनेक प्रशस्तियों में से एक थी। जो एक कविता के रूप में जरहाइन बिनतोई महाकवि की

---

* राष्ट्रीय अध्यक्ष, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, आप्टे भवन केशव कुंज, झण्डेवालान, नयी दिल्ली

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

रचित थी। मक्का की लूट में यह सोने की लिखी प्रशस्ति भी लूट ली गई थी। जिसको अरबी से अनुवाद के प्रति दिल्ली के लक्ष्मी नारायण मन्दिर (बिरला मन्दिर) में एक शिलालेख में आप आज भी पढ़ सकते हैं। मूलतः इसी लूटी हुई प्रशस्ति को इस लूटेरे की तीसरी पीढ़ी ने भारी पुरस्कार की चाह में खलीफा हारू रशीद के काल में भेंट कर दी थी। यह रहस्य खलीफा हारू रशीद (786-809) के एक काव्य संग्रह से ज्ञात होता है। जो पहले ज्ञात न था। टर्की के इस्तनबोल के विशाल पुस्तकालय मक्तब-ऐ-सुल्तानिया में टर्की के सुल्तान सलीम ने 1772 ई.में इस संकलन को खोज निकाला था। इसका नाम सैर-उल-उकूल (Sayer-ul-Okul) है। इसका प्रथम अनुवाद 1864ई. में बर्लिन में हुआ तथा 1932 ई. में बेरूत से प्रकाशित हुआ। जरहाइन बिनतोई ने हिन्दू भूमि का बड़ा यशोगान किया है। यहाँ के ऋषि, मनीषियों, ऋग्वेद तथा अथर्ववेद के अनुपम ग्रन्थों के साथ विश्व बंधुत्व की बात की है। सम्राट विक्रमादित्य की प्रशंसा में लिखा 'भाग्यवान वह है जो राजा विक्रमादित्य के काल में रहे। वह एक योग्य, कर्तव्यनिष्ठ, प्रजा हितैषी राजा है। हम अंधेरे में थे विक्रमादित्य ने ज्ञान का दीपक जलाया।'

दूसरी प्रशस्ति हजरत मोहम्मद के पिता के बड़े भाई की है जिनका नाम उमर-बिन हाशम (Umar-Bizn-e-Hassham) था, जिन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार करने से मना कर दिया था। उन्होंने शिव की स्तुति में अनेक कवितायें लिखी थी। इस्लाम न मानने पर कुछ मुसलमान द्वेषवश उन्हें अबू विहाल अर्थात् अज्ञानता का पिता कहते थे। वे एक महाकवि थे। भारत के बारे में भी उन्होंने अरबी में एक कविता लिखी। यह कविता भी दिल्ली के लक्ष्मीनारायण मन्दिर में स्थित बगीचे में उल्लेखित है। उसमें उन्होंने कहा कि ''यदि कोई सच्चे हृदय से महादेव की पूजा करें तो वह सत्य मार्ग पर पहुँच सकता है'' वे लिखते हैं 'हे प्रभू ! मुझे कम से कम जीवन का एक दिन दे जिसमें मैं हिन्दू भूमि जाकर अपने सम्पूर्ण जीवन को बदल दूँ।''

निःसंदेह ये तथ्यपूर्ण उद्धरणों को हम इन्साइक्लोपीड़िया ब्रिटेनिका तथा इन्साइक्लोपीडिया इस्लामिया में नहीं पायेंगे। यह सर्वज्ञात है कि महाराजा विक्रमादित्य ने अरबिया पर आक्रमण कर वहाँ ज्ञान का दीपक जलाया था तथा वैदिक तथा भारतीय पौराणिक संस्कृति का प्रसार किया था।*

---

* (विस्तार के लिए देखे, सतीशचन्द्र मित्तल 'मुस्लिम शासक तथा भारतीय जन-समाज' नईदिल्ली, 2007, पृ. 6-11)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

जहाँ तक ज्ञान के अपूर्व भण्डार पुराणों का सम्बन्ध है। हम सभी को लगता है कि विश्व का लौकिक अथवा पारलौकिक कोई विषय ऐसा नहीं है जिसकी विवेचना पुराणों में नहीं हुई हो। वस्तुतः जो पुराणों में नहीं है, वह कहीं भी नहीं है, पुराणों में पंचभूतों का विस्तृत वर्णन है। व्यक्ति, समष्टि तथा परमेष्ठी का समूचा विचार किया गया है।

यदि इस संदर्भ में गीताप्रेस गोरखपुर के महान विद्वान श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार के विचार देखें तो वे लिखते हैं, ''पुराण अध्यात्म शास्त्र है, पुराण दर्शन शास्त्र है, पुराण धर्मशास्त्र है, पुराण कला शास्त्र है, पुराण इतिहास है, पुराण जीवनी कोष है, पुराण सनातन आर्य संस्कृति के स्वरूप है और पुराण वेदों की सरस व सरलतम व्याख्या है। पुराणों में तीर्थ रहस्य और तीर्थ महात्मय है। पुराणों में तीर्थों का इतिहास है। पुराणों में परलोक विज्ञान, प्रेत विज्ञान, जन्मान्तर और लोकोत्तर रहस्य, कर्म रहस्य, कर्मफल निरूपण, नक्षत्र-विज्ञान, रत्न-विज्ञान, आयुर्वेद, शकुन शास्त्र आदि महत्त्वपूर्ण विषयों को सरल भाषा में स्पष्ट करना ही पुराणों की विशेषता है।''

संक्षेप में पुराण विश्व को भारत की ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक विरासत है। पुरा काल से चला आ रहा पुराण है। वैदिक तत्वों की सरल भाषा में अनेक दृष्टातों सहित व्याख्या है। वैदिक श्रुति-स्मृति परम्परा का विस्तार है। यह प्राचीन ग्रीक में जन्मे तथा योरोप के वर्णनों से परिपूर्ण मिथकों से मुक्त, भारतीय इतिहास की कुञ्जी है। पुराण अनन्त ज्ञान का भण्डार है। पुराण भारत की स्वस्थ परम्पराओं का विस्तार है। पुराण अनेक उलझी समस्याओं का हल तथा अनबुझी पहेलियों तथा प्रश्नों का उत्तर है। दूसरे शब्दों में अनेक लोक जीवन के गूढ़ रहस्यों तथा बीमारियों का पौराणिक उपचार है। पुराण व्यक्तिगत तथा समष्टिगत जीवन के सप्त पदों-व्यक्ति, परिवार, कुटुम्ब, समाज, राष्ट्र, विश्व तथा चर-अचर का चिर प्राचीन एवं चिर नवीन मार्गदर्शन तथा सन्देश है। अतः लगता है कि पुराणों के संतुलित अध्ययन तथा अनुभूति के लिए एक जीवन काफी नहीं है।

स्वामी विवेकानन्द ने पुराणों के तीन महत्वपूर्ण उद्देश्य बतलाये हैं। प्रथम, पुराण प्रमाणिक रचनायें है, अर्थात् प्रत्येक पुराण के केन्द्र में कोई ना कोई ऐतिहासिक प्रमाण है। दूसरे पुराणों द्वारा उदात्त सत्यों का प्रकटीकरण होता है। अतः पुराणों का उद्देश्य मनुष्य मात्र को विभिन्न रूपों में सत्य के विषय में प्रचार करता है, तीसरे पुराण महान दर्शन भी है। सत्य के लिए भारत का दर्शन किसी एक व्यक्ति के अल्लाह या गॉड या कुरान या न्यू टेस्टामेन्ट पर आधारित नहीं है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

आज की यह राष्ट्रीय संगोष्ठी जैसा कि पत्रक में बताया गया है सचमुच में एक ज्ञान-यज्ञ है। संगोष्ठी में विषय भी पुराणों में 'विविध मत-सम्प्रदाय एवं कला और स्थापत्य' का इतिहास समयानुकूल तथा सार गर्भित है। पुराणों जैसे महासागर में विद्वानों के चिन्तन को दो मूल विषयों 'विविध मत सम्प्रदाय' तथा 'कला और स्थापत्य' तक सीमित किया गया है, जो पूर्णतः उचित है।

विभिन्न पुराणों में धर्म की विस्तृत व्याख्या की गई है तथा जीवन का लक्ष्य बार-बार धर्म, अर्थ, काम-मोक्ष बतलाया गया है, यह सर्वविदित है कि भारत में धर्म का पर्यायवाची 'रिलीजन' या 'मजहब' नहीं है बल्कि धर्म का व्यापक अर्थ कर्तव्य, नैतिकता, आचरण, जीवन के नैतिक मूल्य तथा आध्यात्मिकता है। जब कि रिलीजन के अर्थ में यह किसी विशिष्ट सम्प्रदाय, वर्ग, पंथ, उपासना तथा पूजा-पद्धति के साथ जुड़ा होता है। धर्म कर्तव्य की अनुभूति कराता है जबकि राजनीति अधिकार का अनुभव कराती है। पुराणवेत्ताओं ने समय समय पर अनेक श्रेष्ठ राजपुरुषों द्वारा राजसत्ता के त्याग का वर्णन किया है । पुराणकारों ने भी ऋग्वेद की भांति यह माना है कि सत्य एक है परन्तु विद्वानों ने भिन्न-भिन्न शब्दावली में बताया है। भारत एक मात्र विश्व का देश है जो प्रत्येक व्यक्ति को धर्म एवं विचारों की पूर्ण स्वतंत्रता देता है। साथ ही राजा का कर्तव्य, सबकी सुरक्षा चाहे वह किसी मत-पंथ या सम्प्रदाय का मानने वाला हो बतलाया है।'' अतः पुराणों से ज्ञात होता है भारत प्राचीनकाल से धार्मिक सहिष्णुता, उदारता तथा समरसता की स्थली रहा। पुराणों में मुख्यतः त्रिदेव की महानता का वर्णन किया है। इनमें भी विष्णु तथा शिव का स्थान प्रमुख है। धर्म की पूर्ण स्वतंत्रता के फलस्वरूप, युगानुकूल सत्य का विश्लेषण, व्याख्या, विशेषता तथा व्यापकता का वर्चस्व बताने हेतु विभिन्न सम्प्रदायों, मतों तथा पंथों का होना स्वाभाविक है। उदाहरणतः यदि केवल वैष्णव मत-सम्प्रदाय को ले इसमें विविध मतों का प्रतिपादन हुआ जैसे रामानुज, माधव, निम्बार्क, वल्लभ, रामानन्द, चैतन्य, शंकरदेव, ज्ञानेश्वर आदि के द्वारा। सभी में विविधता है और मौलिक एकता भी, इसी आधार पर अनेक ऋषियों, मनीषियों, संतों, भक्तों, विचारकों, सुधारकों की विस्तृत परम्परा अपने देश में है। इसी कारण भारत में पंथ निरपेक्षता की जड़े बहुत गहरी है। पुराणवेत्ताओं ने इस धार्मिक चेतना को सतत अक्षुण्य बना रखा है।

यदि इस विविधता तथा इसमें अन्तर्निहित मौलिकता को देखे तो विश्व के सभी विद्वानों ने इसे सहर्ष स्वीकार किया है। विश्व प्रसिद्ध इतिहासकार यदुनाथ सरकार ने हिन्दू धर्म को ''पंथों का संयोग-विश्वासों का सहयोगी तथा दर्शन की संघ

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

रचना'' कहा है। फ्रेंच दार्शनिक रोमा रोला ने इसे ''विविध सम्प्रदायों का एक सुन्दर गुलदस्ता'' बतलाया है। इसीलिए इसे मानव धर्म, शास्वत धर्म तथा सनातन धर्म कहा है। एक चीनी इतिहासकार से यह पूछने पर कि भारतीय और चीनी संस्कृति में क्या अन्तर है उन्होंने इस लेख के लेखक को बताया कि चीन में एकरूपता में एकता (Unifornity in unity) है जबकि भारत में विभिन्नता में एकता (Unity in Diversity) है। दूसरे उसने चीन को 'हान' का देश बतलाया जो वहाँ की जनसंख्या के 80 प्रतिशत है। 'चीनियों' का देश नहीं। इसी भांति भारत को 'हिन्दुओं' का देश बतलाया 'इंडियन्स' का नहीं।

पुराणों में कला तथा स्थापत्य का विस्तृत वर्णन है। चार पुरुषार्थों में काम की विभिन्न ललित कलाओं तथा स्थापत्य के विकास का अध्ययन है। कलाओं में मूर्तिकला के साथ नृत्य, संगीत, गायन, चित्रकला आदि का विस्तृत तथा सूक्ष्म जानकारी का परिचय मिलता है। कला की साधना को भी ईश्वर प्राप्ति या मोक्ष का मार्ग बतलाया गया है। मूर्तियों के निर्माण में चेहरे की भावभंगिमा, हाथों की मुद्राओं की बारीकियों का ध्यान रखा गया। स्थान,भूमि, उपयोग में आने वाली सामग्री, साथ ही पर्यावरण तथा उससे जुड़ी तकनीकी का ध्यान रखा गया है। आज भी अजन्ता-एलोरा की गुफाओं में चित्रित बोलती चलती फिरती मूर्तियाँ, भगवान बुद्ध की अद्भुत प्रतिमा विश्व में भारतीय मूर्तिकला के अद्वितीय उदाहरण है।

स्थापत्य कला में पुराणों में लगभग डेढ़ दर्जन विख्यात शिल्पकार के नामों को दिया है। इसमें विश्वकर्मा सर्वाधिक जाना पहचाना नाम है । विश्वकर्मा को शिल्पकला का प्रथम प्रवर्तक एवं आचार्य भी माना जाता है। उसने देवताओं के वास या निवास बनाये थे जिससे वास या वास्तुशास्त्र शब्द बना। उसने देवताओं के लिए अमरावती नगर का निर्माण किया था। मत्स्य पुराण में 18 प्रसिद्ध शिल्पशास्त्र के ज्ञाताओं- भृगु, अत्रि, वशिष्ठ, मय, नारद, नग्नजीत, विशालक्ष, पुस्दर, ब्रह्म, विश्वकर्मा, कुमार, नन्दीश, शैवक, गर्ग, वासुदेव, अनिरूद्ध, शुक तथा बृहस्पति के नाम दिये हैं।

पुराणों से ज्ञात होता है कि अनेक शिल्पशास्त्री नगर निर्माण, भवन-निर्माण, मंदिरों के निर्माण, दुर्गों, स्मारकों, आवास निर्माण में दक्ष थे। मत्स्य पुराण में वास्तु विद्या का विस्तृत वर्णन 18 अध्यायों (अध्याय 252 से 270 तक) तथा मन्दिर निर्माण का अध्याय 258-263 व 265-270 में किया गया है। इसी भांति अग्नि पुराण में अनेक अध्याय इससे सम्बन्धित है (अध्याय 40, 93-94, 105-6,

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

247) विष्णुधर्मोत्तर पुराण का तीसरा अध्याय मुख्यतः इसी के बारे में है (42-92)। ब्रह्मवैवर्त पुराण में विश्वकर्मा द्वारा अमरावती निर्माण का वर्णन है। पद्मपुराण के 'भूखण्ड' में स्थापत्य कला का वर्णन है। अग्निपुराण में विभिन्न दिशाओं का विधान, देवालय की विधि, पृथक पृथक मूर्ति चिह्नों को दर्शाया है। मत्स्य पुराण में वास्तु विद्या, प्रतिमा लक्षण, देवस्थापत्य, प्रासाद लक्षण, मण्डप लक्षण आदि पर विस्तृत चर्चा है।

उस काल में देवालय के निर्माण के दो प्रकार होते थे - गुफा मन्दिर एवं अन्य निर्मित मन्दिर। मन्दिरों के निर्माण में पाँच प्रकार की सामग्री लोह, लकड़ी, पत्थर, सोना तथा चांदी का प्रयोग होता था। स्कन्दपुराण में इन पाँचों के अतिरिक्त तांबा, पीतल तथा कांशा का भी वर्णन है। भवन निर्माण के समय भूमि पूजन भवन के मुख्य द्वार की दिशा, शकुन विचार, भवन का आकार प्रकार का विशेष ध्यान रखा जाता । मन्दिरों, भवनों, आवास घरों एवं नगरों के नियोजन में आन्तरिक सज्जा तथा वातावरणीय सौन्दर्य का ध्यान रखा जाता। मत्स्य पुराण के अनुसार स्तम्भों के कई प्रकार होते थे जो चार कोने वाला, आठ कोने वाले, सोलह कोने वाले तथा बत्तीस कोने वाले तक होते थे। कुछ स्तम्भ वृत्ताकार भी होते थे, स्तम्भों के विभिन्न अलंकरणों से सजाया जाता जैसे पुष्प, लता, वेलपत्र आदि से। भवनों में प्रकाश तथा वायु का पूरा ध्यान रखा जाता था। उद्यानों का निर्माण. सौन्दर्य तथा पर्यावरण सुरक्षा की दृष्टि से कराया जाता था। ब्रह्माण्डपुराण में उद्यानों में फूल, फल, वृक्षों आदि का विचार किया जाता था। नगर की दृष्टि से जलाशय, उसकी सीढ़ियों, जलाशय में कमल, पक्षियों का कलरव तथा जलक्रीड़ा तक होती थी। नगर तथा भवनों की सुरक्षा का विशेष ध्यान रखा जाता। आधुनिक भाषा में कहूं तो ये विश्व की किसी स्मार्ट सिटी से कम न थे।

संक्षेप में यह कहना उचित होगा कि आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्तों व अनुसंधानों के परिप्रेक्ष्य में पौराणिक साहित्य भण्डार को जोड़कर देखें तो निश्चय ही प्राचीन वैज्ञानिकता तथा अनुभवों का स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं। हिन्दुओं का इतिहास जहाँ धार्मिक सहिष्णुता, उदारता तथा अनेक मत-मतान्तर की विविधता से पोषित होते हुए मौलिक एकता से विभूषित था, वहाँ कला तथा स्थापत्य भी विश्व में अद्वितीय था।

परिशिष्ट : प्रथम 18 पुराणों तथा उनकी श्लोक संख्या

1. ब्रह्म पुराण, 10,000 श्लोक

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

2.	पद्म पुराण,	55,000 श्लोक
3.	विष्णु पुराण,	23,000 श्लोक
4.	वायु पुराण,	24000 श्लोक
5.	मत्स्य पुराण,	14,000 श्लोक
6.	नादरीय पुराण,	25,000 श्लोक
7.	श्रीमदभागवत पुराण,	18,000 श्लोक
8.	मार्कण्डेय पुराण,	9,000 श्लोक
9.	अग्नि पुराण,	15,000 श्लोक
10.	भविष्य पुराण,	14,000 श्लोक
11.	ब्रह्मवैवर्त पुराण,	18,000 श्लोक
12.	लिंगपुराण,	11,000 श्लोक
13.	वराह पुराण,	24,000 श्लोक
14.	स्कन्द पुराण,	81,000 श्लोक
15.	वामन पुराण,	10,000 श्लोक
16.	कूर्म पुराण,	17,000 श्लोक
17.	गरूड़ पुराण,	19,000 श्लोक
18.	ब्रह्माण्ड पुराण,	12,000 श्लोक
प्रथम 18 पुराण कुलयोग		**3,99,000**

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

इतिहास की पौराणिक अवधारणा

डॉ० हर्षवर्द्धनसिंह तोमर*

भारतीय संस्कृत वाङ्मय में पुराण साहित्य का विशिष्ट स्थान है। भारतीय मनीषा में पुराणों को वेदों के पश्चात् 'पुराण इतिहास' को पञ्चम वेद की संज्ञा से अभिहित किया गया है। पुराण भारतीय ज्ञान-दर्शन का विश्वकोष है। पौराणिक वाङ्मय को संदर्भित करते हुये विद्वानों के एक वर्ग की यह अवधारणा रही है कि प्राचीन भारतीयों में इतिहास बोध की कमी थी और वे इतिहास लेखन जैसी परम्परा के प्रति उदासीन थे। यह कहना समीचीन होगा कि कालानुरूप इतिहास की परिभाषा चाहे जो भी की जाये, मानव इतिहास के परिवेश से कभी बाहर नहीं रहा है। इसलिए पुराण-परम्परा का इतिहास देखते समय हमें इतिहास-संबधी भारतीय अवधारणा को ध्यान में रखना होगा। वर्तमान में इतिहास अर्थात हिस्ट्री का अर्थ है व्यक्ति के जन्म-मरण की तिथि और घटनाओं का वर्णन है। यूनानी व पाश्चात्य् इतिहास लेखन की अवधारणा में हिस्ट्री राजा-रानी की घटनाओं का पर्याय है। वही मार्क्स के चिन्तन में हिस्ट्री समाज के वर्ग-संघर्ष और उससे फलीभूत होते शोषण की व्याख्या है। मार्क्सवादी चिन्तन में भौतिक द्वन्द से ही उपजी घटनाओं को ही हिस्ट्री की विषय-वस्तु के रूप में शिरोधार्य किया जाता है। वस्तुतः पश्चिम के इन विद्वानों ने अपने जीवन में योरोप में घटनेवाली मानवीय, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक यातनाओं के दंश को झेला था। धर्म, सामंतवाद तद्नुरूप विकास के नाम पर होती मानवीय त्रासदियों के बीच से ही इनके चिन्तन की धारा प्रस्फुटित हुयी है। निश्चित ही व्यक्ति के लेखन पर समसामायिक

---

* राष्ट्रीय कार्यकारिणी सदस्य अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नईदिल्ली

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

वातावरण का प्रभाव परिलक्षित होता है। यही कारण है कि यह विद्वान अपनी समकालीन वीभत्स त्रासदियों से उपजी मानसिक कुण्ठा से ग्रसित थे और इसलिए यह विद्वान जहाँ भी गये उन्होंने सम्पूर्ण विश्व विशेषकर भारत को योरोपीय दृष्टि से देखा, साथ ही वे श्रेष्ठता के झूठे भाव से भी ओत-प्रोत थे। यहाँ उनकी साम्राज्यवादी मंशा को भी अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। इसलिए इन तथाकथित विद्वानों को भारत के ऐतिहासिक ग्रन्थ मिथक प्रतीत हुये। प्रकारान्तर में जैसे-जैसे भारतीय वाङ्मय में अंतर्निहित ज्ञान-परम्परा के प्रति अन्वेषण की प्रवृत्ति बढ़ी वैसे-वैसे प्रचलित इन मिथक अवधारणाओं का पटाक्षेप होता जा रहा है।

पुराण शब्द अपने विशिष्ट निहितार्थ में इतिहास का परिचायक है। पुराणों की विषय-वस्तु ही सार्वभौमिक इतिहास की संकल्पना को व्यक्त करती है। पुराण शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है पुराना या प्राचीन। सर्वप्रथम पुराणों का प्राचीनतम् उल्लेख हमें वैदिक संहिता में मिलता है। ऋक् संहिता में पुरातन, पुराना या प्राचीन जैसे शब्द पुराणों के लिए प्रयुक्त हुए है।[1] 'पुराणी' शब्द 'गाथा' के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है।[2] पुराण अपने भावार्थ में प्राचीन या पुरातनता के द्योतक है। निरुक्तकार यास्क[3] के अनुसार " पुरां नवं भवति" अर्थात जो प्राचीन होकर भी नवीन होता है, उसे पुराण कहा गया है। पुराणों में भी पुराण शब्द की सुन्दर अभिव्यक्ति मिलती है। वायुपुराण कहता है 'जो प्राचीनकाल में जीवित हो'

यस्मातपुरा ह्यनक्तीदं पुराणं तेन तत् स्मृतम्।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते।।[4]

मत्स्य पुराण[5] में पुराण शब्द की भिन्न व्युत्पत्ति दी गई है, यथा-**'पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधाः'** अर्थात् पुरातनकाल की घटनाओं को विद्वान लोग 'पुराण' कहते है। पद्म पुराण[6] के अनुसार **'पुरा परम्परा वष्टि पुराणं तेन तत् स्मृतम्'** अर्थात जो प्राचीनता की कामना करता है वह पुराण कहलाता हैं। ब्रह्माण्ड पुराण, इसे दूसरे ढ़ग से परिभाषित करता है-**'यस्मात् पुरा ह्यभूच्चैतद् पुराणं तेन तत् स्मृतम्'** अर्थात प्राचीनकाल में ऐसा हुआ था। इन सभी व्युत्पत्तियात्मक अवधारणा के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि पुराण का वर्ण्य -विषय प्राचीनकाल से संबधित है।

प्राचीनकाल से ही पुराणों को एक विद्या के रूप में माना गया है। स्मृतिकार भी चौदह विद्याओं का उल्लेख करते है। जिनका आधार धर्म है और धर्म को स्वाधार बनाने में पुराण अन्यतम विद्या हैं। इसलिए स्मृतिकार इस सर्वश्रेष्ठ विद्या को किसी अज्ञात कुलशील तथा अपरीक्षित शिष्य को नहीं देने के लिए निर्देशित करते हैं।[8] विद्वानों ने पुराणों को वेद के समकालीन माना है अर्थात वेदों का पूरक माना है। ऋक् संहिता[9]

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

(3.54.9) में ऋषि कहता है कि **''सना पुराणं अधयेमिआरात्''** अब मैं सदा होने-रहने वाले पुराण का अध्ययन करता हूँ। वैदिक क्रियाओं में पुराणों का स्वाध्याय आवश्यक बताया गया है। अध्वर्यु यज्ञ में प्रेरणा देता है कि पुराण वेद हैं।[10] अथर्ववेद में पुराणविद्या की दैवीय उत्पत्ति 'उच्छिष्ट संज्ञक ब्रह्म' से बतलाई गई है।

ऋचः सामानि छन्दासि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिविश्चिता दिविदेवा ।।[11]

अर्थात ऋक्, साम, छन्द(अथर्व) और यजुर्वेद के साथ पुराण भी उच्छिष्ट यज्ञ अवशेष या ब्रह्म से देव भी उत्पन्न हुए है। वैदिक साहित्य में पुराणों का उल्लेख होना पुराणों को वेदों के समकालीन सिद्ध करता है। प्राचीनता के कारण ही शतपथ ब्राह्मण में पुराण को वेद कहा गया है।[12] उपनिषद ग्रन्थों में भी स्थान-स्थान पर पुराण विद्या का निर्देश है। नारद सनत्कुमार से कहते हैं कि- मैं ऋग्वेद, यजुष्, साम, अथर्व और पञ्चम वेद इतिहास पुराण को जानता हूँ।[13] सूत्र साहित्य में भी पुराणों का बार-बार उल्लेख मिलता है, साथ ही पुराण के विशिष्ट महत्व को प्रतिपादित किया गया है। साधारण जन के लिये ही नहीं, प्रत्युत शासक वर्ग के लिये भी है। बहुश्रुत वही हैं, जो पुराण में कुशल होता है।[14] पुराणविद्वों का भी मानना है कि वेदों में जो बात संक्षेप में कही गयी है, पुराणों में उसी को विशुद्ध एवं व्याख्यात्मक ढङ्ग से कहा गया है। पुराणों की प्राचीनता और वेद समदृश्यता के सन्दर्भ में महामहोपाध्याय पण्डित गिरधर शर्मा चतुर्वेदी[15] ने भी अपने शोधपूर्ण ''पुराणों की अनादिता'' नामक लेख में लिखा है कि -"पुराण विद्या का अस्तित्व वेदों जितना पुराना होने के कारण उनकी सत्ता भी वेदवत् अनादि है।"

पुराणों में ही पुराणोंत्पत्ति का वर्णन मिलता है किन्तु इसमें कुछ पार्थक्य दर्शित होता है। विष्णु पुराण में यह वर्णन है कि वेदों का विभाग करने के बाद प्राचीन कथाओं, आख्यानों, गीतों और जनश्रुतियों तथा तथ्यों को एकत्रकर एक पुराण संहिता का निर्माण किया। वेदों की ही तरह पहले पुराण भी एक वृहत्संहिता में विद्यमान थे। युग सुविधा को ध्यान में रखते हुए कृष्ण द्वैपायन व्यास एवं उनके शिष्य लोमहर्षण ने पुराणों को अष्टादश-अट्ठारह भागों में विभक्त किया। मत्स्य पुराण पुराणों की दैवीय उत्पत्ति पर प्रकाश डालता हैं कि ब्रह्मा ने सबसे पहले सभी शास्त्रों में पुराणों का स्मरण किया। पश्चात् उनके मुख से वेद निकले-

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम।
अनन्तरं च वक्त्रोभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः।।[16]

वस्तुतः पुराण वाङ्मय को संकलित और सुरक्षित करने का श्रेय सूत-परम्परा को जाता है। आधुनिक समीक्षा विषयक मतों में से एक मत इस विषय का प्रतिपादन

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

करता है कि सूत का सामाजिक स्तर निम्न था उचित प्रतीत नहीं होता। वंशन्कुशल, धीमान, कृतबुद्धि आदि विशेषणात्मक शब्द पौराणिक सूत के (परम्परा के अनुसार रोमहर्षण यथा लोमहर्षण) लिए प्रयुक्त हुये है। ए०के०बार्डर का यह कथन तथ्यसंगत प्रतीत होता है कि सूत ब्राह्मण होते थे तथा पदेन उनका कर्त्तव्य राजकीय वंशावली को सुरक्षित करना होता था। उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रार्दुभाव उत्तरवैदिककाल में ही हो चुका था। वी०एस० पाठक ने सूत का संबंध भृगु, अंगरिस एवं अथर्ववन जैसे वैदिक ऋषियों से माना हैं।[17] ऋक्संहिता से ज्ञात होता है कि तीनों ऋषि वंश एक ही सूत्र में बंधे थे- **''नः पितरो नवम्वा अथर्वाण भृगवो सोभ्यासः''** इन्हीं ऋषियों की परम्परा में इतिहास-पुराण सुरक्षित था। विष्णुपुराण[18] (3.3.18) को भी इस तथ्य के प्रमाण के रूप में उद्धृत किया जा सकता है कि ऋषियों की यह परम्परा पौरव वंश के समय से मगध साम्राज्य के उदय तक इतिहास का प्रणयन तथा पुर्नलेखन का कार्य करती रही। पूर्वोक्त मत-मतान्तरों से यही स्पष्ट होता है कि पुराण विद्या का आर्विभाव भी वैदिक युग में ही हो चुका था और जिस प्रकार प्राचीन महर्षियों ने वेद एवं वैदिक साहित्य का व्यवस्थापन-सम्पादन किया, उसी प्रकार उन्होंने ही पुराणों का भी वर्गीकरण एवं सम्पादन किया। पुराण-शब्द का अर्थ-विकास आधुनिककाल के 'प्रज्ञा-पुराण' तक प्रवर्धित हुआ है। ध्यातव्य तथ्य यह है कि परम्परा अपने में लोक की प्रथित प्रथाओं को समाहित करती हुयी पुरस्सर होती है। इस दृष्टि से पुराण एक विद्या है।[19] इसी लोक तथ्य का उल्लेख कुमारिका खण्ड[20] (40/199) में किया गया है **''इतिहास पुराणानि भिद्यन्ते लोक-गौरवात''** अर्थात लोक गौरव को अपने में समाहित करने से पुराणों में भिन्नता लक्षित होती है। लोक परम्परा की पुष्टि वात्स्यायन ने न्याय भाष्य में की है-"लोक वृत्तम इतिहास पुराणस्य विषयः"।

भारतीय वाङ्मय में पुराण शब्द महापुराणों के संबंध में प्रयुक्त हुआ है। इसके अतिरिक्त लघु पुराणों को उपपुराण कहा गया है। पुराणों की इस श्रंखला में महापुराण, उपपुराण, औपपुराण, जातिपुराण, स्थलपुराण, सूक्ष्मपुराण, कुलपुराण आदि परिगणित किये जाते है। श्रमण-परम्परा में भी पुराण-लेखन हुआ है।[21] पुराणों में महापुराणों की नामावली को लेकर समानता का भाव लक्षित होता है। श्रीमद्भावतपुराण में महापुरूणों के लिए 'महत' शब्द दो जगह प्रयुक्त हुआ है। ब्रह्मवैवर्त, वायु, विष्णु, पुराण में महापुराणों के लिए 'महत' शब्द का प्रयोग मिलता है। प्रतीत होता है कि इनकी विशिष्ट महत्ता व प्राचीनता के कारण इन्हें महापुराण कहा गया है और इन्हें अट्ठारह की संख्या में परिगणित कर लिया गया। शास्त्रोक्त परम्परा में अट्ठारह महापुराणों को ही शिरोधार्य किया गया है। यह संख्यात्मक परिगणन उद्देश्यात्मक एवं दार्शनिकता का भाव

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

लिये हुये है। चार वेद, चार उपवेद, छः वेदांग, पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्म शास्त्र में भी अट्ठारह विद्यायें सुप्रसिद्ध हैं।[21] इसके अलावा विद्वानों का मत है कि मानव शरीर में कार्य करने वाले तत्वों की संख्या अट्ठारह ही है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ,पाँच वायु, मन बुद्धि और अहंकार मानव शरीर के अट्ठारह तत्व है। इन अट्ठारह के द्वारा आत्मा अपना कार्य संपादित करती हैं। सम्भवतः प्रतीत होता है कि संस्कृत वाङ्मय में अट्ठारह की संख्या के प्रति विशेष आग्रह का भाव है। महाभारत के पर्वों की संख्या अट्ठारह है, गीता के अध्याय अट्ठारह हैं और श्रीमद्भागवत् के श्लोकों की संख्या अट्ठारह हजार है। संभावना यही फलीभूत होती है कि किसी दार्शनिक या आध्यात्मिक महत्त्व के फलस्वरूप ही इस संख्या को महत्त्व दिया गया है। निश्चित ही महापुराणों की भी संख्या अट्ठारह करने के पीछे यही निहितार्थ रहा होगा। इन अट्ठारह महापुराणों के नाम हैं -ब्रह्म, पद्म, विष्णु, वायु, भागवत्, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, वरहा, लिंग, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़ और ब्रह्माण्ड। इतिहास एवं प्राचीनता की दृष्टि से वायु, मत्स्य, ब्रह्माण्ड, विष्णु पुराण महत्त्वपूर्ण हैं।
देवी भागवत्पुराण से इन महापुराणों की नामावली प्राप्त होती है।

मद्वयं भदयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्।
नार्लिपाग्निपुराणानि कूस्कं गारूडमेव च ॥[22]

अर्थात (आद्यक्षर) 'म' वाले दो, 'भ' वाले दो, 'ब्र' वाले तीन, 'व' वाले चार, 'ना' वाले एक, 'लिं' वाला एक, अग्निपुराण एक, 'कू' वाल एक, 'स्क' वाला एक और एक गरूडपुराण है। इन महापुराणों के अलावा कुछ उपपुराण भी है जिनकी संख्या को लेकर मत-भिन्नता है। इन्हें भी अट्ठारह की संख्या में परिगणित किया जाता है। उप पुराण महापुराणों के बाद के पुराण रहे हैं। इन उपपुराणों के अंतर्गत सनत्कुमार, नरसिंह, नन्द, शिवधर्म, दुर्वासस्, नारदीय, कपिल, वामन, उशनस्, मानव, वरूण, कलि, महेश्वर, साम्ब, सौर, पाराशर, मारीच और भार्गव को परिगणित किया जाता है।

हिन्दू संस्कृति व धर्म के विकास में धार्मिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से पुराणों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। पुराण वेद का ही अनुकरण है। जहाँ एक और वैदिक संहिता ने धर्म-दर्शन को प्रतिष्ठित किया वहीं दूसरी और पुराणों ने धर्म एवं उसके निहितार्थों को जनसामान्य के हृदय में अवतीर्ण कर दिया। पुराण अपने लक्षण एवं विषय-वस्तु से ही वैदिक-दर्शन और प्राचीनता का सूत्र देते है। जहाँ अधिकतर पुराण पुराणों के पञ्चलक्षणात्मक होने की बात कहते है, वहीं मत्स्य पुराण, पुराणों के चतुर्थलक्षणात्मक होने का प्रतिपादन करता है-

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

आख्यानैश्वप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः।
पुराणसंहितां चक्रे भगवान् बारायणः॥[23]

काल में दृष्ट इतिवृत्त'आख्यान' है। परोक्ष में अचिरकाल में वृत्त इतिवृत्त 'उपाख्यान' है। परम्परा से श्रुत किन्तु जिनके कर्त्ता का पता नहीं है, ऐसी इतिवृत्त वाणियाँ 'गाथा' कहलाती है। ऐतिहासिक विषय से संबंधित पौराणिक इतिहास विभाग में अनुदित धर्मशास्त्र आदि शास्त्रों में प्रतिपादित ज्ञान एवं कर्त्तव्यविषयक वचन 'कल्पशुद्धि' है। श्रौत-स्मार्त, समायाचार, धर्म के भेद, नाना उपासना भेद, नीति एवं दर्शन भेद भी कल्पशुद्धि के अंतर्गत ही हैं।[24] उग्रश्रवा सौति के मत से यद्यपि उक्त चार विषयों का ही समावेश बादरायण ने किया, किन्तु लोमहर्षण के मत से 'पुराणं पञ्चलक्षणम्' समन्वित है उनके अनुसार पुराण पञ्चलक्षणात्मक है-

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मनवन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥[25]

अर्थात सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश मन्वन्तर एवं वंशानुचरित- ये पुराण के पाँच प्रतिपाद्य विषय हैं। पुराणविद्व भी पुराणों के इन्हीं पञ्चलक्षणों को महत्ता प्रदान करते है। पुराण-लक्षण विषयक यह पद्य प्रत्येक पुराण में उपलब्ध होता है। पञ्चलक्षण शब्द को इतना अनिवार्य माना जाता है कि अमरकोश में यह शब्द बिना किसी व्याख्या के ही प्रयुक्त किया गया है। व्याख्याविहिन पारिभाषिक शब्द का प्रयोग उसकी सार्वभौमिक लोकप्रियता का संकेत माना जाता है। इस विषय पर पुराणविद् प्रो० संतोष शुक्ला[26] का मत भिन्न है। उनका मानना है कि-" पुराणों के जो पञ्चलक्षण बताए गए हैं, वे प्रायः विद्यमान पुराणों में पूर्णरूप से परिभाषा के अनुसार घटित नहीं होते हैं। कुछ पुराणों में तो इनसे अतिरिक्त कई विषय प्रतिपादित हुए हैं। अन्य में तो पञ्चलक्षणों में से कई विषय प्रतिपादित नहीं हुए हैं।" इस प्रकार हम कह सकते हैं कि केवल पञ्चलक्षणात्मक होना ही पुराणों का विषय नहीं रह गया। फिर भी विद्यमान पुराणों के विषय के रूप में ये पञ्चलक्षण बहुत ही छोटे अंश है। परवर्ती आचार्यो ने तो यहाँ तक कहा है कि पञ्चलक्षण उपपुराणों के विषय हैं। महापुराणों के लिए दस लक्षण होने चाहिये। पूर्वोक्त पञ्चलक्षणों के अतिरिक्त अन्य लक्षण ये हैं- वृत्ति, रक्षा(ईश्वरावतार), मुक्ति, हेतु(जीव) और अपाश्रय (ब्रह्म)। श्रीमद्भागवत में कहा गया है-

सर्गश्चाप विसर्गश्चवृत्ती रक्षान्तराणि च।
वंशो वंश्यानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः ॥
दशभिर्लक्षणैः युक्तं पुराणं तद्विदो विदुः।
केचित्पञ्चविधं ब्रह्मन् महदल्पव्यवस्थया॥[27]

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पुराणविद् मानते हैं कि दशलक्षणों से युक्त (सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, मन्वन्तर, वंश, वंशानुचरित, संस्था, हेतु, और अपाश्रय) पुराण महापुराण कहलाता है। इसके अलावा कुछ विद्वानों का यह मानना भी है कि जो पुराण ठीक-ठीक पंञ्चलक्षणयुक्त हैं और जो नहीं हैं, यह देखकर इनके प्राचीन और प्राचीनतर- दो वर्ग किये जा सकते हैं। इस नियम के आधार पर वायु, ब्रह्माण्ड, मत्स्य और विष्णु तथा अन्य पुराण प्राचीनतर प्रतीत होते हैं।[28] महापुराणों का एक अन्य वर्गीकरण और है जिसमें विशेष रूप से विष्णु, शिव और अन्य देवताओं के विचार से किया गया है, यथा-

मात्स्यं मौर्मं तथा लैङ्गं शैवं स्कान्दं तथैव च।
आग्नेयं च षडेतानि तामसानि निबोध मे ।।
वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभम्।
गारुडं च तथा पाद्मं वाराहं शुभदर्शने।।
सात्त्विकानि पुराणानि विज्ञेयानि शुभानि वै।
ब्रह्माण्डं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं तथैव च।।
भविष्यं वामनं ब्राह्मं राजसानि निबोध में।।[29]

मत्स्यपुराण के अनुसार पुराणों का भेद रस इस प्रकार है-

सात्त्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः।
राजसेषु च माहात्म्यमधिाकं ब्रह्मणो विदुः।।
तद्वदग्नेश्च माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च।
संकीर्णेषु सरस्वत्याः पितृणां च निगद्यते।।[30]

अर्थात सात्त्विक पुराणों में हरि का माहात्म्य विशेष है। राजसिक पुराणों में ब्रह्मा का और तामसिक पुराणों में अग्नि और शिव का। इसी प्रकार संकीर्ण पुराणों में सरस्वती और पितरों का माहात्म्य वर्णित है। स्कन्दपुराण में पुराणों के वर्गीकरण में पृथकता का भाव दर्शित होता है यथा-

अष्टादशपुराणेषु दशभिर्गीयते शिवः।
चतुर्भिर्भगवान् ब्रह्मा द्वाभ्यां देवी तथा हरिः।।[31]

अट्ठारह महापुराणों में दस के द्वारा शिव, चार के द्वारा ब्रह्मा, तथा दो -दो के द्वारा देवी तथा हरि की स्तुति की गई है। पुराणों[32] के प्रतिपाद्य विषयों के विश्लेषण के आधार पर पुराणों के छः वर्ग किए गये है।

पुराण षड्वर्ग

प्रथम वर्ग — ज्ञान विश्वकोष वर्ग(गरुड़, अग्नि, नारदपुराण)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

द्वितीय वर्ग	तीर्थव्रत प्रतिपादन वर्ग(पद्म, स्कन्द और भविष्यपुराण)
तृतीय वर्ग	दार्शनिक वर्ग(ब्रह्म, भागवत, ब्रह्मवैवर्तपुराण)
चतुर्थ वर्ग	ऐतिहासिक वर्ग(ब्रह्माण्ड और वायुपुराण)
पंञ्चम वर्ग	साम्प्रदायिक साहित्य वर्ग(शिव, लिङ्ग, वामन औरमार्कण्डेयपुराण)
षष्ठ वर्ग	सृष्टि-विषयक वर्ग(वाराह, कूर्म और मत्स्यपुराण)

इस प्रकार पुराणों के लक्षणों व विषय-सामग्री के अनुसार पुराणों में सर्ग, प्रतिसर्ग, देवताओं और ऋषियों का वंशवृत्त, मन्वन्तर और राजवंश वर्णित होते हैं। इनमें से पूर्वाक्त तीन विषयों में प्राचीन धर्म, आख्यान, तत्वज्ञान और सृष्टि-वर्णन इन विषयों का संकलन है। इसके अतिरिक्त राजाओं के वंशवृत्त और इतिहास की सामग्री मिलती है। इसके अलावा अन्य धार्मिक विषय धार्मिक शिक्षा, कर्मकाण्ड, दान, व्रत, भक्ति, योग, विष्णु और शिव के अवतार, श्राद्ध, आयुर्वेद, संगीत, व्याकरण, साहित्य, छंदःशास्त्र, नाट्य, ज्योतिष, शिल्पशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजधर्म इत्यादि विषयों का समावेश पुराणों में है। पुराण इतिहास-

पुराण अपने नामारूप स्वंय इतिहास का प्रतिनिधित्व करते है। संस्कृत वाङ्गमय में इतिहास पुराण दोनों ही अतीत में घटित घटनाओं के सन्दर्भ में प्रयुक्त हुये है। अस्तु आज जिसे हम इतिहास कहते है, उसकी अतीतकालीन भारतीय व्याख्या क्या रही होगी ? प्राचीन भारतीय वाङ्गमय में पुराण और इतिहास शब्द कभी भिन्न तो कभी अभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुए है। सायण का कथन(13.4.3) है कि इतिहास का तात्पर्य सृष्टि विषयक निर्वचन है, यथा आरम्भ में जल के अतिरिक्त कुछ नहीं था । यास्क ने भी इतिहास शब्द के निर्वचन -इति ह आस अर्थात किसी तथ्यात्मक कथानक, आख्यान को इतिहास माना है। इसके अतिरिक्त पुराणकारक परिभाषित करते हैं कि -

धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम् ।
पूर्ववृत्तंकथायुक्तम्मितिहासं प्रचक्षते ॥

अर्थात धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष के उपदेशसहित और प्राचीन चरितों से युक्त ग्रन्थ को इतिहास कहा जाता है। वस्तुतः प्राचीन भारतीय परम्परा अधिकांशतया धर्मग्रन्थों के प्रणयन की ओर थी इसलिए अन्य ग्रन्थों की भांति पुराणों में भी पुरुषार्थ चतुष्टय साधना को जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य के रूप में निरूपित किया गया है और इसकी प्राप्ति के लिए चार प्रकार की शिक्षाओं क्रमशः आन्वीक्षिक, त्रयी वार्त्ता तथा दण्ड नीति को ग्राह्य करना आवश्यक था। पुराण अपने वृहत स्वरूप में वैदिक जीवन-दृष्टि की समीचीन व्याख्या है। 'पुराण-इतिहास' को वैदिक धर्म एवं दर्शन के परिप्रेक्ष्य में समझना आवश्यक है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

इतिहास शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग हमें अथर्ववेद के व्रातकाण्ड में प्राप्त होता है कि व्रती-संकल्पी महान लक्ष्य (दिशा) की और जब चलता, उसका अनुकरण इतिहास पुराण, पुराण, गाथा और नाराशंसी करते है।

"स वृहती दिशमनुव्यमलत् । तमितिहासः च पुराणं च गाथाश्च नारशंसीश्चनुव्यचलन् ।"[33] (15.1.6)

अथर्ववेद के अनुसार पुराण, पुरातन कल्पों (वृत्तों) का द्योतक है, तथा घटनाओं का यथातथ्य निर्देशन इतिहास है। गाथा एवं नाराशंसी भारत-ईरानी (इण्डोईरानियन स्तर) से संबंधित है, जबकि अवेस्ता के एक भाग को ही 'गाथा' कहते है। इसी प्रकार नाराशंसी का अवेस्ता में वर्णित समस्तरीय शब्द 'नइर्योसङ्ग' उत्तर वैदिककाल में इतिहास एवं पुराण दोनों को समान कोटि में रखा जाता था। दोनों को ही ऐतिह्य की संज्ञा प्राप्त हुई थी।[34] यास्काचार्य ने अपने निरुक्त में स्थान-स्थान पर ऋचाओं के निर्वचन के समय ब्राह्मण-ग्रन्थों के आख्यानों को **'इतिहासमाचक्षते'** कहकर उद्धधृत करते है। यास्काचार्य ने वेद-व्याख्याकारों के विभिन्न सम्प्रदायों की गणना के प्रसंग में ऐतिहासिकों का भी एक पृथक सम्प्रदाय के रूप में **'इति ऐतिहासिकाः'**- ऐसा कहकर घोषित किया है। इतिहास शब्द की व्युत्पत्ति यास्क ने इस प्रकार की है, यथा- 'इति ह आस' अर्थात् इस प्रकार से निश्चयेन वर्तमान था। इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीनकाल में निश्चित रूप से होनेवाली घटना का नाम 'इतिहास' है, **यथा-'निदानभूतः इति ह एवमासीत् इति य उच्यते स इतिहासः'**।[35]

इस व्युत्पत्ति से ज्ञात होता है कि प्राचीनकाल में वास्तव रूप में घटित घटना ही इतिहास है। जैसा कि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हिस्ट्री लेखन में वस्तुनिष्ठता को घटना के साथ जोड़कर देखा जाता है। प्रस्तुत विमर्श में एक प्रमुख प्रश्न यह बनता है कि पुरातन ग्रन्थों में इतिहास एवं पुराण शब्दों के तात्पर्य एवं अभिव्यजंन में भिन्नता स्थापित करने का प्रयास किया गया है अथवा नहीं। वस्तुतः इस प्रसंग में विरोधात्मक विवरण प्राप्त होते है। यहाँ इस स्थिति को स्पष्ट करने के लिए दो भाष्यकारों के साक्ष्य प्रस्तुत किये जा सकते है। शतपथ ब्राह्मण[36] के स्थलों की व्याख्या करते हुए सायण ने इतिहास की परिभाषा में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति को निरूपित करने वाले आख्यानों को सम्मिलित किया है तथा पुराण की परिभाषा में उन आख्यानों को रखा है, जो पुरुरवा एवं उर्वशी से सम्बंधित एवं समनुवर्ती वर्णनों को निरूपति करते हैं। यास्क ने अपने निरुक्त में 'देवापि और शान्तनु' के आख्यान को 'इतिहास' कहा है। इसी प्रकार निरुक्त में ही विश्वामित्र को सुदास पैजवन के पुरोहित होने वाली घटना को भी इतिहास कहा है-

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

'तत्रेतिहासमाचक्षते देवापिश्चाष्टिषेणः शन्तनुश्च कारव्यौ भ्रातरौ बभूवतुः'[37]

'तथा तत्रेतिहासमाचक्षते विश्वामित्र ऋषिः सुदासः पैजवनस्य पुरोहितो बभूव'[38]

किन्तु शंकर ने इसकी परिवर्तित व्याख्या को प्रस्तुत किया है। वृहदारण्यक उपनिषद् पर टिप्पणी करते हुये शंकर का कथन है कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति से संबंधित कथानक पुराण के अन्तर्गत आते हैं तथा पुरूरवा-उर्वशी की कथा अर्थात् राजवंशों से संबंधी वृतान्त निरूपित करनेवाले विवरण इतिहास की परिधि में आते हैं।

''पुराणम्-असद्वा इदमग्र आसीत् इतिहास इति-उर्वशी पुरूरवसोः संवादादिः''।[39]

संस्कृत वाङ्मय के मूल स्थलों में दोनों ही शब्द संदर्भित मिलते हैं किन्तु दोनों को परस्पर भिन्न माना गया है। शतपथ ब्राह्मण[40] का यह दृष्टांत्, कि अश्वमेध के विषय में कहा गया है कि इस अवसर पर आठवीं पारिप्लव रात्रि में इतिहास एवं नवीं पारिप्लव रात्रि में पुराण का श्रवण-श्रावण अपेक्षित है। गोपथ ब्राह्मण[41] ने सपर्वेद, पिशाचवेद, असुरवेद, इतिहासवेद एवं पुराणवेद का सम्बन्ध पाँच पृथक महात्याहृतियों से मानकर इनके पृथक आस्तित्व की और इंगित किया है। इन दोनों को परस्पर भिन्न मानने की प्रवृत्ति उत्तरकालीन स्तरों पर चलती रही । मनु का अभिमत है कि श्राद्ध के अवसर पर धर्मशास्त्र, आख्यान, इतिहास एवं पुराण के स्वाध्याय एवं श्रवण की व्यवस्था अपेक्षित है:

स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि ।
आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानि खिलानी च ।।[42]

पुराण ग्रन्थों में भी अनेक स्थलों पर इतिहास को 'इतिवृत्त' अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि सृष्ट्यादि प्रतिपादक आख्यान को 'पुराण' एवं इतिवृत्त प्रतिपादक आख्यान को इतिहास कहा जाता है। यथा-

अन्नाप्युदाहरतामितिहासं पुरातनम्[43]

वैदिक परम्परा में महाभारत, रामायण को भी इतिहास-ग्रन्थ के रूप में माना जाता है। स्वंय महाभारत ग्रन्थ भी अपने को इसी नाम से पुकारता है, यथा-

'जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा'[44]

'इतिहासोत्तमादस्माद् जायन्ते कविबुद्धयः'[45]

पुराण एवं इतिहास में भिन्नता के द्योतक उक्त साक्ष्यों के बावजूद सामान्यतया यह दोनों विषय एक दूसरे के पूरक ही है। इसके इतर वायु पुराण तो स्वयं को 'पुरातन इतिहास' के रूप में प्रस्तुत करता है-

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

इमं यो ब्राह्मणो विद्वान इतिहासं पुरातनम्।
श्रृणुयाद् श्रावयेद् वापि तथाध्यापयऽपि च॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं वेदेश्च संमतम्।
कृष्णद्वैपायनेनोक्तं पुराणं ब्रह्मवादिना॥[46]

इसी प्रकार का मत पद्मपुराण का भी है, जो स्वयं को मुनीश्वर शाण्डिल्य द्वारा इतिहास घोषित करता है-

इतिहासमिमं पुण्यं शाडिल्योऽपि मुनीश्वरः।
पठते चित्रकूटस्थो ब्रह्मानन्दपरिप्लुतः॥

उक्त आशय का ही साक्ष्य कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी प्राप्त होता है-

'पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रं चेतीतिहासः'[47]

इसी प्रकार उत्तरकालीन कोशकारों एवं टीकाकारों के विवरण एवं व्याख्या से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि इतिहास एवं पुराण एक ही आशय के द्योतक माने जाते है। एतदर्थ अमरकोश[48] एवं महाभारत[49] के टीकाकार नीलकंठ के साक्ष्य प्रस्तावित किये जा सकते हैं। यहां इतिहास एवं पुराण दोनों को 'पुरावृत्त' कहकर दोनों में अभेद्य संबंध निरूपित किया गया है। प्रतीत होता है कि याज्ञवल्क्य स्मृति के काल तक सम्भवतः पुराण शब्द में पुराण एवं इतिहास दोनों का ही आशय समाहित हो चुका था, क्योंकि पुराण अब पर्याप्त व्यापक ज्ञान क्षेत्र से जुड़ चुके थे। इस स्मृति में धर्म के चौदह स्थानों (स्रोतों) में केवल पुराण की गणना की गई है न कि इतिहास अथवा इतिहास-पुराण की।[50] इस प्रकार का मत विष्णु पुराण का भी है।[51] महाभारत के उल्लेख से उक्त स्मृतिकार की इस धारणा को पुष्ट किया जा सकता है कि इतिहास भी धर्मशास्त्र से संबंधित ग्रन्थ माने जाते थे।[52] अतः पुराण व इतिहास में समरूपता भारतीय चिन्तन धारा में यथेष्ट लगता है।

पुराणों के पञ्चलक्षण सर्ग, विसर्ग, मन्वन्तर, वंश, वंशानुचरित ही पुराणों में निहित इतिहास की संकल्पना को चरितार्थ करते है। इन लक्षणों में सर्ग, व प्रतिसर्ग से सृष्टि के उदय व अवसान पर प्रकाश डाला जा सकता है और साथ ही सभ्यताओं के उत्थान एवं पतन पर प्रकाश डाला जा सकता है। मन्वन्तर के कालों के मान के रूप में इतिहास की अवधारणा स्पष्ट होती है। वंश एवं वंशानुचरित जिसके अंतर्गत उन राजवंशों और उनकी उपलब्धियों का वर्णन है जो प्रारम्भ से लेकर पुराणों के संकलनकाल तक शासन करते रहे।

पुराणों में सृष्टि रचना के जो विविध विषय वर्णित हैं उनमें से युग, मन्वन्तरादि की विवेचना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मनुष्यों का एक वर्ष देवों का एक दिन और एक रात है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

12,000 दिव्य वर्षों का अर्थात् मनुष्यों के 43,20,000 वर्षों का एक चतुर्युग या महायुग होता है। इस महायुग में कृत, त्रेता, द्वापर और कलि-ये चार युग होते हैं। इनकी वर्ष-संख्या का परस्पर तारतम्य 4:3:2:1 इस हिसाब से बैठता है। प्रत्येक युग के आगे-पीछे एक-एक सन्धिकाल उस युग के दशमांस के बराबर होता है। इस एक दिन और रात को कल्प कहते हैं। प्रत्येक कल्प में मानव जाति के आदिपुरुष चौदह मनुओं के काल-विभाग अर्थत मन्वन्तर होते हैं। प्रत्येक मनु 71-71 चतुर्युगों की, सन्धिकाल के अतिरिक्त अध्यक्षता करता है। पुराणों में निहित सार्वभौमिक इतिहास सृष्टि के उद्भव तथा देवताओं से संबंधित विभिन्न कथाओं से प्रारम्भ होता है। पुराणों में निहित राजनीतिक इतिहास को समीक्षा की दृष्टि से देखा जाये तो प्रतीत होता है कि वंशानुचरित्र खण्ड के दो विशिष्ट स्तर हैं। प्रथम स्तर हमारे अपने कल्प (कालगणना) का इतिहास है जो मनु वैवस्वत् से लेकर प्राक्बौद्ध युग के नरेशों तथा उनकी उपलब्धियों का वर्णन करता है। द्वितीय स्तर का संबंध उन स्थलों से है जिनमें बौद्ध युग से लेकर गुप्तकाल तक के नृपतियों एवं राजनीतिक घटनाओं का वर्णन हुआ है। प्रथम स्तर में पुराणों के वंशवृक्ष मनु से प्रारम्भ होते हैं। मनु ने ही प्रलय काल में मानवों की रक्षा की थी। प्रथम राजा वैवस्वत मनु के दस पुत्र थे। समस्त द्वीपों को इन दस पुत्रों को बाँट दिया गया। ज्येष्ठ पुत्र पुरुष और स्त्री उभयविध थे और 'इल' और 'इला' दोनों नामों से प्रसिद्ध हुए। इला के पुत्र पुरूरवा ऐल प्रतिष्ठान पर राज्य करते थे। उन्होंने ऐलवंश या चन्द्र वंश चलाया। उनके पुत्र आयु, पुरूरवा के पश्चात् प्रतिष्ठान के राजसिंहासन पर बैठे। इसी प्रथम स्तर में इक्ष्वाकुवंश, सूर्यवंशीय, चन्दवंशीय एवं कुरुवंश के शासक वंशों की वंशावली प्राप्त होती है। इक्ष्वाकु वंश की वंशावली के अंतर्गत इक्ष्वाकु, विकुक्षि, ककुत्स्थ, अनेना, पृथ, वृषदश्व, अन्ध्र, यवनाश्च, श्रौव, श्रावदस्तक, वृहदश्व, कुवलाश्व, द्वादस, निक्कुभ; संहतावश आदि अन्य शासकों का वर्णन मिलता हैं। द्वितीय स्तर का संबंध उन दृष्टांतों से है जिनमें बौद्ध युग से लेकर गुप्तकाल तक के नृपतियों एवं राजनीतिक घटनाओं का वर्णन हुआ है। इस प्रकार की ऐतिहासिक सूचनाऐं कालविशेष में निहित राजनैतिक इतिहास का पर्याय है।[53]

मत्स्यपुराण से भी महाभारत के पूर्व व पश्चात् के राजवंशों का वर्णन मिलता है जो ऐतिहासिक दृष्टि से प्रमाणिक है। इसी पुराण में कलिवंश का वर्णन मिलता है जिसकी स्थापना वृहदर्थ नामक शासक ने की थी और उस वंश के बत्तीस वंशजों ने मगध पर एक हजार वर्षों तक शासन किया।[54] इसके अतिरिक्त यह पुराण शिशुनाग वंश की वंशावली को भी स्पष्ट करता है।[55] साथ ही कुछ जनपदों व महाजनपदों का भी उल्लेख हुआ है। इसी पुराण में उल्लेख हुआ है कि शुंङ्ग वंशीय सेनापति पुष्यमित्र

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बृहद्रथवंशज राजाओं का विनाशकर स्वयं शासक होगा और छत्तीस वर्षों तक राज्य करेगा।[56] इसके अलावा प्रकारान्तर के अन्य राजवंशों एवं उनसे संबंधित शासकों का वर्णन भी यह पुराण प्रस्तुत करता है।

पुराणों से मौर्यों का वंशक्रम जानने में बड़ी सहायता मिलती है। वायु पुराण में वर्णित वंशावली को आधार बनाकर पार्जिटर ने मौर्यों के शासन वंश का वर्णन किया हैं। मत्स्यपुराण से आन्ध्र सातवाहन वंशीय शासकों की भी प्रमाणिक सूची प्राप्त होती है।[57] इन प्रमाणों की पुष्टि सातवाहन शासकों के अभिलेखों और सिक्कों से की जा सकती है। मत्स्यपुराण को आधार बनाकर पार्जीटर ने आंध्र सातवाहन शासकों की वंशावली निर्मित की है। इस वंशावली के प्रारंभिक शासकों में सिमुक, शातकर्णी, कृष्ण की प्रमाणिकता नानाघाट अभिलेख से भी प्रमाणित होती है। विदेशी शासकों में कुषाण, हिन्द-यवन, शक आदि को तुषार,मलेच्छ, मौन, गुरूण्ड जैसे सांकेतिक शब्दों से वर्णित किया गया है।[58] मत्स्यपुराण में विक्रम संवत प्रवर्तक विक्रमादित्य को गर्दभिलका का पुत्र मानते हुये उसका उल्लेख मिलता है।[59]

पुराणों के राजनीतिक इतिहास के निबन्धन की प्रक्रिया लगभग चतुर्थ शताब्दी तक चलती रही। पुराणों में आदि गुप्त राज्य की और भी संकेत किया गया है।

अनुगंङ् प्रयागश्च साकेतं भगधांस्तथा।

एताजनप्रदान सर्वानि साकेतं भगधांस्तथा।।[60]

अधिकांश विद्वानों ने उक्त श्लोकीय साक्ष्य के आधार पर गुप्तों के आदि राज्य (सम्भवतः चन्द्रगुप्त प्रथम के शासनकाल) की सीमा तक आकलन किया है। प्रयाग और अयोध्या से प्राप्त चन्द्रगुप्त के सिक्कों से उक्त मत की पुष्टि होती है। वर्तमान इतिहास बोध के परिप्रेक्ष्य में देश व काल इतिहास की प्रमुख विषय-वस्तु है। पुराणों में वर्णित भौगोलिक वर्णन से इतिहास की अवधारणा स्पष्ट होती है। मत्स्य पुराणमें एक स्थान पर 'भूय्यदेहः संस्थानं पुराणं पञ्चलक्षणम्' पाठातन्तर मिलता हैं जिससे प्रतीत होता है कि भौगोलिक क्षेत्रों के प्रति भी पुराणकार की दृष्टि से ऐतिहासिक थी। प्रकारान्तर से भुवनकोश पुराणों की प्रमुख विषय-वस्तु के रूप में स्थान ले चुका था। भुवनकोश के अंतर्गत ब्रह्म पुराण[61] भारतभूमि को कर्मभूमि के रूप में वर्णित करता है यथा-'पृथिव्यां भारतवर्ष कर्मभुमिरूदाहता'।

पुराणों में ऐतिहासिक सामग्री है या नहीं, यह एक पाश्चात्य दृष्टि से उपजा व्यर्थ का प्रपंच है। इतिहास की भारतीय अवधारणा यह कहती है कि पुराण-इतिहास-वाङ्मय ही हमारे वास्तविक इतिहास की अवधारणा का प्रस्तुतीकरण है। इन्हीं की तथ्यसंगत विवेचना ही भारत का मूल इतिहास प्रस्फुटित होगा। निश्चित

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ही भारतीय संस्कृति के विकास में पुराणों का महनीय यागेदान हैं। पुराणों में मानव जीवन की समग्रता और उसके पूर्ण विकास तथा उसके सामाजीकरण पर विशेष ध्यान दिया गया है। इसलिए पौराणिक ऐतिहासिक परम्परा अथवा इतिहास लेखन पर विचार करने से पूर्व भारतीय जीवन-दर्शन को पौराणिक धर्म-दर्शन के परिप्रेक्ष्य में देखना आवश्यक है। पुराणों में मानव के परिवेश, भौगोलिक स्थिति, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक संरचना को सांसारिक एवं ब्राह्य दृष्टांतों में रखकर देखा गया है। यह जीवन-दृष्टि को भी मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक स्थितियों में प्रस्तुत करने का सार्थक प्रयास है। निश्चित रूप से पौराणिक जीवन-दृष्टि से अनुशासित भारतीय इतिहास परम्परा अन्य प्राच्य इतिहास परम्पराओं से व्यापक एवं सोउद्देश्य कही जा सकती है। निष्कर्षतः पुराणों में समाहित सभी ऐतिहासिक तत्वों का समग्र अध्ययन करके ही हम इतिहास की अंतिम अवधारणा को प्रस्तुत कर सकते है।

सन्दर्भ

1. ऋक् संहिता-3.5.49
2. ऋक् संहिता-9.99.4
3. निरुक्त-3.19
4. वायुपुराण- 1.203
5. मत्स्यपुराण- 52.63
6. पद्मपुराण -5.2.53
7. ब्रह्माण्डपुराण-1.1.173
8. उशन स्मृति,3.34
9. ऋक् संहिता- 3.54.9
10. शत.ब्रा.-13.4.3.13
11. अथर्ववेद-11.7.24
12. शत.ब्रा.-13.4.3.13
13. छा.उप.-7.1
14. गौतम धर्मसूत्र,11.21,तथा याज्ञवल्क्य स्मृति 1.45, व्यास स्मृति4.45, गौतम धर्मसूत्र, 8.4.6
15. भूमिका,वामनमहापुराणम्- संपादक, ओमनाथ बिमली, कन्हैयालाल जोशी, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, पृ. 5, द्वितीय संस्करण-2012)
16. मत्स्यपुराण-53.3
17. कुवँर बहादुर कौशिक, पुराण में इतिहास : एक संक्षिप्त सर्वेक्षण-पुराणान्तर्गत इतिहास पृ.51, संपादक प्रदीप कुमार राव गोरखपुर-2010
18. विष्णुपुराण-3.3.18
19. (डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, प्राचीन भारत में लोक धर्म, अहमदाबाद,1964)
20. कुमारिका खण्ड- 40/199
21. डॉ० संतोष शुक्ला- भारतीय ज्ञान-परम्परा : अग्निपुराण, पृ.8, प्रकाशन-भारतीय पुराण अध्ययन संस्थान, आप्टे भवन केशव कुञ्ज नयी दिल्ली-55, प्रथम संस्करण, 2013
22. देवी भागवत्पुराण-1.3
23. मत्स्यपुराण- 53.64
24. भूमिका,वामनमहापुराणम्- संपादक, ओमनाथ बिमली, कन्हैयालाल जोशी, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, पृ. 8.9 द्वितीय संस्करण-2012

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

25. विष्णुपुराण- 3.6.15
26. डॉ० संतोष शुक्ला, वही पृ.7
27. श्रीमद्भागवत- 12.7.9-10
28. प्रो०संतोष शुक्ला, वही, पृ.9
29. पद्मपुराण उत्तरखण्ड- 263-81.84
30. मत्स्यपुराण-53-68.69
31. स्कन्दपुराण, केदार खण्ड-1
32. प्रो०संतोष शुक्ला, वही, पृ.10
33. अथर्ववेद- 15.1.6
34. कौशिक जी पृ.46
35. निरुक्त दुर्गाचार्यवृत्ति, 2.3.1
36. शतपथ ब्राह्मण- 8.4.3
37. निरुक्त- 2.3.1
38. वही- 2.7.2
39. वृहदारण्यक उपनिषद- 2.4.10
40. शत०ब्राह्मण- 13.4.3
41. गोपथ ब्राह्मण, पूर्व भाग- 1.10
42. मनुस्मृति- 3.232
43. मत्स्यपुराण-72.6
44. महाभारत उद्योग पर्व- 136.18
45. वही, आदिपर्व- 2.395
46. वायुपुराण ,3.48; ब्रह्माण्डपुराण- 4.4.47
47. अर्थशास्त्र-1.5
48. अमरकोश-1.5.4,इतिहासः पुरावृत्तम्,
49. महाभारत-1.5.1 पर नीलकंठ द्वारा प्रस्तुत टीका, 'पुराणं पुरावृत्तम्'
50. याज्ञवल्क्य स्मृति-1.3
51. विष्णु पुराण, 3.6.28
52. महाभारत का समीक्षित संस्करण-1.56.19.21
53. वायुपुराण-4.2.65-68
54. मत्स्यपुराण-अध्याय- 271/18.30
55. मत्स्यपुराण-अध्याय 272/1.11
56. वही-272/27
57. मत्स्यपुराण-अ०273-17.25
58. मत्स्यपुराण-273/16.28
59. वही-273/17.20
60. रमेशचन्द्र मजूमदार-गुप्त-वाकाटक एज, पृ.134.135
61. ब्रह्मपुराण-27/2

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

शिवपुराण में भारतीय धर्म दर्शन की सनातन परम्परा

डॉ० सुस्मिता पाण्डे*

शिव पुराण में शैव धार्मिक परम्परा प्रतिबिम्बित है। यह परम्परा सम्पूर्ण भारतीय दर्शन को समाहित करती है। सभी भारतीय दर्शन इसमें परम् सत्य की अनुभूति की विभिन्न संरचनाओं तथा स्तरों के रूप में व्याख्यायित हैं। उपनिषदों का वेदान्त (विशेषतः श्वेताश्वतर उपनिषद् का), सांख्य तथा योग, स्मार्त धार्मिक परम्परा सभी का समन्वय है। परन्तु सभी को भक्ति के सूत्र में पिरोया गया है। इसी प्रकार शिव से सम्बन्धित अनुष्ठानों के माध्यम से भी यह स्पष्ट है कि ईश्वर एक होते हुए भी विश्वरूप है। इसीलिये विभिन्न देवता भी एक ही सूत्र में जुड़ जाते हैं।

वर्तमान शिव पुराण में सात संहिताएँ हैं- विद्येश्वर संहिता, रूद्र संहिता, शतरूद्र संहिता, कोटिरूद्र संहिता, उमा संहिता, कैलाश संहिता तथा वायवीय संहिता। दर्शन के दृष्टिकोण से कोटिरूद्र संहिता तथा वायवीय संहिता महत्वपूर्ण हैं। वायवीय संहिता के अध्याय 32 में सांख्य के चौबीस तत्वों का वर्णन है परन्तु अनीश्वर सांख्य की भांति पुरुष अलग-थलग न होकर पच्चीसवाँ तत्व है। इसको 'ओमित्येकाक्षरोब्रह्म' कहा है जो उपनिषदों में स्तुत्य है। परम् सत्य महेश्वर तत्व है जो इससे परे है। प्रकृति तथा पुरुष इसके अन्तर्गत हैं। यह चिंतन गीता के चिंतन का स्मरण दिलाता है, जिसमें ब्रह्म से अधिक उसके पुरुषोत्तम रूप का महत्व है, जिसका जीव के साथ भक्ति का सम्बन्ध है। इस चिंतन के स्रोत को हम पुनः श्वेताश्वतर उपनिषद् में देख सकते हैं।

---

* अध्यक्ष, राष्ट्रीय स्मारक संस्थान (संस्कृति मंत्रालय) भारत सरकार, नई दिल्ली

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

यद्यपि सांख्य के तत्व तथा विभिन्न स्तर शिव पुराण में वर्णित हैं, परन्तु यह संरचना भी ईश्वरवादी अवधारणाओं से ओत-प्रोत है, जिसमें महेश्वर को इन तत्वों के परे माना है तथा तत्वों को महेश्वर से नियंत्रित। यह चिंतन भी श्वेताश्वतर उपनिषद् से साम्य रखता है। उपनिषदों में भी सांख्य तत्व वर्णित है परन्तु वे ईश्वरवादी दर्शन तथा एकेश्वरवाद के लिये ही प्रयुक्त है।

अद्वैतवादी अवधारणा शिव पुराण के अनेक स्थानों में दिखती है। कोटिरूद्र संहिता में कहा गया है कि ब्रह्म से तृण पर्यन्त सभी शिव के रूप हैं तथा सृष्टि को नानातत्व के रूप में देखना मिथ्या ही है-

ब्रह्मादि तृणपर्यन्तं यत्किंचिद् दृश्यते त्विह।

तत्सर्वं शिव एवाऽस्ति मिथ्या नानात्वकल्पना।।

जिस प्रकार बीज का अंकुर शाखा, पल्लव आदि रूप से अनेक प्रकार से प्रकाशित होता है, इसी प्रकार नानात्व भी केवल महेश्वर ही है। कोटिरूद्र संहिता में सर्वेश्वरवाद भी स्पष्ट वर्णित है, सब जगत शिव है तथा शिव ही सर्व जगत है-सर्वं शिवः शिवं सर्वं नास्तिभेद कथइचन। फिर यह कहा है-जिस प्रकार एक ही सूर्य जल में अनेक रूप से दिखाई देते हैं वैसे ही शिव भी प्रतिबिम्ब रूप से जगत में भासित होते हैं-

यथैकं चैव सूर्याख्यं ज्योतिर्नानाविधां जनै।

जलादौ च विशेषेण दृश्यते तत्तथैव सः स्त्र

जिस प्रकार जल में अग्नि आदि तेज की परछायी का मान होता है, यथार्थ रूप से उसका वह स्वरूप नहीं है। उसी प्रकार शिव भी प्रतिबिम्बित रूप से इस जगत में भासित होते हैं, किन्तु उसमें लिप्त नहीं रहते-

यथा च ज्योतिषश्चैव जलादौ प्रतिबिम्बित।

वस्तुतो न प्रवेशो वै तथैव च शिवः स्वयम् स्त्र

इन पंक्तियों में अद्वैत का प्रतिबिम्बवाद झलकता है।

शिव पुराण की कैलाश संहिता (खण्ड 6, अध्याय 16) में शिव सूत्रों का वर्णन है, जिसमें काश्मीर शैव दर्शन देखा जा सकता है। प्रज्ञान ब्रह्म को चैतन्यात्मा कहा है जो शिवसूत्र से व्याख्यायित किया गया है। शिवसूत्र के ज्ञानबन्ध को क्रियात्मक चेतना से तादात्म्य किया है, जो शंकर द्वारा व्याख्यायित शुद्ध चेतना अथवा विशुद्ध ज्ञान से भिन्न है। शिव पुराण में सृष्टि का कारण चैतन्य है, जिसमें ज्ञान तथा क्रिया दोनों ही छुपे रहते हैं। यह दोनों परा शक्ति से स्पन्दित होते हैं।

शतरूद्र संहिता (पंचम अध्याय) में योगचर्यावतारों के वर्णन में लकुलीश तथा उनके चार शिष्यों-कुशिक, गर्ग, मित्र एवं कौरूष्य का वर्णन है। इसी प्रकार वायवीय

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

संहिता के उत्तर खंड में भी अट्ठाईस योगाचार्यों का वर्णन है, जिनके प्रत्येक के चार-चार शिष्य हुए। इसमें पाशुपतों के चिन्हों तथा अनुष्ठानों का भी वर्णन है।

यद्यपि शिव के विष्णु की भाँति जन्म लेकर अवतार नहीं होते हैं, क्योंकि वह सभी 'मलों' से मुक्त हैं तथापि योगचर्यावतार के रूप में वह ज्ञान, योग क्रिया तथा चर्या की शिक्षा देते हैं।

पाशुपत मत में अद्वैत नहीं है। यह सर्वविदित है। शिव पुराण ने इसको भी एक विशिष्ट आध्यात्मिक स्तर के रूप में माना है।

इसी प्रकार शिव पुराण में वैदिक तथा आगमिक दोनों दर्शनों का समावेश है। शंकर द्वारा व्याख्यायित शुद्ध चैतन्य ज्ञान स्वरूप तथा आगमिक मत से परम् सत्य का इच्छा तथा क्रिया शक्ति से परिपूर्ण होना दोनो के ही अंश हम देख सकते हैं।

शिव पुराण में ज्ञान तथा भक्ति का भी सुन्दर समन्वय किया गया है। रूद्र संहिता के सृष्टिखण्ड में कहा गया है कि तत्व का ज्ञान अति दुर्लभ है तथा इस प्रकार के विज्ञान की माता भक्ति ही है। इन पंक्तियों में हमें सहज ही गीता का स्मरण हो जाता है, जिसमें यह स्पष्ट कहा है कि - ''भक्त्या मामभिजानाति यावन्यश्चास्मि तत्वतः'' अर्थात् ''भक्त ही मुझे तत्व से जानता है'' तथा तेषांज्ञानी नित्ययुक्तएकभक्तिर्विशिष्यते। अर्थात् एकांतिक भक्ति वाला ज्ञानी ही मुझसे नित्ययुक्त रहता है।

शिवपुराण में जिस प्रकार विभिन्न दर्शन आध्यात्मिक संरचना के विभिन्न स्तरों के रूप में देखे गये हैं, वैसे ही धार्मिक अनुष्ठानों में भी सर्व संप्रदाय समवाय की भावना दृष्टिगोचर होती है।

वायवीय संहिता के उत्तर खण्ड अध्याय 29 में काम्य कर्म हेतु मंडल शास्त्र विधि का वर्णन है, इसमें शैव सिद्धान्ती तथा पाशुपत सम्प्रदायों में भेद बतलाते हुए भी यह कहा गया है कि इनमें मूल रूप से भेद नहीं है-शिवो महेश्वरश्चेति नात्यन्तमिह भिद्यते।

इसी प्रकार तीसवें अध्याय में आवरण पूजा का वर्णन है। यह मण्डल पूजा का ही विस्तार है। इसमें प्रथम आवरण में सभी दिशाओं में शिव परिवार, द्वितीय तथा तृतीय आवरण में शिव के विभिन्न रूपों तथा शक्तियों का, तत्पश्चात् अन्य आवरणों में आदित्य, ब्रह्मा, विष्णु, नवग्रह, ऋषि, देवता, गन्धर्व, पन्नग, विभिन्न प्रजापतियों तथा उनकी भार्याओं, चारो वेदों तथा इतिहास पुराण, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरूद्ध, विष्णु के विभिन्न अवतार, चतुर्व्यूह विष्णु, सरस्वती, लक्ष्मी आदि सभी का पूजन कर पञ्चावरण पूजा सम्पन्न करने का विधान है।

यह विधि मनुष्य के मनोविज्ञान से पूर्णतः मेल रखती है। भक्त प्रकृति की अधिष्ठात्री शक्तियों के रूप में सभी देवताओं का नमन करते-करते अंत में अपने इष्ट

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

शिव के परम् रूप के ध्यान पर पहुँचता है। बाह्य जगत से क्रमशः अंतर्जगत तक पहुंचने की यह विधि है।

यह परम्परा वैदिक काल से ही चली आ रही है, जब यज्ञ की वेदी बनाने में मनुष्य आधिभौतिक, आधिदैविक तथा फिर आध्यात्मिक तत्वों से अपना तादात्म्य करता था।

इस प्रकार पिंड और ब्रह्माण्ड में ऐक्य तथा इष्ट देवता और अन्य देवताओं में भी भेद नहीं रह जाता था।

अतः हम कह सकते हैं कि भारतीय धर्म दर्शन का सार वैदिक काल से पुराणों तक अक्षुण्ण बना रहा। अभिव्यक्ति की विधि परिवर्तित अवश्य होती गई परन्तु हमारे गहनतम मूल्य सुरक्षित रहे।

संदर्भ

1. शिवपुराण वायवीय संहिता अध्याय 32
2. वही 32-33
3. शिव पुराण कोटिरूद्र संहिता, (10) 42.19
4. वही, 43.17
5. वही, 43.20
6. वही, 43.21
7. वही, 43.7
8. कैलाश संहिता खण्ड 6 अध्याय 16 43-44
9. वही, 16.48
10. रूद्र संहिता, सृष्टिखण्ड, 23 12-16
11. वायवीय संहिता उत्तरखण्ड, अध्याय, 29 8-10

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

धार्मिक समवाय की दृष्टि से पुराणों की महत्ता

सुश्री सोनल अग्रवाल*

केदार गुप्ता**

'पुराण' शब्द सुनते ही जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि पुराण क्या है ? इसका अर्थ क्या है ? अनेक ग्रंथों में इसकी व्याख्याएँ की गई है। यथा- *'पुरा अपि नवं पुराणम्'* से प्रतीत होता है कि पुराना होने पर भी जो नवीन हो, वह पुराण है। निरूक्तकार व्याख्या करते हैं कि- पुराणमाख्यानं पुराणम् अर्थात् जिसमें प्राचीन आख्यान हों, वह पुराण है। वायुपुराण 'यस्मात् पुरा ह्यनतीदं पुराणं तेन तत् स्मृतम्' के अनुसार-जो पूर्व में भी सजीव था, वह पुराण कहा गया है।

पुराण का शाब्दिक अर्थ है- प्राचीन या पुराना। यास्क मुनि का कथन है - 'पुरा नव भवति' अर्थात् जो पुराना होकर भी नया है, वही पुराण है। स्कंदपुराण के अनुसार-'आत्मा पुराणं वेदानाम्' अर्थात् पुराण वेदों की आत्मा है। पद्मपुराण के अनुसार-जो प्राचीन परम्परा की कामना करता है वही पुराण है। पुराण हमारे पूर्वजों द्वारा संचित ज्ञान का भण्डार है इसमें इतिहास, भूगोल, आयुर्वेद, चिकित्सा, काव्य, छंद शास्त्र, वास्तु, शिल्प, चित्रकला, भित्ति चित्र, मूर्तिकला, अध्यात्म, नीति शास्त्र, तंत्र-मंत्र, योग आदि का विपुल भण्डार भरा हुआ है। जो ज्ञान वेदों में संक्षिप्त अथवा सूत्र रूप में था, वही लोक भाषा में अधिक स्पष्ट करने के लिए आख्यानों के माध्यम से पुराणों में वर्णित

---

* Guest Lecturer - English, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस शासकीय महाविद्यालय, ब्यावरा (जिला राजगढ़)

** शोधार्थी, हिन्दी अध्ययनशाला, उज्जैन

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

किया गया। जो लोग वेदों का अध्ययन-मनन नहीं कर सकते थे, उनके लिए पुराण साहित्य को व्यवस्थित किया गया। पुराणों में प्राणी मात्र की समानता की दृष्टि से आध्यात्मिक एवं धार्मिक विषयों की विषद व्याख्या मिलती है।

'हरि अनंत, हरि कथा अनंता।' इसी उक्ति पर हमारी धार्मिक मान्यताएँ अवलम्बित हैं। भारतीय साहित्य रत्नों में पुराणों का स्थान अत्यन्त महत्व का है। पुराण भारतीय जीवन, आदर्श, सभ्यता, संस्कृति, विद्या-वैभव के उत्कर्ष का सच्चा इतिहास है। पुराण भारत के इतिहास का दर्पण है। पुराणों से ही भारतीय जीवन का आदर्श और धर्म के प्रति समान दृष्टि, मानव मात्र का कल्याण परिलक्षित होता है। प्राचीन भारतीयता की झांकी और प्राचीन समय में भारत के सर्वविध उत्कर्ष की झलक यदि कहीं प्राप्त होती है तो पुराणों में। पुराण न केवल इतिहास है, अपितु धार्मिक दृष्टि से विश्व के कल्याण का एक मार्ग भी है। ज्ञान के भण्डार और धर्म के मूल स्रोत वेद हैं अवश्य किन्तु पुराणों में समस्त वेदार्थसहित धर्मशास्त्रों के उपदेश और कथाएँ सम्मिलित की गई हैं। इसलिये भारतीय संस्कृति से सम्बद्ध सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान और कल्याणकारी क्रियाओं की जानकारी के लिए ये ही चिरकाल से आश्रयणीय रहे हैं। भारतीय धर्म और संस्कृति व्यक्ति, समाज, राष्ट्र व अखिल विश्व के धारण, पोषण, संगठन, सामंजस्य एवं एकत्व का सम्पादन करने वाला एकमात्र पदार्थ है-धर्म। पुराणों की पवित्र कथाएँ धार्मिक समानता की स्थापक हैं। यदि हम धर्माचरण की दृष्टि से पुराणों को तौलें तो इन्हें पाँचवा वेद कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी।

'इतिहास पुराणं च पंचमं वेदानां वेदम्।'

(छान्दोग्योपनिषद्)

श्रीमद्‌भागवत् में स्पष्टतया वर्णित हैं -

'इतिहास पुराणं पंचमों वेद उच्यते।'

धर्माचरण में पुराणों को भी प्रामाणिक मानना चाहिये। यद्यपि पुराणों में मनु आदि स्मृतियों की तरह धर्मों का निरूपण नहीं किया गया है तथापि उनमें सर्वत्र दृष्टान्त रूप में अनेक कथाओं द्वारा विस्तारपूर्वक धर्म-चर्चा की गई है।

भारतीय धर्म और संस्कृति के इतिहास में पुराण साहित्य का अत्यधिक महत्व है। कठिन एवं गहन वेद मंत्रों के रहस्य को, वेद-वेदांगों के दर्शन एवं उपनिषदों को सरल पद्धति से जन साधारण के समक्ष प्रस्तुत करने में पुराण साहित्य की भूमिका अत्यन्त उपादेय सिद्ध हुई है। जन साधारण इनकी कथाओं को सुनकर और मनन कर पारस्परिक भेद-भाव भुलाकर एक होने का प्रयास करने लगे। निःसंदेह पुराणों के द्वारा धार्मिक समावयव की स्थापना भारतीय धर्म व संस्कृति को उच्च स्थान दिलाने में सफल

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

रही। पुराणों में प्रतिपादित धर्म किसी विशेष सम्प्रदाय अर्थात् विचारधारा के रूप में नहीं है। यह ऐसे नियमों से संबंधित है, जिनसे भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति होती है- जैसे ईश्वर की आज्ञा धर्म का लक्षण है।'यतोऽभ्युदयनिः श्रेयससिद्धिः सधर्मः' अर्थात् जिससे इस लोक में अभ्युदय हो और परम कल्याण की प्राप्ति हो, वह धर्म है। 'धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः' अर्थात धर्म का हनन करने से धर्म मारता है और धर्म की रक्षा करने से वह रक्षा करता है। 'यतः कृष्णस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः' अर्थात् जहाँ कृष्ण है वह धर्म है और जहाँ धर्म है, वहाँ विजय है। 'धर्मस्तमनु गच्छति' अर्थात् धर्म ही साथी है जो मरने पर भी पीछे-पीछे चलता है। जो धारण करने योग्य है, वह धर्म है।

पुराणों में पुरूषार्थ चतुष्ट्य की गहन चर्चा की गई है। मानव जीवन की सार्थकता का आधार पुरूषार्थ चतुष्ट्य की सिद्धि को ही बताया गया है। पुरूषार्थ चतुष्ट्य अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इसमें धर्म को प्रथम स्थान पर रखा गया है, इसी से ही धर्म तत्व की सर्वोच्चता का पता चलता है। यद्यपि पुरूषार्थ चतुष्ट्य में धर्म को सबसे अधिक महत्व दिया गया है तथापि अर्थ और काम की लालसा इस युग में अत्यन्त प्रबल है। ऐसे में लोग इस बात को भूल जाते हैं कि इन दोनों पुरूषार्थों का मूल धर्म ही है। जो अर्थ और काम धर्म के अनुकूल है, परमात्मा उसी में निवास करता है। धर्म रहित काम और अर्थ अनर्थकारी होता है। पुराणों के अनुसार अर्थ और काम में लिप्त मनुष्य का जीवन पशु तुल्य है। अतः मनुष्य को सदाचार द्वारा इन पर नियंत्रण रखकर अपने आपको उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित करना चाहिए। धर्म इसमें उसका सहायक हो सकता है।

धर्म से चित की शुद्धि होती है। चित की शुद्धि के बिना परमात्मा की ओर ले जाने वाला कर्मयोग, ध्यानयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग - सभी कुछ व्यर्थ है। पुराण में वर्णाश्रम व्यवस्था मानव जीवन की यात्रा के चार पड़ाव हैं। भारतीय संस्कृति में तथा शास्त्र पुराणों में सनातन धर्म का आधार वर्णाश्रम की व्यवस्था है। इनमें से होता हुआ मनुष्य सहजता से आत्मज्ञान के क्षेत्र में जा पहुँचता है। धर्माचरण में पुराणों को भी प्रामाणिक मानना चाहिये। यद्यपि पुराणों में मनु आदि स्मृतियों की तरह आदरपूर्वक धर्मों का निरूपण नहीं किया गया है तथापि उनमें सर्वत्र प्रसंगों में जहाँ-तहाँ वर्णाश्रम-धर्मों का भली प्रकार से निरूपण हुआ है। जो धर्म स्मृतियों में संक्षिप्त रूप से कथित हैं, उन्हीं का पुराणों में दृष्टांत रूप अनेक कथाओं द्वारा विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। अतः स्मृतियों के समान पुराणों को भी उपयोगी होने से धर्म-विषयों में प्रमाण मानना योग्य है। पुराणों के अनुसार शुभ आचरण करने वाला, मन को वश में रखने

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

वाला, धर्म के नियमों का पालन करने वाला व्यक्ति कभी भी पतन के मार्ग में नहीं जाता है। इसमें अहिंसा, सत्य बोलना, चोरी न करना, तथा इंद्रियों को वश में रखना-यह चारों वर्णों के लिए समान धर्म है। धर्म का लक्ष्य है- आत्मा का अभ्युत्थान और भौतिक जगत से मुक्ति। पुराणों में इसी लक्ष्य का प्रतिपादन किया गया है। भारत की हिन्दू जाति का धर्म सनातन और सार्वजनिक है जो उसे विरासत के रूप में पुराणों से ही मिला है। यह धर्म उदार और विराट है। इसमें सभी धर्मों तथा सम्प्रदायों के लिये सम्मानजनक स्थान है। इस धर्म में ऐसा कोई आचरण नहीं है जिसके कारण ईश्वर प्राप्ति में बाधा पड़ती हो जिस आचरण से मनुष्य ईश्वरपरायण होता है, उसी की चर्चा पुराणों में की गई है। इसमें संस्कारों की आवश्यकता बतलाई गई है। जैसे खान से सोना, हीरा आदि निकलने पर उसमें चमक-प्रकाश तथा सौन्दर्य के लिये उसे तपाकर, तराशकर मल हटाना एवं चिकना करना आवश्यक होता है उसी प्रकार मनुष्य में मानवीय शक्ति का आधान होने के लिये उसे सुसंस्कृत होना आवश्यक है। जीवन के छोटे-बड़े कार्य धर्म के आधार पर किये जाते हैं। हिन्दू धर्म में सबके लिये सुख और उत्तम स्वास्थ्य की कामना की गई है- 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया' यही पौराणिक धर्म का वास्तविक स्वरूप और लक्षण है।

सदाचार को मानव जीवन का सर्वोच्च धर्म बताते हुए कहा गया है- 'आचारः परमो धर्मः' अर्थात् सदाचार मनुष्य का परम धर्म है। सदाचार मानवता का पोषक है, रक्षक है और सुख का परम आधार है। पुराणों में कहा गया है कि यदि कोई मनुष्य चारों वेदों का ज्ञाता हो परन्तु यदि वह सदाचार सम्पन्न नहीं है तो वेद का अनुपम ज्ञान भी उसकी रक्षा नहीं करता। महाभारत में सदाचार को धर्म के रूप में निरूपित किया गया है और संत-महात्मा भी उसे कहा गया है जो सदाचारी और चरित्रवान है। भारतीय संस्कृति व दर्शन ने विश्व समुदाय को 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का अनुपम सूत्र दिया है जो विश्व शांति के लिए उपयोगी ही नहीं वरन् आवश्यक भी है। इससे न केवल विश्व बन्धुत्व की अवधारणा साकार होगी अपितु मानव कल्याण का मार्ग भी प्रशस्त होगा आज मनुष्य आचार विहीन हो गया है, इसलिये वह कष्ट और तिरस्कार के दंश भोग रहा है।

भारतीय धर्म एवं सभ्यता-संस्कृति में भौतिकता या भोगों का निषेध नहीं किया गया है, यदि वे धर्म के द्वारा नियंत्रित एवं मोक्ष व भगवत् प्राप्ति के साधन स्वरूप हों। वर्तमान समय में, धार्मिक कदाचार के दौर में, मानव उत्थान के लिये पौराणिक ग्रन्थों में स्थापित धार्मिक मान्यताओं का स्वाध्याय और श्रवण श्रेयस्कर होगा।

भारत वर्ष में पुरातनकाल से भारतीय संस्कृति एवं धर्म के विषय में पुराणों का महत्व था, है और रहेगा। कारण, पुराण सनातन धर्म के कल्याण-मार्गों (कर्म, उपासना,

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ज्ञान) का विविध ढंग से उपस्थापना करते हैं। वास्तव में पुराण वेदों के व्याख्यान-ग्रंथ है। अतः पुराण सर्वदा वेदानुकूल है। संस्कृत वाङ्मय में पुराणों का एक विशिष्ट स्थान है। इसमें ज्ञानकाण्ड के सरलतम विस्तार के साथ-साथ कथा-वैचित्र्य के द्वारा साधारण जनता को भी गूढ़-से-गूढ़तम तत्व को हृदय में स्थित करा देने की अपनी अपूर्व विशेषता भी है। इस युग में धर्म की रक्षा और भक्ति के मनोरम विकास का जो यत्किंचित् दर्शन हो रहा है, उसका समस्त श्रेय पुराण-साहित्य को ही है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

दशावतार जयन्ती

श्रीमती शशिकला रावल*

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते
दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते ।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते।
म्लेच्छान् मूर्छयते दशाकृति कृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥[1]

पौराणिक परम्परा के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु और महेश सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और संहार के अधिपति हैं। जब-जब ऋषि-मुनि और देवता कठिन परिस्थितियों और समस्याओं से घिरे तब-तब मुख्यतः श्री हरि विष्णु के अंशावतार और पूर्णावतार हुए। कल्पों और मन्वन्तरों में होने वाले असंख्य अवतारों में श्री विष्णुरूपी कृष्ण के दस अवतार सर्वमान्य और प्रसिद्ध हैं। श्रीमद् भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण अवतार धारण के लक्ष्य की घोषणा करते हुए कहते हैं -

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥[2]

'जयन्ती' पद जिज्ञासा

पञ्चाङ्ग में दशावतारों की जयन्ती के तिथि-मास-पक्ष देखते-देखते 'कल्कि जयन्ती' की तिथि मास की प्रविष्टि देखकर मैं चौंक गई । "जब कल्कि अवतार ही नहीं हुआ तो श्रावण शुक्ल पञ्चमी को 'कल्कि जयन्ती' कैसे ?" मैंने प्रश्न पूछा पं.

---

* शोध छात्रा, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भगवतीप्रसादजी पाण्डेय से । पण्डितजी 'कुल्लुका विक्रमादित्य पञ्चाङ्ग के पञ्चाङ्ग कर्ता भी हैं। उनका उत्तर था - ''ये दशावतार हर युग में होते आये हैं।'' पुनः मेरा प्रश्न था - ''तो इनका अवतार का समय और अवधि भी पूर्वनिश्चित हैं ? क्या इनकी लगातार आवृत्ति होती रहती है ?'' हाँ, सृष्टि का क्रम और घटनाएँ लगभग निश्चित हैं और प्रकारान्तर से इनकी आवृत्ति होती रहती है। जन्म और पुनर्जन्म की अवधारणाओं के अनेक पौराणिक उल्लेख भी इस तथ्य की पुष्टि करते प्रतीत होते हैं।

एक कल्प में एक हजार चतुर्युगी की गणना पुनः असंख्य प्रश्न-उपप्रश्न खड़े करती है। जैसे अवतार किस मन्वतर में, कौन सी चतुर्युगी में, किस कल्प में हुआ ? अवतार की निश्चित समय सीमा निर्धारित करना सचमुच टेढ़ी खीर है। लगभग दो अरब वर्ष से चल रहा सृष्टिक्रम असंख्य भौगोलिक परिवर्तनों तथा कालगणना के विविध सन-संवत्सर आदि की परम्पराओं के प्रारम्भ होने तथा लुप्त होने की सम्भावनाओं से अछूता नहीं रह सकता । इसी कारण पौराणिक साहित्य अविश्वास की देहरी पर खड़ा अग्राह्य और अस्वीकार्य बन जाता है। इसलिये सारे घटनाक्रम गहन अन्वेषण द्वारा एक निश्चित क्रम में सूचीबद्ध होने की अपेक्षा रखते हैं।

विभिन्न जिज्ञासा से भरे प्रश्नों से घिरा होने के बावजूद 'दशावतार जयन्ती' के पक्ष-मास-तिथि का उल्लेख भारत की ज्योतिर्विज्ञान की समृद्ध परम्परा की पुष्टि करता है।

दशावतार जयन्ती की तिथियाँ और घटनाक्रम

दशावतार की सूची के अनुसार उनकी 'जयन्ती' की अवधि इस प्रकार है -

1.	मत्स्यावतार -	चैत्र शुक्ल तृतीया	मत्स्य महापुराण
2.	कूर्मावतार -	वैशाख शुक्ल पूर्णिमा	कूर्म महापुराण
3.	वराहअवतार -	चैत्र कृष्ण नवमी (अमान्त फाल्गुन)	वराह महापुराण
4.	नृसिंह अवतार -	वैशाख शुक्ल त्रयोदशी	नृसिंह पुराण
5.	वामन अवतार -	भाद्रपद शुक्ल द्वादशी	वामन महापुराण
6.	परशुराम अवतार-	'अक्षय तृतीया' वैशाख शुक्ल तृतीया	परशुराम पुराण
7.	राम अवतार -	चैत्र शुक्ल नवमी	वाल्मीकि रामायण

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

8. कृष्ण(बलराम) - भाद्रपद कृष्ण अष्टमी श्रीमद् भागवत
अवतार (अमान्त श्रावण) महापुराण
9. बुद्ध अवतार - वैशाख शुक्ल पूर्णिमा बौद्ध साहित्य
10. कल्कि अवतार - श्रावण शुक्ल पञ्चमी कल्कि पुराण

दशावतारों का समीक्षात्मक स्वरूप

(1) सृष्टिक्रम का विकास - मत्स्य अवतार (चैत्र शुक्ल तृतीया-मत्स्य पुराण)

जीव की उत्पत्ति की पहली आवश्यकता है - मिट्टी, पानी, धूप और हवा । मत्स्यावतार सर्वप्रथम सृष्टि प्रारम्भ जलचरों से हुआ तथा जलचरों के विशालकाय धारण करने का प्रतीक है। परन्तु ध्यान देने योग्य तथ्य है कि जलप्रलय के पहले भी मानवी सृष्टि के प्रतिनिधि मानव राजा सत्यव्रत और सप्तर्षियों के रूप में मौजूद थे। अर्थात् सृष्टिक्रम अनादि है। ब्रह्मा की रात्रि की अवधि भी ब्राह्मदिवस एक कल्प की ही भांति एक कल्प ही रहेगी। पिछले मन्वन्तर की सृष्टि संरचना की रक्षा तथा मत्स्य पुराण (महापुराण) के रूप में आत्मतत्त्व का उपदेश सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षण मत्स्यावतार की भूमिका स्पष्ट करते हैं।

(2) कूर्म अवतार (वैशाख शुक्ल पूर्णिमा-कूर्म महापुराण)- सृष्टि विकास का अगला प्राणी था कछुआ । नाजुक नरम दस लाख योजन लम्बे मत्स्य की तुलना में अपनी पीठ पर विशालकाय मन्दराचल पर्वत धारण करने वाला कूर्म अधिक मजबूत कद काठी से युक्त जलचर के साथ-साथ थलचर प्राणी भी था।

समुद्र मंथन की घटना देवसंस्कृति (अध्यात्म प्रधान) और दानव संस्कृति (भौतिकता प्रधान) दोनों के समन्वित सहयोग और प्रयास से प्राप्त होने वाली उपलब्धियों के रूप में मिलने वाले चतुर्दश रत्नों का प्रमाण है। क्षीरसागर का तट ही उनकी प्रयोगशाला था और उनका अन्तिम लक्ष्य था अमृत प्राप्ति। 'कूर्म पुराण' की स्वतंत्र महापुराण के रूप में रचना की गई।

(3) वराह अवतार (चैत्र कृष्ण नवमी, अमान्त फाल्गुन-वराह महापुराण) - वराह अवतार थलचर प्राणियों की सृष्टि का प्रतिनिधित्व करता है। वराह पुराण (महापुराण) की रचना इस अवतार के महत्व को रेखांकित करती है। स्वायम्भुव मनु और शतरूपा की भावी सन्तति के निवास की व्यवस्था ब्रह्माजी के नासाछिद्र से उत्पन्न यज्ञवराह ने की, क्योंकि सृष्टि रचना के समय पृथ्वी रसातल में डूब गई थी। गोताखोर वराह अगाध जलराशि से सूंघ-सूंघ कर पृथ्वी को अपनी थूथनी पर उठाकर बाहर लाये और अपने खुरों से जल को स्तम्भित कर उस पर पृथ्वी को स्थापित किया। रास्ते में 'हिरण्याक्ष' का वध करते हुए वेदों की भी रक्षा की।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

'वेदों' की रक्षा का कथानक मत्स्य और वराह अवतार के जल-प्रलय के सम्बद्ध है। वर्तमान युग में भी यदि कोई व्यक्ति विदेश जाकर कोई ज्ञान प्राप्त करता है और अपने देश में आने पर उसे मालूम पड़ता है कि 'आज का प्राप्त नया ज्ञान' उसके ही देश के 'बीते कल का पुराना ज्ञान' है। इसलिये समुद्र पार जाकर हमारे प्रतिनिधियों ने वह ज्ञान पुनः प्राप्त कर तत्कालीन समाज को दिया, ऐसी कल्पना भी की जा सकती है।

(4) नृसिंह अवतार (वैशाख शुक्ल त्रयोदशी-नृसिंह पुराण) - हिरण्याक्ष के ही छोटे भाई हिरण्यकश्यिपु की आचार-विचार की प्रचलित परम्परा की अपेक्षा उसके पुत्र प्रहलाद द्वारा प्रयुक्त सात्विक आचरण की परम्परा के कारण एक प्रकार का वर्ग संघर्ष समाज में प्रारम्भ हुआ। 'सिंह' जैसी पाशविक वृत्ति पर 'नर' जैसी मानवीय वृत्ति की विजय की गाथा 'नृसिंह' अवतार का रहस्य उजागर करती है।

(5) वामन अवतार -(भाद्रपद शुक्ल द्वादशी, वामन महापुराण) - आसुरी शक्तियों का प्रभाव इतना बढ़ गया कि बलि के शासन में देवता स्वयं को निराश्रित समझने लगे। परन्तु बलि को पृथ्वी और स्वर्ग का आधिपत्य छोड़कर पाताल जाने को बाध्य करने वाले 'वामन' ने ब्राह्मण वर्ण के वर्चस्व की तुलना में बलि के समर्पण भाव को अधिक गौरवशाली बना दिया। स्वयं छला जा रहा है, यह जानते हुए भी गुरु शुक्राचार्य के निषेध की उपेक्षा कर बलि ने पाताल जाना स्वीकार किया। यह उसके समर्पण भाव की पराकाष्ठा थी।

ये सब अवतार सत्युग से सम्बद्ध प्रतीत होते हैं।

(6) परशुराम अवतार - (अक्षय तृतीया, वैशाख शुक्ल तृतीया, परशुराम पुराण) - निर्दोष पिता जमदग्नि का वध करने वाले क्षत्रियों का इक्कीस बार संहार करने का कार्य परशुराम ने किया। क्षात्रवृत्ति और ब्रह्मवृत्ति का सम्मिश्रण उनकी विद्वत्ता तथा क्रान्तिकारी शैली का प्रतिनिधित्व करता है। त्रेतायुग से लेकर द्वापर युग तक के प्रचलित कथानक उनके दीर्घजीवी होने का प्रमाण प्रस्तुत करता हैं। वस्तुतः सिर काट डालने का तात्पर्य क्षत्रिय वर्ग के मूलभूत आचार-विचार को पूर्णतः परिवर्तित करने वाली विचारधारा का प्रभावशाली होना भी हो सकता है।

(7) राम अवतार - (चैत्रशुक्ल नवमी, वाल्मीकि रामायण) - त्रेतायुग में अवतरित सूर्यवंशी दशरथ नन्दन 'राम' द्वादशकला (सूर्य के बाहर मास) युक्त माने गये। पारिवारिक जीवन के विभिन्न रिश्तों को जिस खूबी से राम ने निभाया, सामाजिक सम्बन्ध में निषाद, शबरी, सुग्रीव, हनुमान, विभीषण और सम्पर्क में आने वाले अन्य लोगों से जो आत्मीयता स्थापित की, 'रामराज्य' कहलाने वाली उत्कृष्ट शासन व्यवस्था का जो आदर्श स्थापित किया, उसने राम को 'मर्यादा पुरुषोत्तम' बना कर जन-जन के हृदय में स्थान दिला दिया। आज भी राम का जीवन अनुकरणीय माना जाता है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

(8) कृष्णावतार - (भाद्रपद कृष्ण अष्टमी अमान्त श्रावण, श्रीमद् भागवत महापुराण) - द्वापरयुगीन षोडशकला सम्पन्न चंद्रवंशी यादव श्रीकृष्ण को पूर्णावतार भी माना गया है। इसलिये कृषि-गोपालन के प्रतिनिधि के रूप में पौराणिक परम्परा में शेषावतार बलराम को भी स्थान दिया गया। भारतीय जनमानस को सबसे अधिक प्रभावित करने वाले 'लीला पुरुषोत्तम' श्रीकृष्ण के बचपन का सर्वाधिक प्रभाव रहा, परन्तु युग के अनुरूप विविध समस्याओं का समाधान कृष्ण ने किया। कहते हैं 'राम का चरित्र' अनुकरणीय है तो कृष्ण का चिन्तनीय।

(9) बौद्ध अवतार (वैशाख शुक्ल पूर्णिमा, बौद्ध साहित्य) - प्रतीत होता है कि अधिकांश पुराणों की रचना या उनके कलेवर में संशोधन के पहले बौद्ध धर्म का अतिव्यापक प्रभाव रहा। इसी कारण तत्कालीन पौराणिक साहित्य में गौतम बुद्ध के करूणा प्रधान उपदेशों के कारण उन्हें 'दशावतार' की शृंखला में मान्यता प्रदान की गई। अग्निपुराण उन्हें 'नास्तिकमत' का प्रतिपादित करता है। उस युग के यज्ञयागादि में होने वाली हिंसा को रोकना और मांसाहारी समाज को शाकाहारी वृत्ति की ओर उन्मुख करना सचमुच क्रान्तिकारी परिवर्तन ही था। इसीलिये जैन धर्म के महावीर स्वामी को भी अवतार पुरुष की मान्यता दी गई।

(10) कल्कि अवतार (श्रावण शुक्ल पञ्चमी, कल्कि पुराण) - कलियुग के अन्त में विष्णुयशा के घर कल्कि अवतार होने की भविष्यवाणी पुराणों में की गई है। कलियुग के 4,32,000 (चार लाख बत्तीस हजार) वर्षों में से अभी केवल 5116 वर्ष बीते हैं, लम्बी कालावधि भविष्य में ही प्रमाणित होगी। वामन अवतार के बाद के अवतार ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र वर्ण के प्रतिनिधि माने गये हैं।

दशावतार का कथानक संस्कृति, कला और साहित्य के उपजीव्य के रूप में भी जन-जीवन को प्रभावित करता रहा है। जयदेव रचित 'दशावतार स्तोत्र' तो प्रसिद्ध रचना है। इसके अलावा पूरे भारत में असंख्य राम मन्दिर और कृष्ण मन्दिर इन दोनों के व्यक्तित्व के व्यापक प्रभाव को रेखांकित करते हैं। दशावतार के दृश्य कई बार भित्ति चित्र, चित्रकला, नृत्य-नाट्य, शिल्पकला के रूप में भी अभिव्यक्ति के माध्यम बनते आये हैं।

संदर्भ

1. 'मत्स्यपुराणाङ्क'कल्याण वर्ष 58, जनवरी 1984, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. 7
2. श्रीमद् भगवद्गीता
3. श्री कुल्लुका विक्रमादित्य पञ्चाङ्ग, प्लवंग संवत्सर 2071, चैत्रादि सन् 2014-15, 77, जवाहर मार्ग, उज्जैन, दशावतार संबंधी तिथियाँ

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पुराणों में शिव और नन्दी का स्वरूप

डॉ० राजेन्द्र चव्हाण*

भारत में शिवोपासना अति प्राचीन काल से ही विद्यमान रही है। शैव धर्म का विकसित स्वरूप पुराणों द्वारा विवेच्य हुआ है। शिव के त्र्यम्बक, भव, शर्व, महादेव, ईशान, शुलपाणि, शंकर, शूलि, त्रिशूलधारी, सहस्त्राक्ष, वृषभध्वज, महाकाल, पशुपति, भैरव, उमा-महेश्वर, अर्द्धनारीश्वर तथा लिंग स्वरूपों का विकसित स्वरूप पौराणिक काल में दृष्टिगोचर होता है।

शिव को दार्शनिक रूप में परम-ब्रह्म माना गया है। शिव-पुराण आदि से अन्त तक उनके परम-ब्रह्म स्वरूप को ही व्यक्त करता है। ऐसा कहा गया कि सृष्टि के रचयिता, पालनकर्ता तथा संहारकर्ता सब कुछ रुद्र ही हैं।[1] सम्पूर्ण विश्व उन्हीं का रूप है। वे कालातीत, निष्कल, सर्वज्ञ, त्रिगुणाधीश्वर एवं परात्पर ब्रह्म हैं।[2] स्वयं शिव को यह कहते हुए उद्धृत किया गया है कि "मैं ही सृष्टिकर्ता और प्रलयकर्ता हूँ, मैं ही सगुण-निर्गुण सच्चिदानन्द स्वरूप निर्विकार परब्रह्म परमात्मा हूँ।"[3] शिव को साकार और निराकार दोनों रूपों में व्यक्त, सर्वज्ञ, सर्वस्थित, चराचर-पति तथा सब प्राणियों में आत्मा-रूप में बसने वाले भी बताया गया है।[4] पुराणों के अनुसार शिव विश्व में व्याप्त होकर स्वयं अनेक स्वरूपों में अभिव्यक्त करते है।[5] यही उनका स्वयंभू रूप हैं।

शिव योग के प्रमुख आचार्य होने के कारण महायोगी के रूप में वर्णित है।[6] माहेश्वर योग का विकास पौराणिक काल में दृष्टिगोचर होता है।[7] इसी संदर्भ में शिव को

---

* सहायक शोध अधिकारी, श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ (म.प्र.)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

यति, आत्म-संयमी और ऊर्ध्वरेता कहा गया है।[8]

शिव और शक्ति के सहोपासना के दार्शनिक आधार की पृष्ठभूमि में ही शैव सिद्धान्त विकसित हुए। यह माना गया कि शिव, शक्ति के साथ मिलकर सृष्टि की रचना करते हैं। शिव और शक्ति का लोक-प्रचलित दार्शनिक स्वरूप, अर्द्ध नारीश्वर रूप में बहुत ही सुन्दर ढंग से व्यक्त किया गया है।[9] शिव-पार्वती की उपासना सभी पुराणों में मिलती है। शिव-पार्वती की सार्वजनिक रूप से उपासना, मन्दिरों में या किसी भी स्थान पर चबूतरे पर स्थित मूर्तियों के रूप में की जाती थी। इतना ही नहीं पुराणों में उमा-महेश्वर व्रत-विधि का भी उल्लेख किया गया है।[10]

शिव के कापालिक स्वरूप का पुराणों में विस्तृत वर्णन किया गया है। उनका यह स्वरूप कापालिक सम्प्रदाय के अनुयायियों का आराध्य बना। शिव को कराल, रौद्र, क्रूर आदि कहा गया क्योंकि वे भीषण-स्वरूप वाले माने गये।[11] वस्त्र-विहीन रहने के कारण उन्हें दिगम्बर कहा गया।[12] शरीर पर भभूत मलने के कारण उन्हें भस्मनाथ सम्बोधित किया गया।[13] हाथ में कपाल का कमण्डलु तथा गले में नरमुण्ड की माला उनके कापालिक स्वरूप की पहचान मानी गयी है।[14] शिव के इस स्वरूप की उपासना एक वर्ग-विशेष में ही प्रचलित रही।

शिव का नटराज स्वरूप भी जन-सामान्य में प्रचलित हो गया था। चतुर्मुखी तथा अष्टमुखी शिव की उपासना का वर्णन पुराणों में वर्णित है। काल भैरव की महिमा का गान शिव पुराण में देखा जा सकता है।[15]

नन्दी का स्वरूप

शिव को मुख्यतः त्रिनेत्रधारी, भस्मभूत लपेटे, जटाजूट से युक्त एवं दिगम्बर दिखलाया गया है। साथ ही वाहन वृषभ (बैल) का भी अंकन होता है।[16] पशुओं में नन्दी शिव का वाहन माना गया है।[17] महाभारत में शिव को वृष[18], वृषाक्र्त, वृषनाथ, वृषध्वज, वृषदर्प तथा वृषपति कहा गया है।[19] मूर्तिविज्ञान में इसे बैल के समान मुख वाला प्रदर्शित किया गया है। विष्णुधर्मोत्तर में नन्दी को चार भुजा तथा तीन नेत्रवाला, सिन्दूर के समान लाल वर्णवाला, व्याघ्रचर्म पहने हुए बतलाया गया है। यहाँ नन्दी अपने दो हाथों में त्रिशुल तथा मिन्दिपाल रहते हुए बताया गया है -

नन्दी कार्यस्त्रिनेत्रस्तु चतुर्बाहुर्महाभुजः।
सिन्दुरारूणसंकाशो व्याघ्रचर्माम्बरच्छदः।
त्रिशूल मिन्दिपालौ च करयोस्तस्य कारयेत ॥[20]

इसके शेष दो हाथों में से एक सिर पर रहता है और दूसरा तर्जनी मुद्रा में रहता

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

है। मन्दिर में यह इस प्रकार स्थापित किया जाता है जैसे यह दूर से आते हुए मनुष्य को देख रहा हो -

शिरोगतं तृतीयं तु तर्जयन्तं तथा परम् ।
आलोकमान कर्त्तवयं दूरादागामिकं जनम् ।।[21]

मत्स्यपुराण नन्दी की स्थापना की कुछ भिन्न अवस्था बतलाता है। उसके कथानुसार नन्दी की स्थापना इस प्रकार होनी चाहिये जैसे वह शिव को देखने में तत्पर हो।[22] इस प्रकार नन्दी को शिव के मन्दिर में स्थापित करने के दो रूप हैं -

1. यह दूर से आने वाले मनुष्य को देखता हुआ प्रदर्शित हो अर्थात् उसका मुख शिव की ओर न होकर मन्दिर के द्वार की ओर हो तथा;
2. वह शिव को देख रहा हो अर्थात् उसका मुख शिव की ओर हो।

दक्षिण भारत के अनेक शिव मन्दिरों में नन्दी का चित्रण मनुष्य रूप में हुआ है, जो चार भुजा वाली त्रिशूल लिये हुए है।[23] जो विष्णुधर्मोत्तर का अनुसरण है।

नन्दी के अलावा प्रत्येक शिव मन्दिर में कच्छप, गणेश, हनुमान, जलधारा, नाग आदि प्रतीक दिखाई देते हैं किन्तु समकालीन पाषाण मूर्तियों में त्रिशूल और परशु को संयुक्त रूप में नहीं देखा जा सकता। जबकि दक्षिण भारत की शिव मूर्तियों में केवल परशु के दर्शन होते हैं।

सन्दर्भ

1. एक एव तदा रुद्रो न द्वितीयोऽस्ति कश्चन् ।
   संसृज्य विश्वभुवनं गोप्तान्ते संचुकोचयः ॥ - शिवपुराण, वा.सं; पूर्वखण्ड, 6.14
2. उक्त, 4, 9-10; 6.55-67; 3.1, 14
3. प्रलय स्थितिसर्गाणां कर्ताऽहं सगुणोऽगुणः ।
   परब्रह्मः निर्विकारः सच्चिदानन्द लक्षण : । उक्त, सृष्टि, 9.27
4. उक्त, 30.283-84
5. लिंग पुराण, 1.1, 2
6. ब्रह्मवैवर्त पुराण, 1.3, 20; 1.6, 4
7. सौर पुराण, 12.1
8. मत्स्यपुराण, 47.136-37; वायु पुराण, 17.166, 24.162
9. शिव पुराण, शतरुद्र, अ. 2 एवं 3
10. लिंगपुराण, 1.84, 2-5, सौ. पु. अ. 43
11. मत्स्यपुराण, 47.127, अग्नि पुराण, 324.16
12. ब्र.पु. 1.27, 10; सौ. पु. 41.96
13. द्रष्टव्य - भस्मकूटे भस्मनाथं न त्वा च तारयेत् पितृन् । वा.पु. 112.53
14. मत्स्यपुराण, 47.137; वा.पु. 24.140, वराह पुराण, 25.24

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

15. सौ.पु., 41.16; शि.पु. शतरुद्रिय सं.अ 2-4
16. चौहान सहदेवसिंह, अष्टमुखी शिव, पृ. 19
17. व्यास, हंसा, प्राचीन मालवा में शैव धर्म, पृ. 18
18. महाभारत शान्ति पर्व, 284.93, पृ. 5171, गीताप्रेस
19. सभी नामों के विस्तार के लिये, महाभारत, दोणपर्व, 202.39-40, पृ. 3747, गीताप्रेस।
20. विष्णु धर्मोत्तर पुराण, 77.15-16
21. विष्णु धर्मोत्तर पुराण, 73.17
22. मत्स्यपुराण, 195.18 गुरुमण्डल
23. डी.एच.आई., पृ. 533-534

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

शिवपुराण में शिवविवाह और लोकाचार

डॉ० हंसा व्यास*

भारतीय धार्मिक साहित्य में ईश्वर के साकार रूपों में सबसे अनूठी अवधारणा 'शिव' की है। पौराणिक सन्दर्भों में शिव को देवाधिदेव महादेव के पद पर प्रतिष्ठित करने के लिये अनेक पुरा कथाओं को संयोजित कर रखा है। शिव पुराण में परात्पर ब्रह्म 'शिव' नाम से विख्यात है। वेद-उपनिषद में परात्पर ब्रह्म के सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया है, वही शिव पुराण में शिव के सम्बन्ध में कहा गया है। शिव पुराण की वायवीय संहिता के पूर्व खण्ड में वायुदेव महेश्वर शिव का बहुत ही सुन्दर वर्णन करते हुए कहते हैं-

एक एव तदा रुद्रो न द्वितीयोऽस्ति कश्चन।
संसृज्य विश्वभुवनं गोप्तान्ते संचुकोच यः।।

सृष्टि के आरम्भ में एक ही रुद्र देव विद्यमान रहते हैं।

शैव पुराकथाओं में शिव विवाह की कथा धार्मिक-सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखती है। शिव पुराण में शिव-विवाह प्रसंग का विस्तार और उसके लोकाचार अनेक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि वे लोकाचार आज भी समाज में व्याप्त है। शिव पुराण में रुद्र संहिता का तृतीय खण्ड पूरा का पूरा शिव विवाह को समर्पित है। अन्य पुराणों में इसी पुराण से सन्दर्भ लेकर कथा को विस्तार दिया गया है।

हिम्वान का शिव के पास लग्नपत्रिका भेजना, विवाह के लिये आवश्यक सामान एकत्रित करना, मंगलाचार का आरम्भ करना, समस्त देवताओं को निमंत्रण देना, शिव

* प्राध्यापक (इतिहास), शासकीय नर्मदा महाविद्यालय, होशंगाबाद (म.प्र.)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

का बारात लेकर प्रस्थान करना, हिमवान द्वारा बारात की अगवानी तथा सबका अभिनंदन करना, वर पक्ष शिव की बारात में तत् (वीणा), आनद्ध (ढोल, मृदंग), सुषिर (शंख, वंशी), धन (झांझ) आदि वाद्यों द्वारा मंगल गान करना, वर पक्ष के आभूषणों से शिव को अलंकृत करना तथा मण्डप में बैठाना। लोकाचारों में हिमवान का शिव से गोत्र परिचय लेना, अग्नि की साक्षी में विवाह सम्पन्न होना, शिव को तथा बारातियों को उपहार देना, पार्वती की बिदाई करना आदि है। शिव पुराण में उल्लेखित है कि शिव ने ब्राह्मणों द्वारा अग्नि की स्थापना करवाई और पार्वती के साथ बैठकर ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामदेव के मंत्रों द्वारा अग्नि में आहुतियाँ दी तथा अनेक लोकाचार का पालन करते हुए अग्नि देव की परिक्रमा की। बिदाई के समय पार्वती को पतिव्रत की शिक्षा देना, आदि ऐसे लोकाचार हैं जिनका आज भी समाज में नियमानुसार पालन किया जाता है। शिव विवाह की पुरा कथा पूरे साहित्यिक सौन्दर्य के साथ कालिदास के कुमार संभवम् में अभिव्यक्त हुई है। इस प्रकार शिव पुराण में शिव के वैवाहिक प्रसंग का विस्तार से वर्णन और उसमें उल्लेखित सन्दर्भों का आज भी जीवंत होना शिव के आदि और अनन्त रूप को अभिव्यक्त करता है।

शिव विवाह और शिल्पकला

शिव का सबसे अधिक लोक-प्रचलित स्वरूप शिव-पार्वती का है। इस स्वरूप में आत्मा व प्रकृति की व्याख्या की गई है। शिव का यह स्वरूप सृष्टि की उत्पत्ति की व्याख्या तो करता ही है, साथ ही उसके दार्शनिक स्वरूप को भी अभिव्यक्त करता है। प्राचीन समय से ही शिव-पार्वती प्रतिमाओं का प्रचलन प्रारम्भ हो गया था। मालवा के शिल्पी ने शिव-पार्वती के विभिन्न स्वरूपों को अपनी छैनी से पाषाणों में उतारा है। शिव-पार्वती कभी आलिंगन-बद्ध उमा-महेश्वर स्वरूप में नन्दी पर आरूढ़ दिखाई देते हैं, तो कभी वैवाहिक बंधन में बंधते हुए यज्ञ-वेदी के आसपास फेरे लगाते हुए कल्याण-सुन्दर स्वरूप में दृष्टिगोचर होते हैं। कहीं वे स्थानक रूप में हर-गौरी स्वरूप धारण किये हुए हैं, तो कहीं अर्धनारीश्वर का संयुक्त स्वरूप। मालवा क्षेत्र शिव-पार्वती के विभिन्न स्वरूपों को अपने अंचल में सहेजे हुए शैव मूर्तिकला के ऐश्वर्य को प्रदर्शित कर रहा है।

कल्याण-सुन्दर प्रतिमाएँ

शिव की कल्याण-सुन्दर प्रतिमाएँ उनकी वैवाहिक प्रतिमाएँ हैं। ये प्रतिमाएँ शिव तथा पार्वती के विवाह का चित्रण करती हैं। पार्वती की कठिन तपस्या से प्रसन्न होकर शिव ने पार्वती के साथ पाणिग्रहण किया। मालवा में शिव के कल्याण-सुन्दर स्वरूप का प्रचलन अत्यंत प्राचीन है। मौर्यकालीन मालवा से प्राप्त मुद्राओं पर शिव के इस स्वरूप

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

का अंकन मिलता है। अंशुमद् भेदागम, शिल्परत्न आदि ग्रन्थों में शिव के कल्याण-सुन्दर स्वरूप का विशद् विवेचन किया गया है, लेकिन मालवा से प्राप्त प्रतिमाओं में लक्षण-ग्रन्थों की अपेक्षा शिल्पी की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति अधिक दिखायी देती है। कलाकृतियों की भाव-भंगिमा स्थानीय संस्कृति से प्रभावित है।

उज्जयिनी के कालभैरव मन्दिर के निकट शिप्रा नदी से शिव की एक कल्याण-स्वरूप की प्रतिमा खण्डित अवस्था में प्राप्त हुई है। इसका अब केवल ऊर्ध्वभाग ही शेष है। प्रतिमा धड़ से नीचे टूटी हुई है। प्रतिमा में दाहिनी तरफ पार्वती तथा बांयी तरफ शिव खड़े हैं। अतः यह प्रतिमा शिव-पार्वती के विवाह के समय की है। प्रतिमा जटामुकुटधारी है। पीछे प्रभामण्डल अंकित है। कानों में मणियुक्त गोल कुण्डल हैं। कतिपय बालों की लटें कंधे के दोनों ओर मनोहारी ढंग से उत्कीर्ण की गई हैं। गले में मुक्ता माला अंकित है। उसके ऊपर प्रभामण्डल के स्तम्भ में हाथी पर इन्द्राणी विराजमान हैं। शेष सभी भाग भग्नावस्था में है।

शिव के कल्याण-सुन्दर स्वरूप की एक ओर परमारकालीन कलाकृति उज्जयिनी में विद्यमान है। यह प्रतिमा वर्तमान में विक्रम विश्वविद्यालय संग्रहालय में है। काले बेसाल्ट प्रस्त पर उत्कीर्ण प्रतिमा का आकार 34x21 सेमी. है। शिव-पार्वती दोनों एक दूसरे की ओर उन्मुख हो रहे हैं। पूर्ण अलंकृत इस प्रतिमा में शिव उन्नत जटामुकुट धारण किये हुए हैं। चतुर्भुजी शिव का एक हस्त पार्वती के एक हस्त को लिये हुए है। उनके द्वितीय हस्त में त्रिशूल है। एक वाम हस्त पार्वती के कंधों पर रखा हुआ है। दूसरा हाथ भग्नावस्था में है। पार्वती सुन्दर शैली में जूड़ा बनाये हुए हैं। मध्य में ब्रह्मा बैठे हुए हैं। ऊपर बैल पर सवार एक व्यक्ति का अंकन है। शेष प्रतिमा भग्नावस्था में है। प्रतिमा का भावांकन सुन्दर है।

महाकाल मन्दिर के पूर्व संग्रहालय से प्राप्त कल्याण-सुन्दर स्वरूप की प्रतिमा प्रस्तर फलक से संलग्न है। प्रतिमा पूर्ण रूप से अलंकृत है। शिव-पार्वती पाणिग्रहण मुद्रा में उत्कीर्ण है। भावाभिव्यक्ति तथा सौन्दर्य-प्रतीकों से युक्त इस प्रतिमा में लय व गति का सजीव अंकन है। पार्वती समर्पित भाव से शिव की ओर उन्मुख है। प्रतिमा के शीर्ष भाग में दोनों तरफ दो मालाधारी गन्धर्व उत्कीर्ण है। मध्य में गुम्फित केश वाले ध्यानस्थ मुद्रा में लीन लकुलीश का अंकन प्रभावशाली है। दोनों तरफ सप्त घट-मालिकाएँ हैं। ये घट-मालिकाएँ विवाह के दृश्य को दर्शाने में सहयोग प्रदान कर रही हैं चतुर्भुजी शिव के दाहिने हाथ में से एक हाथ त्रिशूल लिये हुए हैं तथा दूसरा हाथ पार्वती का हाथ पकड़े हुए हैं। वाम हस्त में से एक खट्गाँव धारण किए हुए हैं तथा एक हाथ लगभग भग्न है। शिव के पीछे नन्दी तथा गण उत्कीर्ण हैं। मध्य में ब्राह्मणी हैं। पार्वती के पीछे

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

चंवर-धारिणियों का अंकन है।

परमारकालीन मालवा के सुजानपुर क्षेत्र से शिव के कल्याण-सुन्दर स्वरूप की एक प्रतिमा प्राप्त हुई है। यह प्रतिमा शिलाखण्ड पर रथिकाबिम्ब में स्थित हैं शिव-पार्वती पाणिग्रहण की मुद्रा में उत्कीर्ण है। दोनों ही स्थानक द्वि-भंग मुद्रा में खड़े हैं। शिव जटामुकुटधारी हैं। प्रतिमा का अलंकरण सामान्य है, लेकिन भावों की अभिव्यक्ति प्रभावशाली है। पार्वती के लज्जात्मक सौन्दर्य का अंकन प्रभावपूर्ण है। प्रतिमा में मकर मुख तथा मालाधारी गन्धर्व चित्रित हैं।

हिंगलाजगढ़ से शिव के कल्याण-सुन्दर स्वरूप की एक प्रतिमा प्राप्त हुई है। बलुआ पत्थर पर निर्मित इस प्रतिमा का आकार 45x32x20 सेमी. है। इसमें शिव-पार्वती के पाणिग्रहण संस्कार का दृश्य उत्कीर्ण किया गया है। प्रतिमा भग्नावस्था में होते हुए भी आकर्षक है। चतुरानन ब्रह्मा यज्ञ-वेदी में आहुति देते हुए उत्कीर्ण किये गये हैं। हिंगलाजगढ़ की ही 10वीं शताब्दी की एक कल्याण-सुन्दर प्रतिमा उपलब्ध है। 52x36 सेमी. आकार की यह प्रतिमा सफेद बलुआ पत्थर पर निर्मित की गई है। शिव पार्वती का हाथ पकड़े हुए त्रिभंग मुद्रा में दाहिनी तरफ खड़े हुए हैं। चतुर्भुजधारी शिव दो हाथों में त्रिशूल और सर्प लिये हुए हैं। एक हाथ से पार्वती का हाथ पकड़े हुए अंकित है और एक हाथ घुटने तक छू रहा है। प्रतिमा पूर्ण रूप से अलंकृत है। शिव के कर्ण-बालियों से तथा कण्ठ-हार व वैजयन्तीमाला से सुशोभित हैं। जटामुकुट अलंकृत हैं। पार्वती को सुन्दर ढंग से उत्कीर्ण किया गया है। धीरे-धीरे शिव की तरफ देखती हुई पार्वती आकर्षक दिखाई दे रही है। उनके चेहरे पर लज्जात्मक सौन्दर्य स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है। उनका आगे बढ़ा हुआ पैर देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि वे यज्ञ-वेदी के चारों ओर चक्कर लगा रहे हैं। उनका एक हाथ दर्पण लिये हुए हैं तथा दूसरा हाथ शिव के हाथ में है। गोलाकार कर्ण-कुण्डल, मुक्ता-हार, मणि-मेखला तथा वैजयन्तीमाला आदि से अलंकृत पार्वती का अंकन आकर्षक है। ब्रह्मा हवन करते हुए दिखाये गये हैं। अनेक देवी-देवता तथा गण यज्ञ-वेदी के आसपास बैठे हुए हैं। सम्पूर्ण प्रतिमा विवाह उपलक्ष की स्वाभाविकता लिये हुए हैं।

इस प्रकार शिव विवाह के पौराणिक सन्दर्भ हमें शिल्पकला में भी देखने को मिलते हैं। शिव विवाह के लोकाचार आज भी समाज में दिखाई देते हैं।

सन्दर्भ

1. शिव पुराण, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, संवत् 2011
2. स्कन्द पुराण, उक्त, 1909
3. लिंग पुराण, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1933

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

4. कुमारसंभवम् कालिदास ग्रन्थावली
5. व्यास, हंसा, प्राचीन मालवा में शैव धर्म, कावेरी शोध संस्थान, उज्जैन
6. कल्याण संक्षिप्त शिव पुराणांक, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1962
7. रामायण, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1905

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

स्कन्दपुराण के अवंतीखण्ड में निरूपित उज्जयिनी की शाक्त परम्परा

डॉ० दीपिका रायकवार

शुद्ध शक्ति के मानवीकरण के रूप में देवी की आराधना सामान्यतः होती रही है। यह शक्ति किसी एक शक्ति, किसी एक विशिष्ट वस्तु अथवा गुण के पीछे की अधिष्ठाती शक्ति भी हो सकती है।[1] तैत्तरीय आरण्यक में रुद्र को अम्बिका पति अथवा उमापति कहा है। नमो हिरण्यपतये-हिरण्यपतये अंबिकापतये नमोनमः। इसी प्रकार लगभग सभी पुराण देवी के महत्व को वर्णित करते है। पुराणों के अनुसार दुर्गा पार्वती अपने में सर्वोच्च दार्शनिक मूल्यों को समाहित किये हैं। वह सर्वशक्तिमती, आद्य शक्ति हैं जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर का सृजन करने वाली हैं।[2] इसी प्रकार शिव की उज्जयिनी में स्थिति होने के कारण तथा शिव की शक्ति के रूप में शाक्त परम्परा का यहाँ पल्लवित तथा स्थित होना सहज है। उज्जयिनी शाक्त परम्परा का केन्द्र बिन्दु रहा है, जिसका उल्लेख तथा महात्म्य स्कन्दपुराण का अवंतीखण्ड विस्तृत रूप में करता है -

1. हरसिद्धि देवी

स्कन्दपुराण का अवंतीखण्ड उज्जयिनी की शाक्त देवियों में हरसिद्धि देवी का भी वर्णन करता हैं। प्राचीन काल से ही माना जाता हैं कि उज्जयिनी की रक्षा में जिन योगिनियों का पहरा रहता हैं उनमें हरसिद्धि देवी प्रमुख हैं। इस स्थान का पुराणों में धार्मिक महत्व बतलाया गया है। इसी प्रकार अवंतीखण्ड में हरसिद्धि देवी की एक कथा का वर्णन किया गया हैं, जिसके अनुसार चण्ड तथा प्रचण्ड नामक दो बड़े शक्तिशाली दानवों के स्वर्ग को उखाड़ने के प्रयास को असफल करने हेतु तथा शिवगणों को आहतित होता देख शिव द्वारा देवी को चण्ड तथा प्रचण्ड दैत्यों का वध कर डालने को

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कहा गया, आज्ञा पाकर देवी द्वारा मुड़्गररास्त्र से दोनों दैत्यों का वध किया गया,[3] यह देखकर भगवान शिव ने देवी से कहा कि -

हरस्तामाह हे चण्डि संत्दृतौ दुष्टदानवौ।
हरसिद्धिरतो लोके नाम्ना ख्याति गमिस्यसि ।।

(स्कन्दपुराण, अवंतीखण्ड, अ. 19, श्लोक 9)

अर्थात् हे चण्डी आपने इन दोनों दुष्ट दानवों का संहार किया इसलिए आपकी प्रसिद्धि संसार में हरसिद्धि देवी के नाम से होगी, तभी से उस भगवती का नाम हरसिद्धि के रूप में प्रसिद्ध हुआ। यही देवी महाकालवन में प्रसिद्ध सिद्धि भूत हैं। कालान्तर में उज्जयिनी तंत्र साधना का प्रमुख केन्द्र रहा हैं विक्रमादित्य के शासन काल में हरसिद्धि शक्ति प्रदाता आराध्या देवी के रूप में पूजी जाती थी।

अवन्तीखण्ड में आगे उल्लेख मिलता है कि जो परम भक्ति से हरसिद्धि देवी के दर्शन करता हैं, उसकी कामना पूर्ण होती है और वह अक्षय फल प्राप्त कर शिवलोक को जाता है। हर नवमी को प्रिय माता हरसिद्धि देवी की पूजा करने पर देवी प्रसन्न होकर भक्त को अनन्त फल प्रदान करती हैं।[4] हरसिद्धि देवी के महत्व को वर्णित करते हुए अवन्तीखण्ड में सनत्कुमारजी द्वारा व्यासजी को कहा गया है कि -

महानवम्यां ये व्यास हन्यन्ते महिषादयः ।
सर्वे ते स्वर्गतिं पांतिहन्तां पापं न विद्यते ।।

(अवन्तीखण्ड, अध्याय 19, श्लोक 17)

अर्थात् हे व्यासजी महानवमी को यहाँ महिषादि की बलि देने पर हरसिद्धि स्वर्ग प्रदान करती हैं तथा बलि देने वालों को इसका पाप नहीं लगता। यह प्रथा वर्तमान में भी निरन्तर देखी जा सकती हैं।

2. गढ़कालिका देवी

उज्जयिनी की शाक्त तीर्थों में से गढ़कालिका भी एक प्रमुख देवी हैं, जिसका उल्लेख अवन्तीखण्ड कालिका या भद्रकाली नाम से करता है। अवन्तीखण्ड में वर्णन मिलता हैं कि भद्रपीठ पर बैठने वाली भद्रकाली यहाँ प्रसिद्ध होकर इस क्षेत्र में व्रत धारिणी होकर सदा विहार करती हैं, यहाँ द्वार देश पर क्षेत्रपाल भैरव हैं जिनका कालीदेवी ने पुत्रवत पालन किया था।[5]

आगे उल्लेख मिलता हैं कि महाकालवन में जब अंधकासुर से शिव का युद्ध हुआ था तब काली एवं महाकाली ने शिव को सहयोग दिया था। इसी प्रकार अवन्तीखण्ड में वर्णित चौबीस शक्ति स्थान बताए गये हैं, यह उनमें से एक है। यद्यपि शक्ति पीठों के रूप में उज्जयिनी का 33वां स्थान है। अतः गढ़कालिका देवी मन्दिर को शक्ति स्थल के

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

रूप में मान्यता प्राप्त हैं।

यह स्थान तांत्रिक सिद्ध स्थान है। शक्तिसंगम तंत्र के अनुसार - ''अवन्ती संज्ञके देशे कालिका यत्र तिष्ठति।'' इसी प्रकार लिंगपुराण में वर्णन मिलता है कि जिस समय युद्ध विजयी होकर राम अयोध्या को वापस जा रहे थे, रूद्रसागर के निकट ठहरे थे। उसी रात को कालिका भक्ष्य की शोध में निकली हुई थी। हनुमान को पकड़ने का यत्न किया, किन्तु हनुमान के भीषण रूप लेने पर देवी भयभीत हो गई, भागने के समय जो अंग गलित होकर गिर गया वहीं स्थान यह कालिका देवी का है।[6] गढ़कालिका लोक परम्परा के अनुसार महाकवि कालिदास की इष्टदेवी मानी जाती हैं। वर्तमान में जो मन्दिर दिखता हैं उसकी नींव में शुंगकाल ई.पू. प्रथम शताब्दी, गुप्त काल चौथी शताब्दी ईस्वी तथा परमार काल दसवीं से बारहवीं शताब्दी ईस्वी की प्रतिमाएँ और मन्दिर की नींव प्राप्त हुई हैं।

3. विंध्यवासिनी देवी

शाक्त तीर्थों में अवन्तीखण्ड के अनुसार विंध्यवासिनी देवी का भी विवरण प्राप्त होता है। प्राचीन काल में जब यह पृथ्वी रेवा के जल से आप्लावित थी, तब सभी देवताओं ने पृथ्वी की रक्षा के लिए अगस्त ऋषि से प्रार्थना की, अगस्त ऋषि ने उस विंध्याचल पर्वत पर जाकर वहाँ की देवी विंध्यवासिनी की आराधना की देवी की स्तुति से विंध्यवासिनी द्वारा अगस्त ऋषि से इच्छित वर की कामना पूछी। तब अगस्त ऋषि द्वारा निवेदन करने पर विंध्यवासिनी देवी महाकालवन में चली गई, और इस प्रकार ऋषि अगस्त से कहकर तभी से विंध्यवासिनी देवी ने उज्जयिनी में निवास किया था।[7] कालान्तर में यह देवी गढ़कालिका देवी के पीछे टेकरी पर स्थित हैं।

4. शीतलादेवी

अवन्तीखण्ड में 24 मातृकाओं के नाम मिलते हैं उनमें से एक शीतला देवी है। अवन्तीखण्ड के अध्याय बारह में शीतला माता का उल्लेख मिलता हैं , जो वर्तमान चौरासी महादेव में से एक कर्केश्वर महादेव के पास में खटीकवाड़ा की गली दानी दरवाजा में स्थित है। अवन्तीखण्ड से ज्ञात होता है कि विस्फोट जैसे फोड़े-फुंसी के शमनार्थ तथा बालकों के रोगों के निवारण के लिए शीतला देवी को मसुरों को कुटकर उड़द को मापकर चढ़ाने से बालकों के रोग दूर हो जाते हैं।[8]

5. वट मातृका

अवन्तीखण्ड यहाँ वट मातृकाओं का भी उल्लेख करता हैं जिसके अनुसार पहले से स्थापित वट वृक्ष के पास वट मातृकाऐं थी, जो लोक मातृकाऐं बनी जो बाद में मातृकाओं के नाम से प्रसिद्ध हुई। वर्णन मिलता हैं कि इस तीर्थ में स्नान कर पवित्र भाव

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

से जो इन मातृकाओं का दर्शन करता एवं पूजन करता है, वह घोर विपत्तियों से मुक्त होकर मातृलोक की प्राप्ति करता है।[9] यह मातृकाएँ सम्भवतः सिद्धवट वाले क्षेत्र में स्थित रहीं होगी।

6. अवन्तिका मातृका

स्कन्दपुराण के अवन्तीखण्ड में उज्जयिनी के महात्म्य पर जो विवरण प्राप्त होता है, उसके आधार पर उज्जयिनी में शैव धर्म के शिव तथा शाक्त धर्म के शक्ति दोनों का प्रभाव बराबर बताया गया है। अवन्तीखण्ड में अवन्तिका स्वयं देवी नाम का उद्‌बोधन हैं, जिसका उल्लेख अवन्तीखण्ड करता है। वर्तमान में अवन्ती देवी महाकालेश्वर मन्दिर में कोटितीर्थ के ऊपर राम लक्ष्मण मन्दिर के पीछे की ओर स्थापित हैं।

7. नगरकोट देवी

प्राचीन उज्जयिनी के दक्षिण-पश्चिम कोने की सुरक्षा देवी के रूप में नगरकोट की रानी विख्यात है। स्कन्दपुराण के अवन्तीखण्ड में चौबीस मातृकाओं में से नव मातृकाओं का उल्लेख हैं, जिनमें से एक सातवी कोटरी देवी के रूप में मान्यता रखती हैं।[10] बाणासुर की नग्न माता को कोट्टवी के नाम से अभिहित किया गया हैं, जिसका अर्थ है 'नग्न स्त्री का गुठ'।[11] इन्हें कोट्टवी को नाना या नानी नाम से भी पूजा जाता है। अतः उज्जयिनी की नगरकोट की रानी कोट्टवी नानी हैं।

8. चौसठयोगिनी

चौसठ योगिनियों का तांत्रिक परम्परा में विशेष महत्व रहा है। अवन्तीखण्ड में इन्हें योगिनी नाम से अभिहित किया गया हे, वहीं इनकी संख्या चौसठ होने के कारण ये 64 योगिनियाँ कहलाई। यह मन्दिर कलाकृति की दृष्टि से मराठाकालीन है किन्तु इसमें प्रतिष्ठित छोटी-छोटी देवी प्रतिमाएँ परवर्ती परमार काल की प्रतीत होती हैं। मन्दिर में विक्रमादित्य व आज्ञावीर की मूर्ति स्थापित हैं।

9. भूमि देवी (पृथ्वी देवी)

भूमि देवी का शाक्त देवियों में विशेष महत्व है। अवन्तीखण्ड में उल्लेख हुआ है कि शिव के स्वेद के भूमि पर गिरने से अंगारक (मंगल) की उत्पत्ति हुई थी, तभी से यह भूमि देवी अंगारक क्षेत्र में विद्यमान हैं।[12] हरिवंश पुराण में भूमि माता को वस्त्र देने वाली, भरण पोषण करने वाली देवी के रूप में माना गया है।[13]

10. एकानंशा देवी

इसी प्रकार शाक्त तीर्थों में एकानंशा देवी का महात्म्य वर्णित करते हुए अवन्तीखण्ड में उल्लेख मिलता है कि -

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

एकानंशा नमस्कृत्य देवी त्रैलोक्य विश्रुताम्।
पूजां कृत्वा विधानेन सर्वसिद्धि फलं लभेत् ॥

(अवंतीखण्ड, अध्याय 18, श्लोक 1)

अर्थात् त्रिलोकी में पूज्य एकानंशा देवी को प्रणाम कर पूजन करने से सभी आठों सिद्धियों की प्राप्ति होती है। प्रसिद्ध देवी के रूप में एकानंशा देवी की उत्पत्ति व उद्देश्य के सम्बन्ध में अवन्तीखण्ड में एक विवरण प्राप्त होता है कि - सतयुग के प्रारम्भ में ब्रह्माजी द्वारा शरीर से उत्पन्न होने वाली मूर्ति का स्मरण किया गया, तब महामाया स्वरूप देवी प्रकट हुई और ब्रह्म आज्ञा से तारक नामक दैत्य जो देवताओं का अहित करने वाला है, शिव व सती (पार्वती) के पुत्र द्वारा मारने हेतु ब्रह्माजी द्वारा उस देवी से निवेदन किया गया कि सती को अपने स्वरूप से गर्भ स्थान पर अनुशक्ति करवाओं, जब शिव और सती के परिहास करने पर उज्जवल पुत्र की प्राप्ति होगी वह उस दैत्य का कारक बनेगा। पार्वती द्वारा गौर वर्ण धारण करने के दौरान वह तुम्हें भी अपना सारुप्य प्रदान करेगी और तभी वह तुम्हारी एकानंशा हो जायेगी। तब ब्रह्माजी के कथनानुसार -

'एकानंशेति लोकस्त्वां वारदे पूजयिष्यति'

अर्थात् तब संसार के लोग तुम्हें एकानंशा के वरद नाम से जानकर तुम्हारी अर्चना करेंगे।[14] उज्जयिनी में यह एकानंशा देवी का मन्दिर आज भी सिंहपुरी क्षेत्र में विद्यमान है।

11. कपाल मातृकाएँ

उज्जयिनी के शाक्त तीर्थों में अवन्तीखण्ड के नवें अध्याय में कपाल मातृकाओं के विषय में महत्व ज्ञात होता है कि शिव द्वारा कपाल को धारण कर तथा उस कपाल के तेज से आहतित होकर महिषासुर नामक दानव के क्रोध से बचाव हेतु उस कपाल से उत्पन्न प्रचण्ड अस्त्रों से युक्त मातृकाओं द्वारा उस दैत्य का वध किया गया, इसी कारण उन मातृकाओं को कपाल मातृकाओं के नाम से प्रसिद्धि मिली।[15] वर्तमान में कपाल मातृकाओं का मन्दिर हरसिद्धि मन्दिर क्षेत्र में स्थित है।

12. चौबीसखम्बा देवी

अवन्तीखण्ड में चौबीस मात्रिकाओं में से महालया और महामाया आदि देवियों के नाम भी वर्णित मिलते हैं। वर्तमान में महाकालेश्वर मन्दिर में नगर से एक प्रवेश करने का पुरातन द्वार है स्पष्ट होता है कि यह महाकालवन का द्वार रहा है जिसके आगे ही एक छोटा द्वार और बना हुआ था। इस द्वार के मुख्य भाग के दोनों ओर दो देवियाँ स्थापित हैं, एक महामाया तथा दूसरी महालया। अवन्तीखण्ड में वर्णित महामाया व महालया सम्भवतः यही देवियाँ होगी। यह देवियाँ मुख्य द्वार पर रक्षिका के रूप में

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रतिष्ठित हैं। स्पष्ट होता है कि 12वीं सदी के आसपास इस स्थान पर एक बड़े द्वार सहित अर्द्धमण्डल, मण्डप या महामंडप एवं गर्भगृह युक्त एक अनेक मंजिलों वाला विशाल शाक्त मन्दिर रहा होगा।[16]

इस प्रकार देखा जाए तो स्कन्दपुराण के अवन्तीखण्ड के द्वारा उज्जयिनी के शाक्त धर्म एवं परम्परा का लिखित मूल वर्णन प्रस्तुत होता है, जो परम्परा हम कालान्तर में भी निरन्तर स्वचलित महत्व से देख सकते हैं।

सन्दर्भ

1. डॉ. पाण्डे, सुस्मिता, समाज आर्थिक व्यवस्था एवं धर्म, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृ. 116
2. देवी महात्म्य, अ. 81-93
3. स्कन्दपुराण, अवंतीखण्ड, अ. 19/1-8
4. वही, श्लोक 11-15
5. वही, अध्याय 67/9-12
6. अहिरवार, रामकुमार, उज्जैन और उसका गौरवशाली अतीत, आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, पृ. 157
7. स्कन्दपुराण, अवंतीखण्ड अध्याय, 55/20-27
8. वही, अध्याय 12/1-3
9. वही, अध्याय, 37/24-25
10. वही, अध्याय 64/8-9
11. अग्रवाल, वासुदेवशरण, प्राचीन भारतीय लोकधर्म, पृ. 113-14 एवं पृ. 137-138
12. स्कन्दपुराण, अवंतीखण्ड अध्याय, 37/40-52
13. हरिवंश पुराण, अध्याय, 6/43-44
14. स्कन्दपुराण अवंतीखण्ड अध्याय, 18/25
15. वही, अ. 9/138-141
16. चक्रवर्ती, के.के., उज्जयिनी प्रतिकल्पा, दिल्ली, 1992 लेख S.K. Preliminary Report of Trail Digging at Choubis Khamba area Ujjain in 1964, pp. 100-106

नानाजी देशमुख पुस्तकालय (भाजपा) क्रमांक 1043

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri
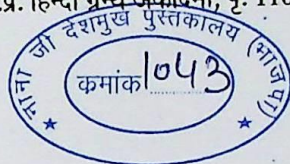
पुराणों में शैव धर्म के विविध पक्ष

नेहा बामनिया*

सबसे उत्तम जो शिवपुराण है, वह वेदान्त का सार-सर्वस्व है। भगवान शिव के उत्तम यश का वर्णन है, ब्राह्मणों! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थ को देने वाला वह पुराण सदा ही अपने प्रभाव की दृष्टि से वृद्धि या विस्तार को प्राप्त हो रहा है। उस सर्वोत्तम शिवपुराण के अध्ययन मात्र से वे कलियुग के पापासक्त जीव श्रेष्ठतम गति को प्राप्त हो जायेंगे। कलियुग के महान् उत्पाद तभी तक जगत में निर्भय होकर विचरेंगे, जब तक यहाँ शिवपुराण का उदय नहीं होगा। इसे वेद के तुल्य माना गया है। इस वेद कल्प पुराण का सबसे पहले भगवान शिव ने ही प्रणयन किया था। विद्‌देश्वरसंहिता, रुद्रसंहिता, विनायक संहिता, उमा संहिता, मातृ संहिता, एकादश रुद्रसंहिता, कैलाश संहिता, शतरूद्र संहिता, कोटिरूद्र संहिता, सहस्त्र कोटि रूद्र संहिता, वायवीय संहिता तथा धर्म संहिता - इस प्रकार इस पुराण के बारह वेद या खण्ड है। ये बारह संहिता अत्यन्त पुण्यमयी मानी गयी है। विद्‌देश्वर संहिता में दस हजार श्लोक है, रूद्रसंहिता, विनायक संहिता, उमा संहिता और मातृ संहिता इनमें से प्रत्येक में आठ-आठ हजार श्लोक है। ब्राह्मणों! एकादश रूद्रसंहिता में तेरह हजार, कैलाश संहिता में छः हजार, शतरूद्र संहिता में तीन हजार, कोटिरूद्रसंहिता में नौ हजार, सहस्त्र कोटि रूद्रसंहिता में ग्यारह हजार, वायवीय संहिता में चार हजार तथा धर्म संहिता में बारह हजार श्लोक है। इस प्रकार मूल शिव पुराण की श्लोक संख्या एक लाख है।

---

* शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उज्जैन (म०प्र०)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पूर्वकाल में भगवान शिव ने श्लोक संख्या की दृष्टि से सौ करोड़ श्लोकों का एक ही पुराणग्रन्थ ग्रंथित किया था। सृष्टि के आदि में निर्मित हुआ वह पुराण साहित्य अत्यन्त विस्तृत था। फिर द्वापर आदि युगों में द्वैपायन (व्यास) आदि महर्षियों ने जब पुराण का अठारह भागों में विभाजन कर दिया उस समय सम्पूर्ण पुराणों का संक्षिप्त स्वरूप केवल चार लाख श्लोकों का रह गया। उस समय उन्होंने शिवपुराण का चौबीस हजार श्लोकों में प्रतिपादन किया यहीं इसके श्लोकों की संख्या है। यह वेद तुल्य पुराण सात संहिताओं में बँटा हुआ है। इसकी पहली संहिता का नाम विद्‌देश्वरसंहिता है। दूसरी रूद्र संहिता समझनी चाहिये, तीसरी का नाम शतरूद्र संहिता, चौथी का कोटिरूद्र संहिता, पांचवी का उमा संहिता, छठी का कैलाश संहिता और सातवीं का नाम वायवीय संहिता है। इस प्रकार ये सात संहिताएँ मानी गयी है। इन सात संहिताओं से युक्त दिव्य शिवपुराण वेद के तुल्य प्रामाणिक तथा सबसे उत्कृष्ट गति प्रदान करने वाला है। यह निर्मल शिवपुराण भगवान शिव के द्वारा ही प्रतिपादित है। यह समस्त जीव समुदाय के लिये उपकारक, त्रिविध तत्वों का नाश करने वाला, तुलनारहित एवं सत्पुरुषों को कल्याण प्रदान करने वाला है। इसमें वेदान्त विज्ञानमय प्रधान तथा निष्कपट (निष्काम) धर्म का प्रतिपादन किया गया है। इसमें श्रेष्ठ एवं मंत्र समूहों का संकलन है तथा धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्ग की प्राप्ति के साधन का भी वर्णन है। यह उत्तम शिव पुराण समस्त पुराणों में श्रेष्ठ है।

परात्पर ब्रह्म के सभी रूप नित्य शाश्वत परमात्मा स्वरूप है। उनके देह जन्म-मरण से रहित और स्वरूप भूत है, कदापि प्रकृतिजनित नहीं है, शिवपुराण में ये ही परात्पर ब्रह्म शिव नाम से व्याख्यात है। इनके स्वरूप का शिवपुराण में आदि से अन्त तक जो वर्णन मिलता है वह सब का सब पूर्ण रूप से परतम ब्रह्म का ही वर्णन है।

शिवपुराण में भक्ति, ज्ञान और वैराग्य - इन तीनों का प्रीतिपूर्वक गान किया गया है। देवता तत्व अग्नि और सोम - इन दो भागों में विभक्त है। इनमें अग्नि तत्व अंग्नि, वायु और सूर्य रूप में परिणत होता है। इनमें आग्नेय वायु रूद्र है और सौम्य वायु शिव है, जैसा कि 'या ते रूद्र शिवातनूरधोरा पापकाशिनी। इस वैदिक मंत्र में कहा गया है शेषात्मक प्रलयंकर रूद्र-तत्व ही जब जल (सोम) से युक्त होता है, तब वह शिव अथवा साम्बसदा शिव कहलाता है, देवता तत्व से अभिन्न होने के कारण रूद्र तत्व भी छः व्यूहों (प्रकारों) में विभक्त है। प्राकृत पदार्थ रूप, प्राण-रूप, अभिमानिरूप, सौम्य प्राणिरूप, माक्षत्रिक प्राण रूप, औपासनिक रूप। इनमें अर्क, धतूर, विष और उग्र प्राकृत पदार्थों का उत्पाद का प्राकृत शक्ति रूप पहला रूद्र है। काम, क्रोध, मोह, दम्भ आदि प्राणात्मक रूद्र दूसरा है । अर्क धतुर एवं काम क्रोध आदि का अभिमानी तीसरा व्यूह है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ज्योत्स्नावासी सौम्य प्राणि-विशेष चौथा प्रकार है। मूल, ज्येष्ठा आदि नक्षत्र संबंधी प्राण पाँचवा व्यूह है। शिव को सर्प भूषण कहा जाता है। शिवजी के 12 ज्योतिर्लिंग बताये गये हैं। सौरातट में सोमनाथ, श्री शैल पर मल्लिकार्जुन, उज्जयिनी में महाकाल, औंकार में यमरेश्वर, हिमालय पर केदार, डाकिनी में भीमशंकर, काशी में विश्वनाथ, गौतमी के तट पर त्र्यम्बकेश्वर, चिताभूमि में बैद्यनाथ, डारूकवन में नागेश्वर, सेतुबंध पर रामेश्वर और शिवालय में घुरमेश्वर। उनमें पहला अवतार सोमनाथ का है। यह चन्द्रमा के दुःख का विनाश करने वाला है। इनका पूजन करने से क्षय और कुष्ठ आदि रोगों का नाश हो जाता है। दूसरा अवतार श्री शैल पर हुआ। वह भक्तों को अभीष्ट फल प्रदान करने वाला है। यह दूसरा ज्योर्तिलिंग है। वह दर्शन और पूजन करने से महासुखकारक होता है और अन्त में मुक्ति भी प्रदान कर देता है। तीसरा अवतार उज्जयिनी नगरी में हुआ, वह अपने भक्तों की रक्षा करने वाला है। एक बार रत्नमाल निवासी दूषण नामक असुर जो वैदिक धर्म का विनाशक विप्रद्रोही तथा सब कुछ नष्ट करने वाला था, उज्जयिनी में जा पहुँचा। तब वेद नामक ब्राह्मण के पुत्र ने शिवजी का ध्यान किया। फिर तो शंकरजी ने तुरन्त ही प्रकट होकर हुंकार द्वारा उस असुर को भस्म कर दिया। तत्पश्चात् अपने भक्तों का सर्वथा पालन करने वाले शिव देवताओं के प्रार्थना करने पर महाकाल नामक ज्योर्तिलिंग स्वरूप से वही प्रतिष्ठित हो गये। परम आत्मबल से सम्पन्न परमेश्वर शम्भु ने भक्तों को अभीष्ट फल प्रदान करने वाला ओंकार नामक चौथा अवतार धारण किया। विध्यगिरी ने भक्तिपूर्वक विधि-विधान से शिवजी का पार्थिवलिंग स्थापित किया उसी लिंग से विंध्य का मनोरथ पूर्ण करने वाले महादेव प्रकट हुए तब देवताओं के प्रार्थना करने पर भुक्ति-युक्ति के प्रक्षता भक्त वत्सल लिंग रूपी शंकर वहाँ दो रूपों में विभक्त हो गया। उनमें एक भाग ओंकार में ओंकारेश्वर नामक उत्तम लिंग के रूप में प्रतिष्ठित हुआ और दूसरा पार्थिव लिंग परमेश्वर नाम से प्रसिद्ध हुआ। पाँचवें अवतार का नाम है केदारेश! वह केदार में ज्योर्तिलिंग रूप से स्थित है। वहाँ श्री हरि के जो नर-नारायण नामक अवतार है, उनके प्रार्थना करने पर शिवजी हिमगिरि केदार शिखर पर स्थित हो गये है, वे दोनों उस केदारेश्वर लिंग की नित्य पूजा करते है। शिवजी का यह अवतार सम्पूर्ण अभीष्टों को प्रदान करने वाला है। महाप्रभु शम्भु के छठे अवतार का नाम भीमशंकर है। इस अवतार में उन्होंने बड़ी-बड़ी लीलाएँ की है और भीमासुर का विनाश किया है। कामरूप देश के अधिपति राजा सुदक्षिण शिवजी के भक्त थे। भीमासुर उन्हें पीड़ित कर रहा था तब शंकर जी ने अपने भक्तों को दुःख देने वाले उस भदुत असुर का वध करके उनकी रक्षा की। राजा सुदक्षिण के प्रार्थना करने पर स्वयं शंकर जी डाकिनी में भीमशंकर नाम ज्योर्तिलिंग स्वरूप से स्थित हो गये। जो समस्त

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ब्रह्माण्ड स्वरूप तथा भोग-मोक्ष का प्रदाता है। वह विश्वेश्वर नामक सातवाँ अवतार काशी में हुआ। मुक्तिदाता सिंह स्वरूप स्वयं भगवान शंकर अपनी पुरी काशी में ज्योर्तिलिंग रूप में स्थित है। विष्णु आदि सभी देवता कैलाशपति शिव और भैरव नित्य उनकी पूजा करते है जो काशी विश्वनाथ के भक्त है और नित्य उनके नामों का जप करते रहते हैं वे कर्मों से निर्विरत होकर कैवल्य पद के भागी होते है। चन्द्रशेखर शिव का जो त्र्यम्बक नामक आठवां अवतार है वह गौतम ऋषि के प्रार्थना करने पर गौतमी नदी के तट पर प्रकट हुआ था। गौतम की प्रार्थना से उन मुनि को प्रसन्न करने के लिये शंकरजी प्रेमपूर्वक ज्योर्तिलिंग स्वरूप से वहाँ अंचल होकर स्थित हो गये। उन महेश्वर का दर्शन और स्पर्श करने से सारी कामनाएँ सिद्ध हो जाती है। तत्पश्चात् मुक्ति भी मिल जाती है। शिवजी के अनुग्रह से शंकर प्रिया परम पावनी गंगा गौतम के स्नेहवश वहाँ गौतमी नाम से प्रवाहित हुई। उनमें नवा अवतार वैद्यनाथ नाम से प्रसिद्ध है। इस अवतार में बहुत सी विचित्र लीलाएँ करने वाले भगवान शंकर रावण के लिये आर्विर्भूत हुए थे। उस समय रावण द्वारा अपने जाने को ही कारण मानकर महेश्वर ज्योर्तिलिंग स्वरूप से चिता-भूमि में प्रविष्ठित हो गये। उस समय वे त्रिलोकी में बैद्यनाथेश्वर नाम से विख्यात हुए। वे भक्तिपूर्वक दर्शन और पूजन करने वाले को भीम मोक्ष के प्रदाता है, जो लोग इन वैद्यनाथेश्वर शिव के माहात्म्य को पढ़ते अथवा सुनते है उन्हें यह मुक्ति का भागी बना देता है। दसवाँ नागेश्वरावतार कहलाता है। यह अपने भक्तों की रक्षा के लिये प्रादुर्भूत हुआ था। यह सदा दुष्टों को दण्ड देता रहता है। नागेश्वर नामक उस शिवलिंग का दर्शन तथा अर्चन करने से राशि के राशि महान पातक तुरन्त विनष्ट हो जाते है। शिवजी का ग्यारहवाँ अवतार रामेश्वरावतार कहलाता है। वह श्री रामचन्द्र का प्रिय करने वाला है। उसे श्री राम ने ही स्थापित किया था। जिन भक्त वत्सल शंकर ने परम प्रसन्न होकर श्रीराम को प्रेमपूर्वक विजय का वरदान दिया वे ही लिंगरूप में आविर्भूत हुए तब श्रीराम के अत्यन्त प्रार्थना करने पर वे सेतुबन्ध पर ज्योर्तिलिंग रूप से स्थित हो गये। उस समय श्रीराम ने उनकी भली-भाँति सेवा-पूजा की। रामेश्वर की अद्भूत महिमा की भूतल पर किसी से तुलना नहीं की जा सकती। यह सर्वदा मुक्ति की प्रदायिनी तथा भक्तों की कामना पूर्ण करने वाली हैं। जो मनुष्य शक्तिपूर्वक रामेश्वर लिंग को गंगा जल से स्नान करायेगा वह जीवन्त मुक्त ही है। वह इस लोक में जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ है, ऐसे सम्पूर्ण भोगों को भोगने के पश्चात् परम ज्ञान को प्राप्त होगा। फिर उसे कैवल्य मोक्ष मिल जाएगा।

घुरमेश्वरावतार शंकर जी का बारहवाँ अवतार है। वह नाना प्रकार की लीलाओं का कर्ता, भक्तवत्सल तथा घुरमा को आनन्द देने वाला है। घुरमा का प्रिय करने के लिए भगवान शंकर दक्षिण दिशा में स्थित निकटवर्ती एक सरोवर में प्रकट हुए। घुरमा के पुत्र

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

को सुदेह ने मार डाला था। उसे जीवित करने के लिए घुरमा ने शिवजी की आराधना की। तब उनकी भक्ति से संतुष्ट होकर भक्तवत्सल शम्भु ने उनके पुत्र को बचा लिया। शम्भू घुरमा की प्रार्थना से उस तड़ाण ने ज्योर्तिलिंग रूप से स्थित हो गये। उस समय उनका नाम घुरमेश्वर हुआ। यह शिव के सौ अवतारों की उत्तम कीर्ति से सम्पन्न तथा सम्पूर्ण अभीष्ट फलों को देने वाली है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

श्रीमद्भागवत पुराण में रामकथा का स्वरूप

सुनील शर्मा*

पुराण भारतीय संस्कृति का मेरूदण्ड है, वह आधार पीठ है, जिस पर आधुनिक भारतीय समाज अपने नियमन को प्रतिष्ठित करता है। भारतीय परम्परा ज्ञान को सर्वाधिक उत्कृष्ट एवं पवित्र मानकर उसके अर्जन अथवा उपलब्धि के विषय में सतत बद्धादर रही है यही कारण है कि ज्ञान को परमेश्वर या परमसत्ता का तप कहते हुए और कहीं उससे अभिन्न मानते हुए मनीषियों ने आरम्भ से इसे महनीय प्रतिष्ठा दी है। यह ज्ञान, उसका स्वरूप, उसकी ग्राहक सामग्री और ग्रहण-प्रक्रिया यद्यपि हमारी पृथक-पृथक दार्शनिक सरणि में आकर विभिन्न रीति से विवृत एवं व्याख्यात होते रहे हैं, तथापि ज्ञान को केवल स्थूल सांसारिक ऐन्द्रिय बोध तक ही सीमित रखना किसी भी आस्तिक दर्शन पद्धति को स्वीकार्य नहीं रहा है प्रायः सभी ने उसे अपनी रीति से अनादि एवं चिरन्तन मानने का अभिनिवेश रखा है।

इस ज्ञान की दो धाराएँ सामान्य रूप से स्वीकृत है प्रथम श्रुतिधारा तथा दूसरी स्मृतिधारा। श्रुतिधारा एवं स्मृतिधारा ये दोनों मिलकर ही परम्परा के दो नेत्र माने गए हैं। अपाततः श्रुति शब्द से समग्र वेद-राशि तथा स्मृति शब्द से इतिहास पुराण के साथ मनु, याज्ञवल्क्य, विष्णु आदि महर्षियों के लिखे प्रबन्धों का ग्रहण किया जाता है। अतः पुराण स्मृति धारा के अन्तर्गत आते हैं।

श्रीमद्भावगत का पुराण-साहित्य में अपना अद्वितीय स्थान है। पुराण का एक मात्र समुज्जवल प्रतिनिधि यही श्रीमद्भागवत माना जाता है। इसीलिए पुराण का नाम

---

* शोधार्थी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

लेते ही भागवत की ही भव्य मूर्ति श्रोताओं के मानस-पटल के सामने झूलने लगती है। संस्कृत के वाङ्मय का भागवत एक अलौकिक रसमय प्रतिनिधि है।

श्री वेदव्यासजी द्वारा जो श्रीमद्भागवत में श्रीराम के चरित्र का जो वर्तनीबद्ध विन्यास किया गया है मानो गागर में सागर भर लिया हो।

यदनुध्यासिना युक्ताः कर्मग्रन्थिनिबन्धनम्।

छिन्दन्ति कोविदास्तस्य को न कुर्यात् कथारतिम् ॥[1]

कर्मों की ग्रन्थि बड़ी कठोर है विचारवान पुरुष भगवच्चिंतन रूपी खंड से उस गाँठ को काट डालते हैं तब भला कौन ऐसा दुर्बुद्धि हो जो भगवान की लीला-कथा से प्रेम न करें?

जिस रामकथा के वर्णन में आदिकवि वाल्मीकि ने चौबीस हजार श्लोकों की रचना की तथा अन्यान्य अनेक विद्वज्जनों ने विस्तारपूर्वक विवेचन किया वहीं 'वेदोपनिषदं साराज्जाता भागवती कथा' जैसे वेद महोदधि-पीयूष श्रीमद्भागवत महापुराण में रामकथा का चित्रण लघुरूप में हुआ है यह शंका निराधार है। साक्षात् भगवान के कलावतार श्रीवेदव्यास जैसे अद्वितीय महापुरुष को जिस रचना से परमशान्ति मिली हो उसमें वे शान्ति के स्वरूप राम का चित्रण करने में कृपणता करें यह असम्भव है। वास्तविकता तो यह है कि यदि भागवत के गहन अध्ययन का निष्कर्ष निकाला जाय तो राम के जिस पक्ष से मानव का चतुर्मुखी विकास अनुस्युत है उसे प्रतिभासित कर उन्होंने 'गागर में सागर' की युक्ति को चरितार्थ किया है। भगवान वेदव्यास प्रथम स्कन्ध में ही अवतार वर्णन-शृंखला में लिखते हैं- देवताओं के कार्य-सम्पादन हेतु उन्होंने राजा के रूप में रामावतार ग्रहण किया और सेतुबन्धन रावण-वध आदि वीरतापूर्ण बहुत सी लीलाएँ की -

नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्यचिलीर्षया।

समुद्रनिग्रहादीनि चक्रे वीर्याण्यतः परम् ॥[2]

यहाँ यह बात स्मरणीय है कि भगवान वेदव्यास को शौर्यपूणता कार्यों में सेतुबन्धन और रावण-वध का प्रथम उल्लेख ही क्यों अभीष्ट हुआ।

पुनः इसी प्रकरण को आगे बढ़ाते हुए द्वितीय स्कन्ध में लीलावतारों की कथा के अन्तर्गत भगवान वेदव्यास जिस अधूरी बात को पूर्ण करना चाहते थे, उसका संकेत देते हुए कहते हैं - मर्यादापुरुषोत्तम राम की आँखें सीता-वियोग के कारण बड़ी क्रोधाग्नि से इतनी लाल हो जाती है कि उनकी दृष्टि से ही समुद्र के जन्तु जलने लगते हैं और सागर भयातुर होकर उन्हें मार्ग दे देता है। इसी संदर्भ में वे राम की तुलना त्रिपुर-विनाशक शंकर से करते हैं -

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

यस्मा अदादुदधिरूढ्भयगंगवेवो

मार्ग सपद्यरिपुरं हरवद्दिधक्षोः ।

दूरेसुहृन्मथितरोषसुशोणदृष्ट्या

तातत्यमानमकरोरगनक्रचक्रः ।।[3]

रावण के घमण्ड का जितना सटीक उदाहरण श्रीमद्भागवत में देखने को मिलताहै उतना अन्यत्र किसी ग्रन्थ में नहीं -

वक्षः स्थलस्पर्शरूग्णमहेन्द्रवाह-

दन्तैर्विडम्बितककुब्जुष उठहासम्।

सद्योऽसुभिः सह विनेष्यति दारहर्तु-

र्विस्फर्जितैर्धनुष उच्चरतोऽधिसैन्ये।।[4]

ऐरावत दाँत चूर-चूर होकर चारों और फैल गये थे, जिससे दिशाएँ सफेद हो गयी थीं, तब दिग्विजयी रावण अहं में मदोन्मत्त अट्टाहास कर उठा था। उसी रावण का घमण्ड श्रीराम के धनुष की टंकार से प्राणों के साथ तत्क्षण विलीन हो जाता है।

भागवत में भगवान व्यास का यह वर्णन पढ़कर श्रीराम के अद्वितीय शौर्य और पराक्रम का सहज परिचय हो जाता है, पर नवम स्कन्ध में जब वे भगवान श्रीराम की लीलाओं का वर्णन करते हैं तब राम की सुकुमारता के विषय में वर्णन किया -

गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः।

पाणिस्पर्शक्षमाभ्यां मृजितपथरूजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम्।।[5]

अपने पिता के सत्य की रक्षा के लिए राज्य का परित्याग कर वन-वन में विचरण करने वाले राम के चरण-कमल इतने सुकुमार थे कि भुवनसुन्दरी सीता के करकमलों का स्पर्श भी उन्हें सहन नहीं होता था। इन्हीं 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' चरण कमलों को धर्मनिष्ठता एवं प्रेम की सीमा का माध्यम बताना मर्मस्पर्शी समन्वय है।

त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्य लक्ष्मीं

धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ।

मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्

वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्।।[6]

भगवन् ! आप के पादारविन्दों का ऐश्वर्य अवर्णनीय है। देवताओं के लिये स्पृहा-योग्य राज्यलक्ष्मी को छोड़कर आपके चरण वन-वन भटके। आप धर्म-निष्ठता की पराकाष्ठा हैं। महापुरुष! मैं आपके उन चरणों की वन्दना करता हूँ जो अपनी प्रेयसी सीता के चाहने पर जान-बूझकर माया मृग के पीछे दौड़ते रहे। सच में आप प्रेम की सीमा है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

तुलसी ने भी राम की विरह-व्यथा का वर्णन बहुत मार्मिक रूप में विस्तार से प्रस्तुत किया है, परन्तु ऐसे करूण-रस से ओतप्रोत वातावरण के समय भागवतकार कितना सजग है यह देखते ही बनता है।[7]

रामकथा साहित्य के एक अद्वितीय अनुपम आदर्श पात्र है श्री भरत। इस आदर्श पात्र का वर्णन मुक्तकण्ठ से सभी रामकथा मर्मज्ञों ने किया है परन्तु बहुत सीमित शब्दों में जो सारगर्भित चित्रण श्रीमद्भागवतपुराण में आया है, वह उच्चतम भावों का परिचायक है। वनवास पूर्ण हो जाने पर राम व भरत का मिलन हुआ उसका वर्णन भी श्री वेदव्यास जी ने सुन्दर वर्णन किया है।[8]

विशेष रूप से गार्हस्थ धर्म की श्रेष्ठता को प्रतिपादित करने में सजग श्रीराम के चरित्र-चित्रण में भागवतकार ने जिस जागरूकता का परिचय दिया है वह स्तुत्य है।[9]

भगवान् वेदव्यास ने अपने महान् ग्रन्थ श्रीमद्भागवत महापुराण में श्रीराम के चरित्रों का जो वर्णन किया है वह वास्तव में प्रशंसनीय है। व्यासजी के द्वारा सीमित शब्दों में जो राम कथा का वर्णन किया गया है वह वास्तव में इस उक्ति को सिद्ध करती है कि गागर में सागर।

सन्दर्भ

1. श्रीमद्भागवत, 1/2/15
2. वही, 1/3/22
3. वही, 2/7/24
4. वही, 2/7/25
5. वही, 9/10/4
6. वही, 11/5/34
7. वही, 9/10/11
8. वही, 9/10/40
9. वही, 9/10/55

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भारतीय परम्परा में विभिन्न मतों तथा सम्प्रदायों की दार्शनिक पृष्ठभूमि

डॉ० रूकमणी भदौरिया*

1. प्रस्तावना

भारत की प्राचीन जातियों में अपनी प्रथाओं, अपने आचार-विचारों और अपनी संस्कृति को अत्यन्त प्राचीन काल से आने वाली अविच्छिन्न परम्परा के रूप में मानने की प्रवृत्ति प्रायः सर्वत्र देखी जाती है। अनेक धार्मिक या राजनीतिक प्रभाव वाले वंशों की, यहाँ तक की धार्मिक मान्यताओं से सम्बद्ध अनेक नदियों आदि की भी दैवी या लोकोत्तर उत्पत्ति की भावना के मूल में भी यही प्रवृत्ति दिखाई देती है। भारतवर्ष में यह प्रवृत्ति अपने पूर्ण विस्तृत और व्यापक रूप में चिरकाल से चली आ रही है। यहाँ के शास्त्रों में वर्णित विविध विधाओं और कलाओं की ब्रह्मा आदि से उत्पत्ति की भावना अथवा अनेक वंशों की दैवी उत्पत्ति की भावना उक्त प्रवृत्ति के ही स्पष्ट निदर्शन हैं।

देश में अंग्रेजी विचारधारा के आक्रमण के कारण हमारे धार्मिक तथा सांस्कृतिक विचारों में जो उथल-पुथल दिखाई देने लगी थी। इस परिवर्तन में सबसे बड़ा योगदान प्रायेण उन रूढ़िवादी लोगों का रहा है जो अपने संकीर्ण, स्वार्थी या अन्धविश्वासों के कारण साम्प्रदायिक वातावरण की परिधि से बाहर स्वछन्द खुले प्राणप्रद वायु में रहकर विचार ही नहीं कर सकते थे। इसी के परिणामस्वरूप देश की साधारण जनता में प्रायः ऐसी भावना बद्ध मूल हो गई है कि उसकी धार्मिक और सांस्कृतिक रूढ़िया सदा से एक ही रूप में चली आ रही है। अतः साम्प्रदायिक या परिवर्तनशील न मानकर, सदा से एक ही रूप में रहने वाली स्थितिशील मानने लगे हैं।

* संस्कृत अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म०प्र०)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भारतीय राजनैतिक इतिहास में लोकतन्त्रात्मक गणराज्य की स्थापना एक अनोखी घटना है। इसके द्वारा भारत के किसी विशिष्ट वर्ग को नहीं अपितु भारतीय जनता को विदेशी परतन्त्रता से और कोटि-कोटि व्यक्तियों के समुचित विकास में बाधक अपने देश की अन्धरूढ़ियों से भी मुक्ति प्राप्त हुई। भारतीय परम्परा की नवीन विचारधारा भी सांस्कृतिक क्षेत्र में ऐसी ही क्रांतिमयी भावना को लेकर प्रवृत्त हुई है। राष्ट्र में सांस्कृतिक एकता की चेतना का उद्बोधन उसका मुख्य उद्देश्य है। भारतीय अन्तरात्मा ने राजनीतिक क्षेत्र में विभिन्न परम्परागत राज्यों के विलयन का जो चमत्कारी दृश्य उपस्थित किया है वह एक अभिमान तथा गौरव की वस्तु है। ऐसे ही राज्यों के कारण भारतीय इतिहास प्रायः छिन्न-भिन्न हो रहा था।

वास्तव में किसी भी इतिहास के समान ही भारतीय परम्परा का इतिहास भी इसी प्रकार की कार्य कारण भाव की परम्पराओं से निर्मित है।

2. भारतीय परम्परा का अर्थ

भारतीय परम्परा को स्पष्ट रूप से व्यक्त कर पाना अत्यन्त क्लिष्ट कार्य है। इसका स्पष्ट वर्णन कर पाना कठिन नहीं तो दुर्लभ अवश्य है। परन्तु इसके बारे में प्रायः निर्विवाद रूप से इतना कहा जा सकता है -

''कस्यापि देशस्य समाजस्य वा विभिन्न जीवन व्यापारेषु सामाजिक सम्बन्धेषु वा मानवीयत्वदृष्ट्या प्रेरणाप्रदानां तत्तदादर्शनां समष्टिरेव संस्कृति, परम्परा वा कथ्यते। वस्तुतस्तस्यामेव सर्वस्यापि सामाजिकजीवनस्योत्कर्षः पर्यवस्यति। तथैव तुलया विभिन्नसभ्यतानाम् उत्कर्षायकर्षौमीयते। संस्कृतिरेव वस्तुतः 'सेतुर्विधृतिरेषां लोकानामसंभेदाय'[1] इत्येवं वर्णयितुं शक्यते। अतएव च सर्वेषां धर्माणां सम्प्रदायानामाचारणां च परस्परं समन्वयः संस्कृतेरेवाधारेण कर्तुं शक्यते।''[2]

अर्थात् किसी देश या समाज के विभिन्न जीवन व्यापारों में या सामाजिक सम्बन्धों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले तत्तद् आदर्शों की समष्टि को ही संस्कृति या परम्परा कहते हैं। समस्त सामाजिक जीवन का परमोत्कर्ष संस्कृति तथा परम्परा में ही होता है। विभिन्न सभ्यताओं का उत्कर्ष तथा अपकर्ष संस्कृति एवं परम्परा द्वारा ही मापा जाता है। इनके द्वारा ही समाज को सुसंघटित किया जाता है। इसलिए संस्कृति के आधार पर ही विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों और आचारों का समन्वय किया जा सकता है।

भारतीय परम्परा के आधार के विषय में उपर्युक्त समन्वय-मूलक दृष्टि का क्षेत्र यद्यपि आज के वैज्ञानिक युग में अत्यधिक व्यापक और विस्तृत हो गया है, तब भी यह दृष्टि नितरां नवीन-कल्पना-मूलक है। भारतवर्ष के ही विद्वानों की परम्परागत प्राचीन

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मान्यताओं में इस दृष्टि की पुष्टि में हमें पर्याप्त आधार मिल जाता है। उदाहरणस्वरूप वर्तमान पौराणिक हिन्दु धर्म के लिए निगमागमन-धर्म नाम प्रसिद्ध है। इसका अर्थ स्पष्ट रूप से यह है कि परम्परागत पौराणिक हिन्दु धर्म का आधार केवल 'निगम' अथवा 'वेद' न होकर आगम भी है। वह निगम-आगम धर्मों का समन्वित रूप है। यहाँ निगम का मौलिक अभिप्राय, हमारी सम्मति में निश्चित या व्यस्थित वैदिक परम्परा से है और आगम का मौलिक अभिप्राय प्राचीनतर प्राग्वैदिक काल से आती हुई वैदिकेत्तर धार्मिक या सांस्कृतिक परम्परा से है।[3] वैदिक धर्म में प्रचलित पौराणिक धर्म के इस महान् परिवर्तन को ही वैदिक तथा वैदिकेत्तर परम्पराओं के एक प्रकार के समन्वय से ही समझ सकते हैं।

प्राचीन जातियों में अपनी प्रथाओं, अपने आचार-विचारों और अपनी संस्कृति को अत्यन्त प्राचीनकाल से आने वाली अविच्छिन्न परम्परा के रूप में मानने की प्रवृत्ति प्रायः सर्वत्र देखी जाती है। अनेक धार्मिक या राजनीतिक प्रभाव वाले वंशों की, यहाँ तक कि धार्मिक मान्यताओं से सम्बद्ध अनेक नदियों की भी उत्पत्ति की भावना दैवी मानी गई है शास्त्रों में वर्णित विविध विधाओं और कलाओं की ब्रह्मा आदि से उत्पत्ति की भावना अथवा अनेक वंशों की दैवी उत्पत्ति की भावना भी इसी प्रकार स्पष्ट निदर्शन है।

विदेशी विचारधारा के आक्रमण के कारण धार्मिक तथा सांस्कृतिक विचारों में उथल-पुथल दिखाई देने लगी। परिणामस्वरूप देश की साधारण जनता में प्रायः ऐसी भावना बद्धमूल हो गई कि उसकी धार्मिक और सांस्कृतिक रूढ़ियाँ सदा से एक ही रूप में निरन्तर चली आ रही है। साम्प्रदायिक दृष्टि के लोग इस परम्परा को प्रगतिशील या परिवर्तनशील न मानकर हमेशा से एक ही रूप में रहने वाली मानते हैं। परन्तु इस परम्परा के इतिहास के लम्बे काल में इसमें परिवर्तन अवश्य हुए होंगे चाहे वे इसके विकास की उन्मुख प्रगति को नहीं दर्शाते हों।

यह प्रगतिशीलता या परिवर्तनशीलता हमारी कल्पना मात्र नहीं है। प्राचीन धर्मशास्त्रों ने भी इसको मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है। धर्मशास्त्रों का कलि-वर्ज्य प्रकरण प्रसिद्ध है। इसमें प्राचीन काल में प्रचलित गोमेध, अश्वमेघ, नियोग-प्रथा आदि का आज निषेध किया गया है। प्रत्येक युग में आवश्यकता अनुसार इसमें परिवर्तन होता रहता हैं यथा - मनुस्मृति में स्पष्ट रूप से लिखा है कि -

''अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरे युगे।
अन्ये कलियुगे नृणां युगरूपानुसारतः।।''[4]

इसी प्रकार का वर्णन महाभारत में भी मिलता है -

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

"युगेष्वावर्तमानेषु धर्मोऽप्यावर्तते पुनः।
धर्मेष्वावर्तमानेषु लोकोऽप्यावर्तते पुनः॥"[5]

अर्थात् सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के युग के रूप में या परिस्थिति के अनुसार धर्म का परिवर्तन होता रहता है। युग-युग में मनुष्यों की श्रुति, शौच और आचार-व्यवहार सामयिक आवश्यकताओं के अनुसार बदलते रहते हैं।

इसलिए भारतीय परम्परा को स्वभावतः प्रगतिशील कहा जा सकता है। प्रत्येक भारतीय अपनी प्राचीन परम्परा, प्राचीन साहित्य और इतिहास का उचित सम्मान तथा उन पर गर्व करते हुए अपनी अन्तरात्मा के सन्देश-रूप मानव कल्याण की सच्ची भावना से आगे बढ़ते हुए वर्तमान प्रबुद्ध भारत के लिए साथ ही सम्पूर्ण संसार के लिए उन्नति और शान्ति के मार्ग को दिखाने में सहायक होता है।

3. भारतीय परम्परा में विभिन्न मतों की दार्शनिक पृष्ठभूमि

भारतीय परम्परा के विषय में देश के विचारकों, धर्मविद्वों तथा दार्शनिकों के विचारों में परस्पर विरूद्ध या विभिन्न दृष्टि या मत दिखाई देते हैं जो इस प्रकार हैं -

(क) इस विषय में अत्यन्त संकीर्ण मन उन लोगों का है, जो परम्परागत अपने-अपने धर्म या सम्प्रदाय को ही इस देश की संस्कृति तथा परम्परा मानते हैं। परन्तु परम्परा तो व्यापक तथा समन्वयात्मक है। इस बात को शायद वे भूल जाते हैं।

(ख) द्वितीय मत या दृष्टि उन लोगों अथवा विचारकों की है। जो भारतीय परम्परा को समस्त सम्प्रदायों में व्यापक न मानकर, कुछ विशिष्ट सम्प्रदायों से ही सम्बद्ध मानते हैं। इस दृष्टि वाले यद्यपि प्रथम दृष्टि अथवा मत वालों से बहुत उदार हैं इस विचारधारा से प्रभावित विचारक भारतीय परम्परा में वर्तमान भारत की कठिन साम्प्रदायिक समस्याओं के समाधान को तथा संसार की सतत् प्रगतिशील विचाराधारा के साथ इस देश का विकास करना चाहते हैं। परन्तु उनके प्रयास में ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ ही दिनों पहले तक सबसे सम्मानित भारतीय परम्परा केवल साम्प्रदायिकता से प्रभावित होकर निम्न कोटि की हो जाएगी।

(ग) तृतीय मत उन विचारकों का है जो भारतीय परम्परा का देश के किसी विशिष्ट एक या अनेक सम्प्रदायों से सीमित या बद्ध न मानकर समस्त सम्प्रदायों में एकसूत्र रूप से व्यापक मानते हैं, साथ ही इसे सबके मान, सम्मान और सहस्र वर्षों से भारतीय परम्परा से प्राप्त संकीर्ण साम्प्रदायिक भावनाओं और विषमताओं के विष को दूर कर राष्ट्र में एकात्मकता की भावना को विकसित करने का एकमात्र साधन समझते हैं। स्पष्टतः इसी दृष्टि से भारतीय परम्परा की भावना देश की अनेक विषम समस्याओं के समाधान का एकमात्र साधन हो सकती है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

(घ) चतुर्थ मत उन विचारकों का भी हो सकता है जो केवल अपने लक्ष्य या उद्देश्य की दृष्टि से भी भारतीय संस्कृति तथा परम्परा के सम्बन्ध में विभिन्न धारणाएँ रखते हैं।

(ङ) कुछ विचारक तो इसको प्रतिक्रियावादिता या पश्चात्गमिता का ही पोषक या समर्थक मानते हैं। परम्परा रूपी नदी की धारा सदा आगे की ओर बहेगी, इस मौलिक सिद्धान्त को भूलकर वे प्रायः यही स्वप्न देखते हैं कि भारतीय परम्परा के आन्दोलन के सहारे भारतवर्ष की सहस्र वर्षों की प्राचीन स्थिति को पुनः वापस ला सकेंगे। पश्चात्गमिता की इस विचारधारा के कारण देश का एक बड़ा प्रभाव सम्पन्न वर्ग इस परम्परा की भावना को सन्देह की दृष्टि से देखने लगा है।

उपर्युक्त विचारधारा से युक्त चाहे जो भी मत रहे हों यद्यपि भारतीय संस्कृति तथा परम्परा तो देश के परस्पर विरोधी तत्वों को मिलाने वाली, गंगा की सतत् अग्रगामिनी तथा विभिन्न धाराओं को आत्मसात् करने वाली धारा के समान ही सतत् प्रगतिशील और स्वभावतः समन्वयात्मक है। अतः हम सभी को इस प्राचीन परम्परा से जीवित सम्बन्ध रखते हुए इसे और आगे बढ़ाना चाहिए। इसी से हमारे देश तथा मानवता का पुनः उदय होगा।

(4) विभिन्न सम्प्रदायों की दार्शनिक पृष्ठभूमि

संस्कृत में प्राचीनकाल से ही एक सूक्ति प्रचलित है -

श्रुतयो विभिन्नः स्मृतयो विभिन्ना।
नैको मुनिर्यस्य मतं प्रमाणम्।।[6]

अर्थात् श्रुतियों और स्मृतियों में परस्पर विभिन्न मत पाये जाते हैं। इसका अभिप्राय यही है कि किसी भी सभ्य समाज में मतभेद और तन्मूलक सम्प्रदायों का भेद या बाहुल्य स्वाभाविक होता है। इसका मूल कारण मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मनुष्यों की स्वभाविक प्रवृत्ति और रुचि में भेद होना ही है। कोई व्यक्ति स्वभाव से ही ज्ञान-प्रधान, कोई कर्म-प्रधान और कोई भक्ति या भावना-प्रधान होता है। समय-भेद और देश-भेद से भी मनुष्यों की प्रवृत्तियों में भेद देखा जाता है। रेगिस्तान के शुष्क प्रदेश में रहने वालों के और बंगाल जैसे नमी-प्रधान प्रदेश में रहने वालों के स्वभावों में अन्तर होना स्वभाविक ही है। इन्हीं कारणों से भारतवर्ष जैसे विशाल और प्राचीन परम्परा वाले देश में अनेकानेक सम्प्रदायों का होना बिल्कुल स्वाभाविक है।

यह सम्प्रदाय-भेद स्वाभाविक होने के कारण व्यक्तियों की सत्प्रवृत्तियों के विकास का साधक होता है। यह तभी होता है जब उन विभिन्न सम्प्रदायों के लोगों के सामने कोई ऐसा उच्चतर आदर्श होता है जो उन सबको परस्पर संघटित और सम्मिलित रहने की प्रेरणा देता हो। परन्तु प्रायः देखा जाता है कि साम्प्रदायिक नेताओं की

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

स्वार्थबुद्धि और धर्मान्धता या असहिष्णुता के कारण सम्प्रदायों का वातावरण दूषित, संघर्षमय और विषाक्त हो जाता है। उस दशा में सम्प्रदाय-भेद अपने अनुयायियों के तथा देश के लिए अत्यन्त हानिकर और घातक सिद्ध होता है। भारतीय परम्परा की आन्तरिक धारा में चिरन्तन से सहिष्णुता की भावना का प्रवाह चल रहा है।

दर्शन-शास्त्र का विषय ऐसा है जिसका प्रारम्भ ही साम्प्रदायिकता की संकीर्ण भावना की सीमा की समाप्ति पर होता है। इसलिए दार्शनिक क्षेत्र में विभिन्न सम्प्रदायों के लोग, साम्प्रदायिक संकीर्णता से ऊपर उठकर सद्भावना और सौहार्द्र के स्वच्छ वातावरण के एकत्र रूप से सम्मिलित हो सकते हैं। परन्तु भारतवर्ष में दार्शनिक साहित्य का विकास प्रायेण साम्प्रदायिक संघर्ष के वातावरण में ही हुआ था। इसलिए उन-उन सम्प्रदायों से सम्पृक्त विभिन्न दर्शनों के साहित्य से भी प्रायः साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन मिलता रहा है।

न्याय-वैशेषिक दर्शनों का विकास शैव सम्प्रदाय से हुआ है। योग की परम्परा भी शैव सम्प्रदाय से ही प्रारम्भ हुई है। पूर्व-मीमांसा, वेदान्त, बौद्ध और जैन दर्शनों का घनिष्ठ सम्बन्ध वैदिक, वैष्णव, बौद्ध और जैन सम्प्रदायों से रहा है।[7] एक सांख्य-दर्शन ही ऐसा है जिसकी दृष्टि प्रारम्भ से ही विशुद्ध दार्शनिक रही है।[8]

पाणिनि-सूत्र में लिखित 'अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः'[9] सूत्र से 'आस्तिक' 'नास्तिक' और 'दैष्टिक' शब्द सिद्ध होते हैं। टीकाकारों के अनुसार इन विशुद्ध दार्शनिक शब्दों का मूल में साम्प्रदायिकता से कोई सम्बन्ध नहीं था। परन्तु साम्प्रदायिक संघर्ष में मनुस्मृति द्वारा कहा गया कथन - 'नास्तिका वेद निन्दकः'[10] के अनुसार नास्तिक शब्द बौद्ध, जैन आदि के लिए निन्दा के रूप में रूढ़ सा हो गया है और इन्हीं शब्दों ने दार्शनिक क्षेत्र में भी साम्प्रदायिकता को जन्म दे दिया।

भारतीय परम्परा को इस देश में व्याप्त विभिन्न सम्प्रदायों ने बहुत अधिक प्रभावित किया है। लगभग दो से तीन सहस्र वर्षों से इन्हीं सम्प्रदायवादियों का वर्चस्व इस देश में रहा है। इन सम्प्रदायों के मूल में धार्मिक, आर्थिक, जातिगत, समाजगत या राजनीतिक ऐसे अनेक कारण रहे हैं जिनका प्रभाव इस परम्परा के विकास पर अथवा पतन पर दिखाई देता है। इन्हीं के प्रयासों से आज देश की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ विषम हो गई हैं। सम्प्रदायों के अपने दार्शनिक विचार इस प्रकार है -

(क) कुछ सम्प्रदाय के लोग अपने सम्प्रदाय तथा परम्परा को सृष्टि के प्रारम्भ से ब्रह्मा, शिव आदि देवताओं द्वारा प्रवर्तित मानते हैं। उदाहरणार्थ मनुस्मृति में कहा गया है कि -

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति।।[11]

अर्थात् चातुर्वर्ण्य और चारों आश्रमों के साथ-साथ भूत, वर्तमान और भविष्य तथा तीनों लोकों का परिज्ञान वेद से ही होता है। अतः वेद से बाह्य जो भी स्मृतियाँ या सम्प्रदाय हैं वे तमोनिष्ठ तथा नवीन होने के कारण निष्फल और मिथ्या है।''[12]

(ख) पुराणों में नन्दों के राज्यारूढ़ होने पर वैदिक परम्परा के पोषक क्षत्रिय राजाओं का अन्त हो गया इस प्रकार का उल्लेख मिलता है।[13] धर्मशास्त्रों में चातुर्वर्ण्य के सिद्धान्त के साथ-साथ संकरण जातियों की स्थिति की भी कल्पना की गई है।[14]

(ग) भारतीय परम्परा में कुछ सम्प्रदाय 'कर्म और सन्यास अथवा प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग[15] को भी मानते हैं। कुछ का कहना है कि 'संसार और जीवन का उद्देश्य हमारा उत्तरोत्तर विकास है। उत्तरोत्तर विकास का ही नाम अमृतत्व है। यही निःश्रेयस है - 'कृधी न ऊर्ध्वा चू चरथाय जीवसे, 'जीवा ज्योतिरशीमहि', 'उदयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।'[16]

(घ) कुछ सम्प्रदाय ऋषि सम्प्रदाय तथा मुनि सम्प्रदाय के नाम से भी उत्पन्न हुए हैं जिनमें एक का झुकाव हिंसा मूलक मांसाहार[17] और तन्मूलक असहिष्णुता की ओर रहा है वहीं दूसरे का अहिंसा तथा तन्मूलक निरामिषता[18] तथा विचार सहिष्णुता अथवा अनेकान्तवाद की ओर रहा है जहाँ एक की परम्परा में वेदों को सुनने के कारण शूद्रों के कान में रांगा पिलाने का विधान है[19] वहाँ दूसरी परम्परा ने संसार भर के शुद्रातिशुद्र के भी हित की दृष्टि से बौद्ध, जैन तथा सन्त सम्प्रदाय को जन्म दिया है।

(ङ) भारतवर्ष की साम्प्रदायिक परम्परा के 'शब्दैक प्रमाणवादिता' की दृष्टि का साम्राज्य चिरकाल से रहा है। 'शब्दप्रमाणकां वयम्। यच्छब्द आह तदस्माकं प्रमाणम्।' अर्थात् हम तो केवल शब्द को प्रणाम मानने वाले हैं। जो शास्त्र में लिखा है वही प्रमाण है। वेदान्त सूत्र में भी कहा गया हैं कि तर्क की सिद्धता के लिए शब्दप्रमाण का होना आवश्यक है 'तर्काप्रतिष्ठानात्' ।[20]

(च) सिद्धान्त रूप से सत्य की रक्षा करते हुए परस्पर सहिष्णुता के आधार पर विरोध में भी अविरोध की स्थापना के लिए प्रयुक्त एकवाक्यता का समन्वय की प्रवृत्ति का विकास साम्प्रदायिक विचार-पद्धति में प्रायः मीमांसा-पद्धति-मूलक प्रवृत्ति से है। जिसका उपयोग भारत में अपने साम्प्रदायिक या सम्प्रदाय-सम्बद्ध साहित्य में पाये जाने वाले विरूद्ध या विरूद्ध रूप में प्रतीत होने वाले मतों में किसी प्रकार के

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

संकोच या विस्तार के द्वारा अविरोध, एकवाक्यता या समन्वय स्थापित करने के लिए किया गया है।

इस प्रकार भारतीय संस्कृति की समष्टि दृष्टि-मूलक तथा सद्भावनापूर्ण विचारधारा के आधार पर ही भारतीय समाज को परम्परागत संकीर्ण साम्प्रदायिक भावनाओं में ऐसी क्रान्ति लायी जा सकती है जिससे विग्रह, विघटन, साम्प्रदायिकता, विचार-संकीर्णता, पश्चाद्दर्शिता तथा अन्धरूढ़िवादी के स्थान पर क्रमशः संग्रह, संघटन, असांप्रदायिकता, विचार-औदार्य, आदर्शवादिता तथा प्रगतिवाद की भावनाओं को देश में स्थापित किया जा सकता है।

(5) भारतीय परम्परा की भावना का मूर्त-रूप

भारतीय परम्परा की समन्वयात्मक भावना को जनता में बद्धमूल करने और मूर्त-रूप देने के लिए यह आवश्यक है कि -

विभिन्न सम्प्रदायों के साहित्यों का समादर तथा अध्ययन करना

(क) विभिन्न सम्प्रदायों के उत्कृष्ट साहित्य को भारतीय संस्कृति की अविच्छिन्न परम्परा से सम्बद्ध मानकर ही पढ़ने से जहाँ एक ओर हम भारतीय परम्परा की धारा के प्रवाह और स्वरूप को जान सकते हैं। वहाँ दूसरी ओर उन सम्प्रदायों की वास्तविक पृष्ठभूमि को और भारतीय परम्परा में उनकी देन, स्थान तथा उपयोगिता को भी ठीक-ठीक समझ सकते हैं। उदाहरणार्थ बौद्ध और जैन सम्प्रदायों के प्रभाव को समझे बिना हम गृह्यसूत्रों, श्रौतसूत्रों आदि में वर्णित वैदिक धर्म के कालान्तर में होने वाले पौराणिक धर्म के रूप में महान् परिवर्तन को समझ ही नहीं सकते। भारत में इस्लाम के प्रभाव को समझें बिना महात्मा कबीर और नानक के स्वरूप को और सिख सम्प्रदाय के उत्थान को हम समझ ही नहीं सकते। इसी तरह क्रिश्चियन सम्प्रदाय के प्रभाव को समझे बिना हिन्दु सम्प्रदाय के आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज आदि नवीन आन्दोलनों को तथा रामकृष्ण-सेवाश्रम जैसी संस्था के उदय को कैसे समझा जा सकता है।

भारतीय संस्कृति की प्रगतिशील अविच्छिन्न परम्परा की दिव्य-दृष्टि से ही भारतीय परम्परा के विकास में व्यास, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, शंकर, कबीर आदि सन्त, दयानन्द और गांधी आदि अवतारी महापुरुषों की देन और महत्ता का स्पष्ट अनुभव हो सकता है।

इसके अतिरिक्त सबसे बड़ा लाभ तो सांस्कृतिक दृष्टि से यह होगा कि हम अशोभन संकीर्णता और अनुदारता के वातावरण से अपने को पृथक् करके सच्चे सुसंस्कृत भारतीय के रूप में भारत के समस्त उत्कृष्ट तत्त्व-विचारकों और उदात्त-चरित अवतारी महापुरुषों से अपना साक्षात् नाता जोड़ते हुए उनके उत्कृष्ट विचारों और

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कल्याणप्रद उपदेशों से लाभ उठा सकेंगे। इस प्रकार भारत का प्रत्येक सुशिक्षित जन भारत के लम्बे इतिहास से उसके समस्त उत्कृष्ट साहित्य से और महान् व्यक्तियों से अपने सम्बन्ध को जोड़कर अभूतपूर्व गौरव और गर्व का अनुभव कर सकता है।

यूरोप के लोग क्रिश्चिन धर्म को मानते हुए भी, उत्कृष्ट ग्रीक और लेटिन साहित्य का, घनिष्ठ सांस्कृतिक सम्बन्ध के कारण, श्रद्धा और निष्ठा के साथ अध्ययन करते हैं। विदेशी विद्वानों ने आजीवन घोर परिश्रम और तपस्या करके हमारे विभिन्न सम्प्रदायों के साहित्य का सादर अध्ययन किया है। इस पर भी हम भारतीय अपनी साम्प्रदायिक संकीर्ण मनोवृत्ति के कारण अपने ही देश के महान् व्यक्तियों के उदात्त विचारों से अपने को वंचित रखते रहे हैं। हमारे पण्डित जैन, बौद्ध और सन्त साहित्य को महत्त्व नहीं देते। सुशिक्षित मुसलमान भी गीता और उपनिषदों को नहीं पढ़ते।

अन्य सम्प्रदायों के साहित्य को पढ़ना तो दूर रहा, इधर साम्प्रदायिक संकीर्णता के कारण विभिन्न सम्प्रदायों के साहित्य की निन्दा और खण्डन में ही अधिक ध्यान दिया गया है।

(ख) विभिन्न सम्प्रदायों के महापुरुषों का समादर

साम्प्रदायिक संकीर्णता के कारण भारत की महान् विभूतियों के साथ हमने घोर अन्याय किया है, न केवल भिन्न सम्प्रदाय वालों ने ही, अपितु उनके अनुयायियों ने भी। भिन्न सम्प्रदाय वालों की उनके प्रति उपेक्षा का एक मुख्य कारण यह रहा है कि साम्प्रदायिकों ने अपने महान् व्यक्तियों को अपनी ही सीमा में 'कैद' कर रखा है। संसार में बड़े से बड़े पुरुषों का महत्त्व और ग्रन्थों की उपयोगिता प्रायः इसीलिए कम हो जाती है क्योंकि उनको उनके ही मानने वालों ने तत्तत् सम्प्रदाय की चार दीवारी के अन्दर बन्द कर दिया होता है।

इसलिए भारतीय होने के नाते हम सबका कर्त्तव्य है कि हम भारत की महान् विभूतियों को साम्प्रदायिकता के संकीर्ण वातावरण से निकाल कर, नवीन भारत के स्वच्छ जीवनप्रद खुले असाम्प्रदायिक वातावरण में बिठाकर, उन सबमें ममत्व का अनुभव करें। वास्तव में कृष्ण, बुद्ध, महावीर और गांधी जैसे महापुरुष, किसी सम्प्रदाय के तो क्या, किसी देश-विशेष के भी नहीं होते, वे तो संसार सम्पूर्ण के हैं। मानव-मात्र का कल्याण उनका ध्येय होता है उनका सन्देश सार्वभौम होता है।

(ग) साम्प्रदायिक पारिभाषिकता का दुष्प्रभाव

साम्प्रदायिक पारिभाषिकता से हमारा अभिप्राय रूढ़िवाद की उस अन्धप्रवृत्ति से है जिसके कारण मनुष्य अपने साम्प्रदायिक ग्रन्थों के वचनों को और रूढ़ियों का उनके मौलिक अभिप्राय को समझे बिना, केवल चेतनाहीन यान्त्रिक दृष्टि से, अनुसरण करना

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

चाहता है। किसी भी विधि-विधान की महत्ता उसके मौलिक अभिप्राय में रहती है, यह न समझ कर वह उसके विशुद्ध शाब्दिक अर्थ को ही महत्त्व देता है, भावार्थ को नहीं। इसीलिए मूल में एक ही अभिप्राय से प्रेरित होने पर भी, अनेक परिस्थितियों के कारण बाह्य स्वरूप में कुछ भिन्नता रखने वाले विधि-विधान का वह विरोधी बन जाता है।

उदाहरणार्थ, किसी देवता की उपासना में और उपासना-गृह बनाने में मनुष्यों की प्रवृत्ति का एक ही मौलिक अभिप्राय हो सकता है। पर अनेकानेक कारणों से इनके प्रकार में भेद होना स्वाभाविक है। विचारशील व्यक्ति के लिए प्रकार-भेद गौण और मौलिक अभिप्राय ही मुख्य होता है। साम्प्रदायिक मनोवृत्ति की अवस्था इसके प्रतिकूल ही होती है।

भारत जैसे महान् देश में जहाँ स्वभावतः अनेकानेक सम्प्रदाय है, उपर्युक्त साम्प्रदायिक पारिभाषिकता से केवल हानि ही होती है। यहाँ तो विभिन्न सम्प्रदायों की रूढ़ियों को, नैतिकता और मान वहित की परिधि के अन्दर, सहानुभूति और सहिष्णुता से समझने की विशेष आवश्यकता है।

उपर्युक्त पारिभाषिकता को छोड़ने का अभिप्राय यह भी है कि भारतीय संस्कृति के वर्णाश्रमधर्म-जैसे वैज्ञानिक विचारों का, या उपनयन, वेदारम्भ जैसे उपयोगी संस्कारों का महत्त्व हम तभी बता सकेंगे, जब हम इनके रूढ़ार्थ को छोड़कर इनके मौलिक अभिप्राय को संसार और राष्ट्र के सामने रखेंगे। दूसरे शब्दों में , हमको अपने सिद्धान्तों की मानव हित की दृष्टि से न कि अपने-अपने सम्प्रदाय की दृष्टि से उदार व्याख्या करनी होगी।

उदाहरणार्थ, वानप्रस्थाश्रम आजकल एक लुप्त-प्राय आश्रम है। वनों के न रहने से वह अपने शाब्दिक अर्थ में पुनजीर्वित भी नहीं हो सकता। पर गृहस्थाश्रम के उत्तरदायित्व के पश्चात् मनुष्य को परमार्थ जीवन व्यतीत करना चाहिए इस भावार्थ को लेकर भारतीय राष्ट्र के पुनर्निर्माण में अनेक प्रकार की सेवा हमारे नवीन युग के वानप्रस्थी कर सकते हैं। प्रत्येक सम्प्रदाय और हमारा समाज इसका स्वागत करेगा।

ग्रन्थों पर शास्त्रों की मान्यता अर्थदृष्ट्या ही होती है न कि शब्दृष्ट्या, ऐसा मान लेने पर सम्प्रदाय-भेद की तरह शास्त्र-भेद भी समष्टिदृष्टि-मूलक भारतीय संस्कृति एवं परम्परा की भावना में बाधक न हो सकेगा और भारत के विभिन्न सम्प्रदाय एक ही संस्कृति एवं परम्परा की सजीव भावना को अपना सकेंगे।

(6) उपसंहार

हमारी भारतीय परम्परा के आधार, विज्ञान-मूलक आधुनिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि है। भारतीय परम्परा को स्वाभावतः प्रगतिशील तथा समन्वयात्मक मानते हुए

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

वैदिक परम्परा से संस्कृत साहित्य के साथ बौद्ध-जैन साहित्य तथा विभिन्न सम्प्रदाय के साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन और भाषा के साथ-साथ पुरातत्त्व सम्बन्धी ऐतिहासिक तथा प्रागैतिहासिक साक्ष्य के अनुशीलन-द्वारा, समष्टि-दृष्टि से भारतीय परम्परा के आधारों का अनुसंधान किया जाना चाहिए। आज की वैज्ञानिक दृष्टि से ही हम भारतीय परम्परा के इस समन्वयात्मक तथा प्रगतिशील स्वरूप को समझ सकते हैं, जिसको हम वर्तमान देशवासियों के सामने रख सकते हैं और जिसमें हमारे देश के विभिन्न सम्प्रदायों और वर्गों की ममत्व तथा मेलजोल की भावना निहित हैं।

यह भारतीय परम्परा प्रारम्भ से ही हमेशा प्रगतिशील रही है और भविष्य में रहेगी। इसमें जीवन की जो अबाध धारा बह रही है उसके द्वारा ही यह भविष्य में देशीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय मानवता के हित के लिए आन्दोलनों का स्वागत करते हुए अपनी प्राचीन परम्परा की रक्षा करते हुए ही आगे निरन्तर प्रवाहमान है। इसके प्रवाह को वैदिक, उपनिषद्, जैन, बौद्ध, पौराणिक, सन्त सम्प्रदायों के सतत् विकास के रूप में देखा जाना चाहिए।

हमारी परम्परा असाम्प्रदायिक है, इसका अभिप्राय है कि नैतिकता तथा मानव-हित के लिए ही वह सम्प्रदायों का सम्मान करती है। इन सम्प्रदायों से पृथक् होते हुए भी पृथक नहीं है। इनका परस्पर सम्बन्ध आदर युक्त और सौहार्द्रपूर्ण है तथा यह परम्परा इन सम्प्रदायों को जन-हित में कर्त्तव्य पालन की प्रेरणा देती है। अतः हमारी चिर-परम्परा से प्राप्त इस साम्प्रदायिक सहिष्णुता का प्रभाव भारतीय समाज पर आज भी परिलक्षित होता है।

सन्दर्भ

1. छान्दोग्योपनिषद्, 8/4/1
2. प्रबन्ध प्रकाश, भाग-2, पृ. 8
3. मनुस्मृति, 2/1, सत्यार्थविवेक, पृ. 440
4. मनुस्मृति, 1/85
5. महाभारत, वनपर्व, 149/36
6. महाभारत, वनपर्व, 313/117
7. षड्दर्शन समुच्चय-राजशेखरसूरि
8. वेदान्तसूत्र शांकरभाष्य, 2/1/1
9. पाणिनि सूत्र, 4/4/60
10. मनुस्मृति, 2/11
11. मनुस्मृति, 12/89

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

12. मनुस्मृति, 12/95
13. विष्णुपुराण, 4/24/20-21; भागवत पुराण 12/1/8-9
14. मनुस्मृति, 10/8-40
15. महाभारत, शान्तिपर्व, 340/69-74
16. ऋग्वेद, 1/36/14, 7/32/26, यजुर्वेद 20/21
17. मनुस्मृति, 5/31-44; शतपथ ब्राह्मण 11/7/1/3; देवी भागवत, 1/14/42, 1/18/49
18. वाल्मीकि रामायण, 2/20/29, कादम्बी महाश्वेतावृत्तान्त
19. गौतम धर्मसूत्र, 12/4, विष्णु पुराण, 3/17/35-44
20. वेदान्तसूत्र, 2/1/11

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पौराणिक धर्म के प्रमुख लक्षण

प्रो० माधुरी यावर*

हिन्दु धर्म के प्रचार-प्रसाद में पौराणिक (pauranic) धर्म की गणना की जाती है। पौराणिक धर्म में पुराणों का अद्वितीय योगदान है। पुराण वेदों के समवर्ती हैं। वेदों में समस्त ज्ञान सूत्ररूप से है और परोक्ष पद्धति से वर्णित है।

पुराणों ने उसी ज्ञान को स्पष्ट एवं विस्तृत किया है, मत्स्य पुराण तो यहाँ तक कहता है कि शास्त्रों में ब्रह्माजी ने सर्वप्रथम पुराणों को स्मरण-उपदेश दिया। पीछे उनके मुख से वेद प्रकट हुए। कर्म और दूसरी ओर सर्वोत्तम वेद को, ये पुराण(वेद से) भारी पड़ जावेंगे। महाभारत में भी ऐसा ही साधिकार व्यक्त किया गया है। पुराण वेद से अपनी वरीयता अथवा श्रेष्ठपदत घोषित करते है। मत्स्य, पद्म, ब्रह्म, विष्णु पुराण आदि में आया है कि ब्रह्मा ने समस्त शास्त्रों के पूर्व पुराणों के विषय में सोचा और तब वेद उनके अधरों से टपके। वायु पुराण, ब्रह्म पुराण व विष्णु पुराण इनको वेदों के समान बताया गया है। कतिपय पुराण वेदों द्वारा कहे गये माने गये तो कतिपय पुराण विष्णु के अवतारों द्वारा कहे गये माने गये हैं।

पुराण शब्द का अर्थ – पुराण शब्द ऋग्वेद में एक दर्जन से भी अधिक बार आया है, वहाँ यह विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है और इसका अर्थ है प्राचीन, पुरातन या वृद्ध। निघण्टु (3.27) ने पुराण के अर्थ में 6 वैदिक शब्द दिए हैं, यथा प्रन्तम्, प्रदिव, प्रवयाः सेनमि, पूर्व्यम, अह्नाय। यास्क (निरूक्त) ने पुराण की व्युत्पत्ति की है, "पुरानवं भवति(जो पूर्वकाल में नवीन) था। ऋग्वेद में पुरातन(प्राचीन) शब्द नहीं आता।

---

* राजनीति विज्ञान विभाग, श्री अ.बि.शा.कला एवं वाणिज्य महा.वि. इन्दौर

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

''पुराण'' बीच वाले ''पुरा अण'' द्वारा ''पुरातन'' का अति प्राचीन रूप हो सकता है।

वैदिक साहित्य में पुराण शब्द इतिहास के साथ प्रयुक्त हुआ है। इतिहास के अन्तर्गत् भूतकालीन घटनाएँ वर्णित रहती है। इतिहास निश्चित ही ऐसा था। यह भी तथ्य है कि इतिहास में सत्य घटनाओं का आधिक्य होता है। पुराण शब्द की निरूक्ति अनेक पुराणों में प्रस्तुत की गई है। प्रकृति एवं पुयषात्मक जड़चेतन रूप दोनों तत्वों के परिणाम परम्परा विषयक ज्ञान की उपलब्धि में संलग्न रहने के कारण ही ये ग्रन्थ ''पुराण'' कहलाते हैं। ''वायुपुराण'' में बतलाया गया है कि पूर्व परम्परा का वर्णन करने के कारण ही ये पुराण है। महाभारत इस कथन की पुष्टि करता है।

पुराणों के लक्षण - अमरकोश ने ''इतिहास'' को ''पुरावृत्त'' (अर्थात् अतीत में जो घटित हुआ वह) एवं ''पुराण'' को ''पंचलक्षण'' माना है। निःसन्देह यह ठीक ही है कि पुराण पाँच लक्षणों से युक्त होते हैं और वे पाँच लक्षण निम्नलिखित हैं :-

1. सर्ग(जगत की सृष्टि)
2. प्रति सर्ग (सृष्टि का विस्तार, विनाश और पुनः सृष्टि)
3. वंश (देवों, सूर्य, चन्द्र एवं कुलपतियों के वंश)
4. मन्वन्तर(पृथक-पृथक मनुष्यों के समय में घटित प्रसिद्ध घटनाएँ)
5. वंशानुचरित (सूर्य, चन्द्र एवं अन्य वंशों के उत्तराधिकारियों के कार्य एवं इतिहास)

कतिपय विद्वानों ने पुराणों के निम्न दस लक्षण बताये हैं :-

1. सर्ग (सृष्टि-विस्तार)
2. विसर्ग (विशेष सृष्टि-मानस दृष्टि देवता, कारक, पुरूषादि)
3. स्थान (सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का सन्निवेश)
4. पोषण (जीवों का धर्म, उनके कार्य-सदाचारादि जिनसे उनके समाज संचालित होते है)
5. ऊति(जीवों की कर्मवासना और उनकी स्वर्ग-नरकादि गतियाँ)
6. मन्वन्तराधिपतियों के चरित, उनका वंश-विस्तार।
7. भगवान के अवतार चरित।
8. निरोध(आत्म संयम के शम-दम योगादि मार्ग)
9. मुक्ति(ज्ञानयोग, दर्शनशास्त्र)
10. आश्रय(भगवान का आश्रय-भक्ति मार्ग)

परन्तु महापुराणों व उपपुराणों में प्रथम निर्दिष्ट पाँच लक्षण ही बताये गये हैं। इन पाँच लक्षणों में ही उक्त दसों लक्षणों का अन्तर्भाव हो जाता है, ये लक्षण पुराणों में व्यापक होते हैं। इन पाँचों लक्षणों के युक्त होने पर ही पुराण पूर्व ग्रन्थ माने जाते है। इन

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

लक्षणों में सृष्टि का समस्त ज्ञान समाया हुआ है।

इसके अलावा विविध ज्ञान-विज्ञान और इतिहास के ज्ञानकोश भी हैं। पुराणों में विवृत इतिहास की भारतीय कल्पना पश्चिम जगत के राजनीतिक और घटना-वर्णन-परक इतिवृत्त से पूर्णतः अलग और स्वच्छन्द है जिनमें धार्मिक पृष्ठभूमि पर राजवंशों के उत्थान प्रसार और पतन का मार्मिक चित्रण हैं।

पुराणों का संक्षिप्त परिचय :-

पुराणों की संख्या 18 है। इनमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव देवों के अनुसार विषय का विवेचन किया गया है। पद्मपुराण में इन 18 पुराणों को निम्न तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है :-

सात्विक	**राजस**	**तामस**
(विष्णु विषयक)	(ब्रह्मा विषयक)	(शिव विषयक)
1. विष्णुपुराण	1. ब्रह्माण्डपुराण	1. शिवपुराण
2. नारदीयपुराण	2. ब्रह्मवैवर्तपुराण	2. लिंगपुराण
3. भागवतपुराण	3. मार्कण्डेयपुराण	3. स्कन्दपुराण
4. गरूड़पुराण	4. भविष्यपुराण	4. अग्निपुराण
5. पद्मपुराण	5. वामनपुराण	5. मत्स्यपुराण
6. वराहपुराण	6. ब्रह्मपुराण	6. कूर्मपुराण

परन्तु उपर्युक्त विभाजन पूर्णतः ठीक नहीं माना जा सकता, क्योंकि इनमें से कुछ पुराण तो साम्प्रदायिकता से पूर्णतः रहित है :-

1. **विष्णुपुराण** – इसमें विष्णु को अवतार रूप मान कर उसकी उपासना का वर्णन किया गया है। इसमें पुराण के पाँचों लक्षण पाये जाते हैं। आद्य शंकराचार्य ने इस पुराण से पर्याप्त उद्धरण प्रस्तुत किया है। इस पुराण को आधार मान कर श्री रामानुजाचार्य ने अपने दार्शनिक सिद्धान्तों की स्थापना की थी। इस पुराण में श्रीकृष्ण(विष्णु) व शिव में अभेद बतलाया गया है।

2. **नारदपुराण** – एशियाटिक सोसायटी द्वारा इसका प्रकाशन 38 अध्यायों में हुआ है। इसकी श्लोक संख्या 3600 है। यह एक आग्रही वैष्णव साम्प्रदायिक कृति है। वैष्णव धर्म का प्रतिपादन करने वाले इस पुराण में धार्मिक उत्सवों व पर्वो का वर्णन किया गया है। इसमें मुक्ति तथा समाधि की प्राप्ति का मार्ग ईश्वर-भक्ति को बताया गया है। इसमें 18 पुराणों की विषयगत विस्तृत अनुक्रमणिका दी गई है।

3. **भागवतपुराण** – इसका संग्रह-काल 5वीं सदी से 10वीं सदी तक माना जाता है। इसमें भगवान विष्णु के विख्यात अवतार श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन प्रस्तुत है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

इसमें 12 अध्याय तथा 18,000 श्लोक है।

4. गरूड़पुराण – इस पुराण की पूर्ण पुस्तक उपलब्ध नहीं है। बंगला विश्वकोष कारकों को जो ग्रन्थ उपलब्ध हुआ है, उसमें 7000 श्लोक कम थे। अतः वर्तमान ग्रन्थ एक खण्ड ग्रन्थ है। इसमें गणित ज्योतिष, औषधिवर्ग, निरूपण, रत्न-परीक्षा व उनके प्रकार उल्लेखित है।

5. पद्मपुराण – इसमें चार खण्ड हैं - सृष्टि खण्ड, भूमि खण्ड, पाताल खण्ड और उत्तर खण्ड। इस पुराण के दो संस्करण प्राप्त है - गौड़ीय और दक्षिणात्य। इसमें भी विष्णु भगवान की उपासना के संकेत मिलते हैं। भगवान श्रीकृष्ण की प्रिय राधा का सर्वप्रथम उल्लेख इस पुराण में ही हुआ है। इसमें शाकुन्तल उपाख्यान के साथ रघुवंशी राम की भी मिलती है। यह पुराण महाभारत पर आधारित है।

6. वराहपुराण – इसमें 218 अध्याय तथा 9654 श्लोक है। इसमें कई वैष्णव व्रतों का विधान दिया गया है। यह दृष्टव्य है कि इस पुराण में व्यास कहीं दृष्टिगोचर नहीं होते । इसमें दान व उपासनीय मूर्तियों का भी वर्णन किया गया है। श्राद्ध का महत्व बताया गया है। धर्म शास्त्रीय सामान्य विषयों पर भी चर्चा की गई है। इस पुराण में एक विचित्र बात यह है कि लोहारगल और स्तुतस्वामरी नामक तीर्थो का भी उल्लेख किया है जिनका अन्य पुराणों में नहीं है।

7. ब्रह्माण्डपुराण- यह चार पदों में विभाजित है, तथा -प्रक्रिया, अनुपंग, उपोद्‌घाट और उपसंहार। अन्त में चालीस अध्यायों में ललितोपख्यान है। कूर्म पुराण में स्पष्ट उल्लेख है कि नैमिषारण्य में प्रवृत्त ऋषियों को ब्रह्माण्ड पुराण सुनाया गया था। स्कन्दपुराण में उल्लेखत है कि प्रारंभ में एक ही पुराण था और वह पुराण ब्रह्माण्ड ही था। उसमें एक करोड़ श्लोक थे जो कालान्तर में 18 भागों में विभक्त हो गये। संभवतः इस पुराण का प्रणयन गोदावरी के उद्‌गम के पास कहीं हुआ था, क्योंकि इसमें आया है कि वह स्थान, जो सह्यपर्वत की उत्तरी चोटियों के पास है और जहाँ से गोदावरी प्रसूत होती है। उसे बड़ा रमणीय स्थान बताया है और लिखा है कि वहाँ परशुराम द्वारा प्रतिष्ठित गोवर्धन नाम की राजधानी थी।

8. मार्कण्डेयपुराण – इसके दो संस्करण है। प्रथम संस्करण के लेखक ने दूसरे संस्करण का सहारा लिया है। दोनो संस्करणों में अध्यायों के श्लोकों की संख्याओं में अन्तर पाया जाता है। पार्जिटर ने इस पुराण का अंग्रेजी में अनुवाद भी किया है, यह एक विचित्र पुराण है। प्रथम अध्याय महाभारत के संदर्भ में जैमिनि द्वारा मार्कण्डेय से पूछे गये चार प्रश्नों के साथ आरंभ होता है। यथा निर्गुण वासुदेव ने मानव रूप क्यों धारण किया?, 2 द्रौपदी पाँच पाण्डवों की पत्नि क्यों बनी? 3 बलराम ने ब्रह्म हत्या का

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रायश्चित तीर्थयात्रा से क्यों किया? 4 द्रौपदी के पाँच अविवाहित पुत्र सहायत हालत में क्यों मारे गये? मार्कण्डेय उन्हें विन्ध्याचल के बुद्धिमान पक्षियों के पास जाने की मन्त्रणा देते हैं। इस पुराण का एक अंश देवी महात्म्य था जो सप्तशती कहलाता है। इसके अलावा इस पुराण में वृत तीर्थयात्रा या शान्ति पर श्लोक नहीं है, किन्तु आश्रमों के कर्तव्यों, राजधर्म, श्राद्ध, नरक, सदाचार, योग का उल्लेख इस पुराण में प्राप्त है। इसमे कोई साम्प्रादायिक दृष्टिकोण नहीं है।

9. **भविष्यपुराण** – यह पुराण भी चार पूर्वो में विभक्त है, यथा ब्रह्मा, माध्यम, प्रतिसर्ग एवं उत्तर। केवल ब्रह्मा पर्व की तिथि प्राचीन है।

10. **वामनपुराण** – यह एक छोटा पुराण है। वैंकटेश्वर प्रेस द्वारा मुद्रित वामन पुराण में 5451 श्लोक है। इसमें मत्स्यपुराण को सर्वोत्तम पुराण स्वीकार किया है दण्ड के क्षेत्र में यह चाणक्य के अर्थशास्त्र में प्रभावित है। इसमें बताया गया है कि नरेश को राजा इसलिए कहा जाता है कि वह प्रजा का रंजन करता है।

11. **ब्रह्मपुराण** – इस पुराण में महाभारत, विष्णु, वायु एक मार्कण्डेय पुराणों के श्लोक लिए गये है। इसकी रचना 10वीं सदी से 12वीं सदी के मध्य मानी जाती है। एच. ओटो श्रेडर का मानना है कि इस पुराण में 226 से 244 के मध्य अध्याय है और उनमें सांख्या तथा योग का विवेचन हुआ है। कल्पतरू पुराण ने इसके 1500 श्लोक उदृघत किये है।

12. **शिवपुराण** – कतिपय विद्वान शिवपुराण और वायु पुराण को एक ही मानते है। परन्तु वायु पुराण से भिन्न शिवपुराण प्राप्त है। महाभारत और हरिवंश पुराण में भी इसका उल्लेख प्राप्त है। गुप्त साम्राज्य का भी इसमें उल्लेख पाया जाता है परन्तु जैन व बौद्ध धर्म का इसमें विवरण नहीं मिला है। इस पुराण की रचना 500 ई.पू. हुई मानी जाती है। इस पुराण में अध्याय 1123 तथा श्लोक 10,991 है।

13. **स्कन्दपुराण** – यह विशालतम पुराण है और इससे संबंधित समस्याएँ भी जटिल है। यह दो रूपों में प्राप्त है। एक सात खण्डों में (माहेश्वर, वैष्णव, ब्रह्म, आवन्त्य, नागर एवं प्रभास) में विभक्त है तो दूसरा छः संहिताओं में।

14. **अग्निपुराण** - इस पुराण का साहित्य शास्त्रीय विवेचन के कारण विशिष्टतत्व का है। पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वान इसे "भारतीय ज्ञान कोष" कहते है।

15. **मत्स्यपुराण**- इसमें 281 अध्याय तथा 14,062 श्लोक है। यह प्राचीन पुराणों मुख्य माना जाता है और संभवतः इसमें अन्य पुराणों की अपेक्षा अधिक स्मृति-संबंधी वर्णन है। इसमें मनुस्मृति तथा महाभारत के अनेक श्लोक आ गये है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

16. लिंगपुराण – इसमें शिव के 28 अवतारों का विस्तार से वर्णन किया गया है इसमें 11,000 श्लोक है।

17. कर्मपुराण – इस पुराण में परमात्मा एक माना गया है, किन्तु नारायण एवं ब्रह्मा या विष्णु एवं शिव के रूपों में दो और कभी तीन रूप बताये है। स्मृतिचन्द्रिका ने इसके कई श्लोक लिए है, जिनके द्वारा कोई विष्णु की पूजा या शिव की उपासना ''ॐ नमः शिवाय'' के साथ कर सकता है। इस पुराण में एक स्थल पर आया है कि पुराण की चार संहिता थी यथा-ब्राह्मी, भागवती, सौरी एवं वैष्णवी।

18. ब्रह्मवैवर्तपुराण – इसमें श्रीकृष्ण को परमेश्वर मानकर चार खण्डों में उनकी महिमा गाई गई है। श्रीकृष्ण व राधा से नारायण विराट रूप की उत्पत्ति बताई गई है। चूंकि श्रीकृष्ण ने अपने पूर्व-ब्रह्म स्वरूप को प्रकट(विवृत) कर दिया है। अतः इसका नाम ब्रह्मवैवर्त रखा गया। यह भी एक विशद् ग्रन्थ है जो चार खण्डों में प्रकाशित हुआ है, यथा-ब्रह्म, प्रकृति, गणपति और कृष्ण जन्म इसमें धर्मशास्त्र संबंधी बाते भी है।

निष्कर्ष – पुराणों के प्रणयन से वैदिक-धर्म का संस्कृत साहित्य और विस्तृत हुआ। पुराणों ने वैदिक संहिताओं का विशद् विश्लेषण ही नहीं किया वरन् संक्रमण काल में उन्होंने वैदिक धर्म की रक्षा की तथा उसके साथ उसका उन्होंने प्रसार भी किया। पुराणों के प्रणेता ऋषि-मुनियों ने अपने विचार धार्मिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रखे, अपितु समाज के अन्य पहलुओं पर भी उन्होंने मंथन किया। उन्होंने तत्काल हो रहे हिन्दु धर्म के अधः पतन के कारणों पर गूढ चिन्तन एवं मंथन किया और उनके समाधान का भी उन्होंने पूर्ण प्रयास किया। उनके विस्तृत चिन्तन ने पुराणों की विषय-वस्तु को भी विस्तृत कर दिया।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पुराणों में वैष्णव संप्रदाय की परंपरा

विकास कथले*

पुराण हमारी मृत्युंजय संस्कृति की कालजयी रचना है। पुराण हमारी संस्कृति के आधार स्तंभ है। हमारे प्राचीन शास्त्रकारों ने पुराणों को पंचम वेद की मान्यता दी है। पुराण वेदों का भी वेद है, खुद इस बारे में पुराणों में कहा है।

''इतिहास पुराणाभ्यां वेद समुपबृहयेत विंभ्यत्यल्पश्रृताद् वेदों मामयं प्रहरिष्यसि (ब्रह्माण्डपुराण -1-17)

वेदों का स्पष्टीकरण इतिहास पुराण की सहायता से करना चाहिए। अल्पज्ञानी से वेद डरते हैं। कहीं यह मुझ पर प्रहार न करें। (अर्थ का अनर्थ न करे) पुराण कितने प्राचीन हैं? इस बारे में सही कहना उचित होगा। हमारी संस्कृति जितनी प्राचीन है उतने ही पुराण प्राचीन है। पुराणों की रचना के बारे में विद्‌वानों ने मतभिन्नता है। पुराणों में इसके बारे में कहा हैं।

पुराणं सर्वशास्त्राणामं प्रथमं ब्रह्मणां स्मृतम्।
अनन्तर च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥

सृष्टीकर्ता ब्रह्माजी को सृष्टी निर्माण के समय परमात्मा के द्वारा सर्वप्रथम पुराणों का ज्ञान हुआ। बाद में उनके अंतःकरण में वेद ज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ। इस श्लोक से पता चलता है की हमारे पुराण बहुत प्राचीन है। पश्चिमी विद्वानों ने और उनका अनुकरण करने वाले भारतीय विद्वानों ने हमारे साहित्य को अर्वाचीन सिद्ध करने का प्रयास किया। पुराण हमारे यहाँ एक विद्या का भी नाम है। पुराणों के द्वारा पता

* उमरेड (नागपुर)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

चलता है। पूर्व में एक कोटी श्लोकों का त्रि-वर्ग शास्त्र का पुराण था। कालक्रम में हुए व्यासों ने उनको संक्षिप्त करके उसकी अलग-अलग संहिता बनाई। पुराण कभी 108 थे। आज हमें 18 महापुराण और कुछ उपपुराण प्राप्त है। बहुत सारे पुराण काल के गाल में नष्ट हो चुके हैं। आज जो पुराण हमें प्राप्त है। उसकी रचना महाभारत युद्धकाल में महर्षि भगवान वेदव्यासजी ने की है और उन्होंने अपने रोमहर्षन आदि शिष्य प्रशिष्यों को पढाया। उन्होंने अपने शिष्य प्रशिष्यों को पढाकर इसकी परंपरा आगे बढाई। हमें आज प्राप्त पुराणों का अंतिम संस्करण गुप्त राज्य काल में हुआ। भविष्य पुराण में इस्लाम काल में और ब्रिटिश राज्यकाल में कुछ अंश जोडा गया।

पुराणों में कुछ पुराण वैष्णव, सौर शाक्त, गणेश, शैव मत के प्रतिपादक है। इन मतों में आज समाज में शैव, गणेश, वैष्णव, शाक्त मतों का प्रभाव है। ये मत भी बहुत प्राचीन है। हम इस प्रबंध में वैष्णव मत पर बात करेंगे। ये मत कितना प्राचीन है। ये नहीं बता सकते। पुराणों के द्वारा इसके बारे में पता चलता है। अनेक राजा महाराजा तथा ऋषि-मुनि प्राचीन काल से इसके अनुयायी थे। सबसे प्राचीन शाखा पांचरात्र, शाश्वत है, इसका उल्लेख महाभारत में आता है। महाभारत के शांतिपर्व के अध्याय 334 से 351 तक नारायणीय उपख्यान में इसका उल्लेख है। इस मत के अनुसार विश्वात्मा नारायण से (भगवान विष्णु) नर, नारायण, हरी, कृष्ण यह 4 मूर्तियाँ प्रकट हुई। महर्षि नर-नारायण ने बद्रीकाश्रम में तपस्या की। उनसे जाकर देवर्षी नारदजी ने प्रश्न किया और उन्होंने सभी पांचरात्रधर्मो का निरूपण किया। इस धर्म के प्रथम अनुयायी राजा उपरिचर वसु थे। उन्होंने सर्वप्रथम पांचरात्रविधी से भगवान नारायण की पूजा की। चित्रशिखंडी नाम से प्रसिद्ध सप्तर्षियों ने वेदों का सार निकालकर पांचरात्र नाम का शास्त्र निर्माण किया है। ये सप्तर्षि, मरिची, अंगीरा, अत्री, पुलस्त्य, पुलंह, क्रतु और वशिष्ठ है। आज यह ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार ब्रह्मसंहिता, शिवसंहिता, प्रल्हादसंहिता, गौतमसंहिता, कुमारसंहिता यह संहिता प्रसिद्ध थी। वाशिष्ठ नारदीय, कापील, गौतमींय और सनत् कुमारीय ये पाँचों शांखा थी। लेकिन इनमें से आज एक भी संहिता उपलब्ध नहीं और एक भी शाखा के अनुयायी नहीं है। वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न और अनिरूद्ध इस चर्तुव्युह रूप से उपासना यह इस संप्रदाय का वैशिष्ट है।

आज भागवत संप्रदाय का विशेष प्रचलन समाज में है। पुराणों में विष्णु, गरूड, पद्म, नारद और वाराह ये पुराण वैष्णवों के विशेष उल्लेखनीय पुराण है। श्रीमत भागवत पुराण भगवान कृष्ण की वाङ्मय मूर्ति कहा जाता है। और वैष्णवों हृदय कहा जाता है। पुराणों के अनुसार भगवान विष्णु इस जगत के मूलाधार है। उनसे ही यह समस्त ब्रह्माण्ड निर्माण हुआ। वे ही 3 रूप लेकर सृष्टि की उत्पत्ति पालन और संहार

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

करते हैं। एक होकर भी वे अनेक रूपों में प्रकट हुए हैं। धर्म की जब ग्लानी होती है तो सज्जनों के लक्षण के लिए और धर्म की पुर्नस्थापना के लिए अवतार लेते है। पुराणों में भगवान विष्णु के 24 अवतारों का उल्लेख है। हर अवतार की अपनी अलग विशेषता है।

वैष्णव संप्रदाय के अनुसार मनुष्य जीवन का उद्देश्य परमात्मा प्राप्ति है। आत्मा और परमात्मा का मिलन यही मनुष्य जीवन की सफलता है। हमारी संस्कृति में मनुष्य जीवन के धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये 4 पुरूषार्थ बताए गए है। लेकिन ये पुरूषार्थ भक्ति के बिना सफल हो नहीं सकते। इसलिए इस संप्रदाय में भक्ति को प्रधानता दी गई है। भगवान साध्य है, तो भक्ति साधन है। भक्ति करने का हर मनुष्य प्राणी को अधिकार है। हर व्यक्ति अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करके भक्ति कर सकता है। भक्ति के 9 प्रकार है। इसमें से कोई भी प्रकार अपनाकर मनुष्य भक्ति द्वारा भगवान से नाता जोड सकता है। पद्मपुराण में श्रीमत् भागवत महात्म्य के संबंध में एक आख्यान आया है। इसमें भक्ति और नारदजी का संवाद है। कली के प्रभाव से भक्ति के पुत्र ज्ञान और वैराग्य वृद्ध हो गए थे। उनकी शक्ति क्षीण हो गयी थी, वे चल फिर नहीं सकते थे। अनेक उपाय करके उनको कुछ भी लाभ नहीं हुआ, अंत में महामुनी सनकादि के कथन पर नारदजी ने भागवत सप्ताह किया और ज्ञान और वैराग्य को अपनी शक्ति प्राप्त हो गयी इस आख्यान से भक्ति के प्रधानता के कारण का पता चलता है।

श्रीमत् भागवत महापुराण ग्रंथ तो वैष्णवों का हदय है। हम उसमें से वैष्णव संप्रदाय की परंपरा और कुछ वैष्णव भक्तों का इतिहास देखें। भागवत पुराण को वेदशास्त्र रूपी वृक्ष का फल बताया गया है।

सर्व वेदांत सारंम् ही श्री भागवत मिष्यते। तद्रसामृत तृप्तस्य नान्यत्र स्याद रतिः क्वचित

श्रीमद् भागवत पुराण सभी शास्त्रों का सार है। जिसने एक बार उसका स्वाद चखा, मन का सामर्थ्य बढाने वाले अन्य किसी रस को वह स्वादिष्ट कहेगा नहीं।

श्रीमद् भागवत के हर आख्यान से हमें शिक्षा प्राप्त होती है। ध्रुव के चरित्र से दृढ़ लक्ष्य की प्राप्ति के संदंर्भ में दृढ निश्चय की शिक्षा मिलती है। प्रल्हाद चरित्र से आपत्ति में भी भगवत् विश्वास दृढ़ रखने की शिक्षा मिलती है। आसक्ती के कारण मनुष्य जीवन की क्या दशा होती है। इसकी जानकारी हमें जड़भरत चरित्र से मिलती है। महाराज भरत राज्य त्याग करके तपस्या करने के लिए वन में गए और एक हरिण के बच्चे के स्नेह में फंस गए। परिणामस्वरूप उन्हें तीन जन्म देना पड़ा। इस आख्यान से यही शिक्षा से प्राप्त होती है। कि कोई भी कर्म आसक्ती रहित होकर करना चाहिए।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

महाराज रंतीदेव के चरित्र से मनुष्य सेवा ही सेवा है। यह शिक्षा मिलती है। महाराज ययाती के चरित्र से वैराग्य की शिक्षा मिलती है। सभी विषयभोग भोगने के बाद महाराज ययाति ने कहा,

न जातुः कामः कामानामुप भोगेन शाम्यति।

हविषाः कृष्ण वर्त्मेवभुय एवाभिवर्धोते

भोंगो की इच्छा उन्हें भोगने से कभी शांत नहीं होती। अपितु घी से आग की भांति और भी बढती है। इस पृथ्वी पर जितनी संपत्ति है उतनी एक मनुष्य के लिए पर्याप्त नहीं हैं। ऐसा समझकर विद्वान पुरूष मोह में नहीं पड़ते। अजामील की कथा से ये शिक्षा मिलती है, पापी से पापी मनुष्य भी यदि भगवान का नाम लेता उसका उद्धार हो सकता है। उसके जीवन मे सुधार हो सकता है। आवश्यकता है केवल निश्चय की वराह पुराण में सत्य तपाका आख्यान भी इसी प्रकार का है। भक्त चरित्र के शिवाय अवतार चरित्र भी आदर्श और शिक्षाप्रद है। अग्रतः चतुरो वेदांन पृष्ठे सशरंम धनू इद्म शस्त्रम् इद्म शास्त्रम शापादपि शरांदपि यह सूत्र परशुराम चरित्र में पूर्ण उतरा हुआ है। श्रीराम चरित्र तो आज भी भारतीय मानस पर अंकित है। श्रीकृष्ण चरित्र भी हर भारतीय हृदय में बसा है। विष्णुपुराण का ऋभू और निदाघ संवाद का आख्यान हमें अद्वैत ज्ञान का उपदेश देता है। प्राणी उनके प्रत समदर्शिता यह सूत्र भी जीवन में आचरण में लाने का उपदेश दिया गया है। इस बारे में गीता में कहा है।

विद्याविनयत संपन्ने ब्राह्मणें गविं हस्तीनी

शुनि चैव श्वपाके पंडिता समदर्शिना।।

सभी के प्रति समान बर्ताव करना चाहिए। सभी प्राणियों में परमात्मा का दर्शन करना चाहिए। शत्रु और मित्र के प्रति समान बर्ताव करना चाहिए। मनुष्य सेवा यही ईश्वरसेवा है। इस तरह सेवाभाव आचरण में लाने को कहा गया है। 'परोपकाराय पुण्यायं पापायं परपीडंनंम' इस सूत्र के अनुसार मनुष्य में सदा परोपकार मे लगे रहना चाहिए। मन से भी कभी किसी का अहित चिंतन नही करना चाहिए। वासुदेवः सर्वमं (सर्वजगत भगवान का स्वरूप है) यह इस संप्रदाय का मुख्य तत्व है। इसके अनुसार सभी के प्रति प्रेम भाव का बर्ताव करके दिन दुखियों की सेवा करना चाहिए। सदाचरण मनुष्य जीवन का एक अंग है। इस कारण स्वकष्ठ से अर्जित संपत्ति का ही मनुष्य उपभोग करे और उसमें भी कुछ हिस्सा परोपकार के लिए खर्च करे। परस्त्री और परद्रव्य की कभी मन में कामना न करे और कोई भी कर्म मन में अंहकार और आसक्ति रखकर न करे। इस प्रकार का कर्म निष्काम सेवा कहा जाता है। इस प्रकार सेवा का उत्तम आदर्श इस संप्रदाय ने प्रस्तुत किया है। स्त्री के लिए पतिव्रता धर्म पर विशेष भर दिया

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

गया है। वराहपुराण में पतिव्रता धर्म और आदर्श पतिव्रता का आख्यान आया है। सीता, तारा, मंदोदरी, अहिल्या ये पतिव्रता धर्म की आदर्श नारियाँ है, और आज भी भारतीय जीवन में प्रातः स्मरणीय है। भक्ति के बारे में सगुण और निर्गुण दोनों भी मान्य है। उसमे सगुण भक्ति पर विशेष जोर है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते है, मुझे मेरा सगुण भक्त अधिक प्रिय है। सगुण भक्ति के कारण मूर्तिपूजा का जन्म हुआ। इस प्रकार मूर्तिकला को इस संप्रदाय का योगदान रहा। मत्स्यपुराण में भगवान विष्णु की विभिन्न प्रकार की मूर्ति बनाने की विधि विस्तार से दी गई है। व्रत के माध्यम से मनुष्य जीवन मे नियमबद्धता और संयम लाने का प्रयास किया गया है। वराह पुराण में वैष्णव तीर्थ और व्रतों के बारे में विशेष जानकारी दी गई है। अपने ईष्टदेव के प्रति निष्ठायुक्त भक्ति होते हुए भी दूसरे के श्रद्धा और विश्वास की कभी अवहेलना नहीं करनी चाहिए।

आकाशात पतितम तोयंम यथा गच्छति सागरंम सर्व देंव नमस्कृत्वा केशंव प्रति गच्छति

जिस प्रकार आकाश से वर्षा के द्वारा गिरी हुआ जल अंत में समुद्र में जाकर मिलता है, उसी प्रकार किसी भी देवता को किया गया नमस्कार भगवान विष्णु प्राप्त होता है। यह वैष्णव संप्रदाय की विशेष शिक्षा है।

मध्यकाल में इस संप्रदाय की कुछ शाखा अस्तित्व में आयी। अलवार-इस संप्रदाय का उदय तमिलनाडू में हुआ। इस संप्रदाय के 12 संत हो गए। पहला संत ईसा पूर्व 4203 में हो गया। ईसा पूर्व 2814 में तोंडरादी पोड्डी और तिरूपन्न इनको विशेष स्थान प्राप्त हुआ। प्रबंधम नाम का 4000 श्लाकों का इनका काव्य विशेष प्रसिद्ध है। प्रबंधम को भगवत् गीता के समान माना जाता है। तंत्र पूजा इस संप्रदाय की विशेषता है। प्राचीन पंचरात्र पंथ के चर्तुव्युह की आराधना इस संप्रदाय का विशेष है। इसी तरह रामानुज, कबीर, बंगाल में चैतन्य महाप्रभू, गोस्वामी तुलसीदासजी ये वैष्णभक्त हो गए है। इनके भी संप्रदाय उस प्रांत में लोकप्रिय रहे हैं। तुलसीदासजी का रामचरितमानस ग्रंथ आज भी पूरे देश में आदरणीय है। सूरदासजी के पद और कबीरजी के दोहे संपूर्ण देश में आदर और श्रद्धा से गाए जाते हैं।

महाराष्ट्र में वारकरी संप्रदाय का विशेष प्रभाव रहा है। संत ज्ञानेश्वर इसके मुख्य अध्वर्यु रहे हैं। यह वैष्णव संप्रदाय का ही रूप है। परकीय काल में भी धर्मनिष्ठा जागृत रखने का कार्य इस संप्रदाय ने किया। स्थानीय भाषा में साहित्य निर्मिती यह इस संप्रदाय की विशेषता रही। महाराष्ट्र में ज्ञानेश्वर, तुकाराम, समर्थ रामदास, नामदेव, गोरा कुभांर यह वैष्णव संतो की परंपरा रही है। वारकारी संप्रदाय महाराष्ट्र में आज भी प्रसिद्ध है और लाखों की संख्या में इसके अनुयायी है। भक्ति के माध्यम से ऊँच-नीच

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

यह भेद भुलाकर सभी समाज को एक सूत्र में पिरोने का कार्य इस संप्रदाय ने किया। वैष्णव संप्रदाय आज भी लोकप्रिय है। आज भी इसके अनुयायी देशभर में है। पुराण प्रसिद्ध वेंकटाचल(तिरूपति) हरिद्वार, ऋषीकेश, अयोध्या, मथुरा, वृदांवन, जगन्नाथपूरी, बद्रीनाथ ये तीर्थक्षेत्र आज भी श्रद्धा के स्थान है। आज भी श्रद्धा से लोग इसकी यात्रा करते हैं। महाराष्ट्र में पंढरपूर की यात्रा को लाखों लोग आज भी जाते है। जन्माष्टमी, श्रीरामनवमी आदि उत्सव आज भी धूम-धाम से मनाये जाते हैं। एकादशी व्रत आज भी श्रद्धा से किया जाता है। तुलसी वृक्ष हर हिंदू घर में लगाया जाता है और श्रद्धा से पूजा जाता है। गीता और भागवत का कथन आज भी श्रद्धा से किया जाता है। भागवत के पारायण आज भी देश के कोने कोने में होते है। भागवत सप्ताह जीवन में एक बार सुनने की हर हिन्दू व्यक्ति की आज भी इच्छा रहती है। चैतन्यमहाप्रभू के भक्त भक्तिवेदांत स्वामी का ईस्कान(अंतर्राष्ट्रीय कृष्ण भावामृत संघ) आज देश विदेश में प्रसिद्ध है और उसके लाखों अनुयायी हैं। संक्षिप्त में पुराण काल से लेकर आज के काल तक वैष्णव संप्रदाय की यह परंपरा है।

संदर्भ

1. संक्षिप्त वराहपुराण, गीताप्रेस, गोरखपूर
2. श्रीमत् भागवतपुराण (हिंदी टिकासहीत) , गीताप्रेस, गोरखपूर
3. पुराणे इतिहास व संस्कृतिकोष, डॉ. श्री.द.कुलकर्णी
4. भारत शाश्वत संस्कृतीची यक्षभूमी, डॉ.श्रा.द.कुलकणी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पौराणिक शिव का उज्जैन की मुद्राओं में अंकन

डॉ० अजय जायसवाल

''नमो नमः सर्वविदे शिवाय रूद्राय शर्वाय भवाय तुभ्यम् ।
स्थूलाय सूक्ष्माय सुसूक्ष्मसूक्ष्मसूक्ष्माय सूक्ष्मार्थविदे विधात्रे ॥''

भारत के मध्य-क्षेत्र में स्थित उज्जैन वर्तमान समय में 230 अक्षांश एवं 11 कला पर स्थित है। प्राचीन-काल से ही उज्जैन या अवंति विज्ञान, संस्कृति, कला एवं धर्म का केन्द्र रहा है, वास्तव में प्राकृतिक रूप से यह भू-भाग पृथ्वी का केन्द्र माना जाता रहा है। यहाँ के समय से ही समूचे देश का समय निर्धारण किया जाता रहा है। विषुवत रेखा पर स्थित होने के कारण यह रेखा देश है। जहाँ देशांतर शून्य माना गया है।

यह ''काल-विशेष'' का क्षेत्र है महाकाल का क्षेत्र है, जहाँ सूर्य की महाक्रांति होती है।

काल या Time शब्द संग्रह से साधारणतः दिन-रात, मिनट, घंटा, युग आदि का बोध होता है, परन्तु वास्तव में यह काल को नापने की रीति है, स्वयं काल नहीं। भारतीय दर्शन के अनुसार काल एक तत्व है, द्रव्य है, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, आत्मा और मन की तरह।

''पृथिव्यावस्तेजोवायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति इत्याणि''

प्राचीन काल से वर्तमान काल के मध्य में पृथ्वी अपनी बलिंग गति के कारण विक्षेपित हुई है फलस्वरूप यह स्थान महाकाल के स्थान से थोड़ा सरक कर महिदपुर तहसील के डोंगला नामक ग्राम पर से गुजरती है जो कि 230 26' पर स्थित है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

काल एक तरफ अवस्था को इंगित करता है वहीं दूसरी तरफ ''दिक्'' को भी इंगित करता है। सूर्य की परमक्रांति की अवस्था में यहाँ पर कोई परछाई नहीं रहती अर्थात् सूर्य कोई दिशा सूचित नहीं करता। यहीं वह स्थान और समय होता है जब काल अपने दोनों रूपों अवस्था और दिक् को एक साथ इंगित करता है और यही ''महाकाल'' है। जो प्राचीन काल में महाकाल के ठीक ऊपर घटती थी और अब डोंगला ग्राम में घटती है। उस स्थान पर कर्कटेश्वर नामक सूर्यमंदिर का विचार पाणिनी संस्कृत विश्वविद्यालय उज्जैन के कुलपति डॉ. मोहन गुप्त ने सरकार एवं समाज के सम्मुख रखा है, जिसके गुम्मद में ऐसा छिद्र हो जिसके माध्यम से सूर्य की परमक्रांति की किरणें सीधे उसमें स्थापित शिवलिंग पर पड़े।

भगवान शिव ने देवताओं के प्रश्न -''आप कौन हैं? के उत्तर में दिशाओं तथा विदिशाओं (कोंण) सहित प्रकृति के हर अवस्था स्वयं को बताया। इस तरह भगवान शिव ''महाकाल'' हुए। महाकाल एवं उज्जैन का अटूट रिश्ता है। वे प्राचीनकाल से ही उज्जैन के राजा के रूप में मान्य रहे हैं। पुराणों में भगवान शिव के अनेक रूप उल्लेखित हैं जो कि प्राचीन अवंति एवं उज्जैन की मुद्राओं पर अंकित हुये हैं।

मुद्रायें हमेशा से ही शासन के मान्य दस्तावेज के रूप में रही हैं, क्योंकि इनका निर्माण और इनमें वर्णित विषय और जानकारियाँ शासन के अधीन और अधिकार में रही। मुद्रायें छोटी होती हैं धातु जैसे कड़े पदार्थ से निर्मित होने के कारण (जिस पर अत्यधिक श्रम साध्य से ही कुछ अंकित किया जा सकता है) पर प्रतीकों के माध्यम से ही अपनी अभिव्यक्ति को पूर्ण किया जा सकता है क्योंकि जब अनुभूति अत्यधिक हो और अभिव्यक्ति के लिए सीमाऐं हो तो प्रतीक ही आश्रय होते हैं। परन्तु इतना होने के बाद भी अवंति और उज्जैन के प्राचीन शासकों ने अपने राज्य की मुद्राओं पर शिव के सगुण एवं र्निगुण रूपों को बहुत सटीक तरीके से अंकित किया है।

पुराणों में शिव को दो रूपों में वर्णित किया गया है। सगुण रूप एवं निर्गुण रूप, सगुण रूप में वे महेश्वर के रूप में तथा निर्गुण रूप में वे अव्यक्त रूप में प्रतिष्ठित हैं। शिव के सगुण रूप के वे स्वरूप जो अवंति या उज्जैन की मुद्राओं पर देखे जा सकते हैं वे इस तरह हैं-

सदाशिव – श्रीलिंगमहापुराण के सत्ताईसवें अध्याय में शैलादि द्वारा सनत्कुमार को जो लिंगार्चन - विधि का ज्ञान दिया गया। उसमें शिव को पंचमुखी बतलाया गया है। यह शिव का विश्वरूप है जिसे सदाशिव के नाम से जाना जाता है। ईसा पूर्व की दूसरी-पहली शताब्दी की ताम्र मुद्रा में शिव का यही रूप अंकित है, जिसमें पंचमुखी शिव खड़े हुए हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

त्रिदेव – पुराणोल्लिखित लिंग से उद्भूत तीनों प्रधान देव ब्रह्मा(बीज), विष्णु (योनि), रूद्र(निर्बीज) जिनसे क्रमशः जगत् की उत्पत्ति, जगत की रक्षा तथा जगत का संहार होता है, शिवात्मक ही हैं क्योंकि वह निर्बीज शिव ही जगत् का बीज है अर्थात् ''मूलकारण'' कहा जाता है।

तीन शिरों से युक्त एक मानव-शरीर को प्रतीक रूप में इसी सिद्धान्त को अभिव्यक्त करते हुए उज्जैन की निम्न मुद्राओं में देखा जा सकता है।

कुछ विद्वानों ने इन्हें कार्तिकेय के रूप में उल्लेखित किया है, जो तर्क संगत नहीं है। कार्तिकेय षडानन हैं, उनका वाहन, अस्त्र-शस्त्र आदि भी मुद्राओं में कहीं नहीं है, जबकि इस वर्ग की कुछ मुद्राओं पर शिव का वाहन नंदी आदि भी चित्रित हैं, जो कि इन्हें त्रिदेव शिव ही प्रमाणित करते हैं।

महादेव – प्राचीन-काल में जहाँ सूतजी द्वारा ऋषि-मुनियों को पाद्यकल्प का वृत्तांत (जिसमें शेषशायी विष्णु के नाभि-कमल से ब्रह्मा का होना तथा विष्णु द्वारा ब्रह्मा का महादेव का परिचय देना शामिल है) सुनाते हुए महादेव को -वराह के समान दाढ़ों वाला.. .....सर्वदर्शी .....वृषध्वज दिगम्बर......कपालधारी......कमण्डलधारी......गरजते हुए तथा धर्म ज्ञान के आसन पर ब्रह्मासन में बैठे हुये वहीं सती ने शिव को महायोगी के रूप में इस तरह संबोधित किया है-

''देवदेव महादेव! करूणासागर प्रभो! दीनोद्धर महायोगिन! कृपां कुरू ममोपरि।[7] शिव के यह स्वरूप उज्जैन की ताम्र मुद्राओं पर इस तरह अंकित हैं -

शिव-सती(युग्म) – शिव-सती के विवाहोपरांत रमण करते हुए शिव गृहस्थ जीवन व्यतीत करने लगे, वे विभिन्न चेष्टाओं तथा क्रियाओं से आनंद देने व लेने लगे। वे सती का साथ ही नहीं छोड़ते थे शिव के सती के प्रति इसी भाव को प्रदर्शित करते हुए उज्जैन की मुद्राओं पर शिव-सती को युग्म के रूप में रमणीय स्थलों पर विहार करते हुए तथा हाथ पकड़े हुए अंकित किया है।

नंदीश्वर – मुनि शिलाद को उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर परमेश्वर शिव ने आशीर्वाद दिया की मैं ''नंदी'' नाम से तुम्हारे अयोनिज पुत्र के रूप में जन्म लूँगा और आप(शिलाद मुनि) जगत के पिता के भी पिता होंगे।

भारतीय दर्शन तथा अन्य साहित्य सहित पुराणों में भी नंदी-गण गणप्रमुख, साथी, वृषभ आदि के रूप में चित्रित तथा व्याख्यायित हैं। उनकी उपस्थिति स्वयं शिव की उपस्थिति मानी जाती है। उज्जैन ही नहीं अन्य भारतीय मुद्राओं पर भी शिव के साथ-साथ तथा कभी शिव के स्थान पर सिर्फ नंदी को अंकित करने की सुदीर्घ परंपरा

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

रही है।

शिव और नंदी की इसी अभिन्नता के कारण शिव को वृषध्वज भी कहा जाता है। यही परंपरा आगे चल कर शिव मंदिर में वृषध्वज की स्थापना के रूप में स्थापित हुई। जिसके प्रमाण रामपुरवा से प्राप्त अशोक-कालीन पत्थर का वृषभ-शीर्ष स्तंभ है और संभवतः लुम्बिनी से प्राप्त स्तंभ के शीर्ष पर भी वृषभ रहा होगा।

भैरव :- **पंचमों भैरवः ख्यातः सर्वदा भक्तकामदः।**
भैरवीगिरिजा तत्र सदुपासक कामदा ॥

सनत् कुमार को शिव के अवतारों को बतलाते हुए नंदीश्वर ने शिव का पाँचवा अवतार "भैरव" बतलाया है इनकी महाशक्ति भैरवीगिरजा के नाम से जानी जाती है। ये भक्तों की कामनाओं को निरंतर पूर्ण करते हैं।

महिदपुर के 'अश्विनी शोध-संस्थान में उज्जैन की एक ताम्र-मुद्रा है, जिसमें शिव के भैरव-रूप को बहुत विकराल और जीभ बाहर निकाले हुए प्रदर्शित किया गया है।

ऊँ-कार :- शिव ने ब्रह्मा एवं विष्णु को ऊँ-कार का उपदेश देते हुए ऊँ-कार को ज्ञान शिव का ज्ञान देने वाला, अंहकार नष्ट करने वाला, परम मंगलकर्ता, स्वयं शिव के मुख से उत्पन्न तथा अपनी आत्मा निरूपित किया। प्रतीक रूप में ऊँ-कार को अवंति की ताम्र-मुद्रा में अंकित किया गया है।

निर्गुण स्वरूपः- शिव के निर्गुण स्वरूप को अवंति या उज्जैन के स्थानीय चिन्ह के रूप में यहाँ की मुद्राओं पर अंकित किया गया है। इस चिन्ह को उज्जैनी चिन्ह कनिंघम ने दिया था क्योंकि उन्हें सर्वप्रथम यह मुद्राऐं उज्जैन-अवंति क्षेत्र में बहुतायत में मिली तथा उनमें यह निशान प्रमुखता से अंकित किया गया था। यह निशान कई स्वरूपों में मुद्राओं पर मिलता है। परन्तु यह अपने मुख्य रूप में चार गोलों को बीच में एक के निशान से जोड़ता है।

कुछ विद्वान अन्य स्थानों की मुद्राओं पर भी यह चिन्ह मिलने के कारण इसे खास उज्जैन का निशान नहीं मानते। परन्तु ध्यान देने योग्य बात यह है कि उज्जैन की तुलना में उन मुद्राओं पर यह अंकन इतनी प्रमुखता से अंकित नहीं हैं। कुछ विद्वान इसे चौरस्ते पर स्थित उज्जैन नगर की स्थिति का द्योतक मानते हैं। परन्तु लेखक का मानना है कि उज्जैन विशेष की भौगोलिक एवं आकाशीय घटनाक्रम को प्रदर्शित करता हुआ चिन्ह है। जिसमें चारों गोलों के मध्य में दोनों रेखाओं के कटनबिंदु पर निर्गुण स्वरूप शिव (महाकाल) को प्रदर्शित किया गया है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

निर्गुण शिव को कुछ ना बनाकर भी अभिव्यक्त किया जा सकता था, परन्तु वह जनमानस में निर्गुण की जगह कुछ नहीं का बोध कराता। इसलिए इस तरह से सूर्य तथा सूर्य के दोनों रास्तों का उदय और अस्त सहित इस तरह चित्रण किया गया। यह इस बात से भी प्रमाणित होता है कि बहुत कम प्राप्त सिक्कों पर इस चिन्ह के मध्य में वृषभ या शिव को भी अंकित किया गया है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्राचीन वैदिक एवं पौराणिक ग्रंथों में सूर्य पूजा एवं रूप का अवलोकन

डॉ० प्रशान्त गौरव*

पुराणों में सूर्य एवं सौर पूजा का विधान बड़े ही विधिवत रूप में दिया गया है। इन पुराणों में सूर्य के कई रूप के चर्चे है पर कही-कहीं उस अलग रूप को एक अन्य देव के रूप में भी दिखाया गया है। सूर्य पूजा का वास्तविक विधान वैदिक ग्रंथों में मिलता है जिसके विकास का उच्च स्तर पुराणों में प्राप्त होता है।

सूर्य पूजा का वर्णन पुराणों में खासकर विष्णुपुराण में विस्तृत रूप में मिलता है। इसमें सूर्य को विष्णु का ही अंश माना गया है।[1] ध्रुव विष्णु की प्रार्थना करते हुए सूर्य को उनके नयनों से उत्पन्न मानते हैं।[2] ज्योतिषचक्र के संबंध में कहा गया है कि शिशुमार के आधार विष्णु है। शिशुमार स्वयं ध्रुव का आश्रय है। ध्रुव सूर्य के आधार है।[3] वैष्णवी शक्ति के प्रसंग में कहा गया है कि ऋग्, यजुः तथा साम तीनों विष्णु की त्रयी शक्ति है। यह वैष्णवी शक्ति सूर्य में सदा वर्तमान रहती है।[4] विष्णु की प्रार्थना करते हुए देवगण सूर्य को वैष्णवी शक्ति का एक प्रकार मानते है।[5] अन्यत्र विष्णु की स्तुति करते हुए ब्रह्मा कहते हैं कि अंधकार को दूर करने वाले सूर्य विष्णु के ही रूप है।[6] इसी प्रकार मत्स्यपुराण में उद्यापन नामक व्रत के अवसर पर अर्चनीय सूर्य के लिए ईशान कोण में स्थापित मूर्ति को विष्णु का नाम दिया गया है।[7] अमावस्या के संबंध में ब्रह्माण्डपुराण में वर्णन आता है कि इस तिथि को सूर्य में रूद्र का अंश रहता है।[8] इस

---

* एसोसिएट प्रोफेसर (इतिहास विभाग) राजकीय स्नातकोतर महाविद्यालय, सेक्टर 46, चंडीगढ़

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रकार पुराणों में विष्णु तथा रूद्र-शिव की अपेक्षा सूर्य को गौण स्थान दिया गया है। ऋग्वेद के विवरण में भी सूर्य को इन्द्र और विष्णु द्वारा उत्पन्न माना गया है।[9]

वायुपुराण में सूर्य को अग्नि बताया है।[10] अर्थात अग्नि सूर्य का सार-भाग है।[11] ब्रह्माण्डपुराण के एक वर्णन में सूर्य और अग्नि में तादात्म्य[12] तथा अग्नि की अपेक्षा सूर्य का उत्कर्ष व्यक्त किया गया है। इसके अतिरिक्त इनसे वैदिक परम्परा में परिवर्तन की सूचना भी मिलती है। ऋग्वेद में बताया गया है कि सूर्य अग्नि का रूप है।[13] तथा सूर्य अग्नि के प्रकाश से ही प्रकाशवान् होता है।[14]

विष्णुपुराण में सूर्य की स्तुति करते हुए याज्ञवल्क्य उन्हें आदित्य के नाम से उल्लेखित करते हैं।[15] वायु और ब्रह्माण्ड पुराणों में भी आदित्य को सूर्य का ही एक रूप बताया गया है।[16] और मत्स्यपुराण भी अविमुक्त क्षेत्र में उपास्य सूर्य को आदित्य नाम देता है।[17] वैसे शुरूआती ऐतिहासिक काल में देखे तो पता चलता है कि आदित्य और सूर्य में अभिन्नता वैदिककाल में ही स्थापित हो चुकी थी, क्योंकि ऋग्वेद के एक छंद में उदयकालीन सूर्य के लिए आदित्य नाम प्रयुक्त किया गया है।[18]

लेकिन सूर्य से भिन्न भी मानने के कई कारण है। विष्णुपुराण के अनुसार चाक्षुष मन्तवन्तर के तुषित नामक देवताओं ने वैवस्वत मन्वन्तर में अदिति के गर्भ से जन्म लेने का निश्चय किया। उनका जन्म मरीचिपुत्र कश्यप और दक्ष की कन्या अदिति के संयोग से हुआ। उनकी संख्या बारह थी। वैवस्वत् मन्वन्तर में इन्हीं देवताओं को आदित्य कहा जाता है। यही वर्णन वायु, ब्रह्माण्ड और मत्स्यपुराण में भी मिलता है। चारों पुराणों में बारह आदित्यों के निम्नांकित नाम बनाए गए है।[19] विष्णुपुराण के अनुसार इनके नाम है - विष्णु, इन्द्र, अर्यमन, धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वान, सविता, मित्र, वरूण, अंशु, भग। वायुपुराण के अनुसार इनके नाम है - धाता, अर्यमन, मित्र, वरूण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान, पूषा, पर्जन्य, त्वष्टा, विष्णु। ब्रह्माण्डपुराण के अनुसार इनके नाम है - धाता, अर्यमन, मित्र, वरूण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान, पूषा, पर्जन्य, त्वष्टा, विष्णु। मत्स्यपुराण के अनुसार इनके नाम है - इन्द्र, धाता, भग, त्वष्टा, मित्र, वरूण, यम, विवस्वान, सविता, पूषा, अंशुमान, विष्णु। इन चारों पुराणों में उल्लेखित नामों में अधिकांशतः समानता है। केवल नामों के क्रम तथा मत्स्यपुराण के यम और अंशुमान दो विशिष्ट शब्दों में भिन्नता दिखाई देती है। इन बारह आदित्यों तथा सूर्य के संबंध की सूचना विष्णु और मत्स्य पुराणों से मिलती है। विष्णुपुराण के अनुसार ये आदित्यगण विष्णु की शक्ति से वृद्धि पाकर सूर्य-मण्डल में निवास करते हैं।[20] मत्स्यपुराण में कहा गया है कि आदित्यगण सूर्य के मण्डल को तेजयुक्त बनाते हैं।[21]

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ऋग्वेद[22] में सूर्य का वर्णन आदित्य से पृथक् किया गया है[23] और एक स्थान पर यह भी कहा गया है कि आदित्य सूर्य का मार्ग बनाते है। ऋग्वेद में सात आदित्य बताए गए है - मित्र, अर्यमन, भग, वण, दक्ष, अंश तथा मार्तण्ड[24] इन्हीं में से मित्र, अर्यमन, भग, वरूण तथा अंश नामक आदित्यों को पौराणिक साहित्य में भी स्थान मिला है। शतपथब्राह्मण सात आदित्य की बात करता है पर मार्तण्ड को सम्मिलित करने पर उनकी संख्या आठ हो जाती है।[25] पर अन्यत्र द्वादशादित्य का उल्लेख मिलता है[26], यद्यपि इनके नामों पर प्रकाश नहीं डाला गया है।

पुराणों में पूषा शब्द सूर्य के लिए प्रयुक्त किया गया है। जहाँ मत्स्यपुराण में मन्दारसप्तमी नामक व्रत के प्रसंग में सूर्य के लिए पूषा शब्द का प्रयोग हुआ है।[27] वही विष्णुपुराण में दैत्यों द्वारा संत्रस्त, विष्णु से करूण-कथा निवेदित करनेवाले देवों के वर्णन में सूर्य के लिए पूषा शब्द प्रयुक्त किया गया है।[28]

पुराणों के कई प्रसंग में सविता शब्द सूर्य के लिए प्रयुक्त हुआ है। वायु और ब्रह्माण्डपुराण में एक स्थल पर सविता को सूर्य के नाम के साथ ही रखा गया है।[29] विष्णुपुराण में सविता शब्द एक स्थान पर सूर्य के विशेषण के रूप में प्रयुक्त मिलता है।[30] सूर्य की स्तुति करते हुए याज्ञवल्क्य उन्हें सविता के नाम से सम्बोधित करते हैं।[31] अन्य कई जगह पर जल उत्पन्न करने वाले सूर्य को सविता की संज्ञा दी गई है।[32]

पुराणों में विवस्वान् सूर्य से अलग तथा सूर्य के लिए भी हुआ है। उदाहरणार्थ, विष्णुपुराण में गृहस्थ-विषयक सदाचार के वर्णन में सूर्य के लिए विवस्वान् शब्द प्रयुक्त किया गया है।[33] सूर्य की गति के संबंध में दक्षिणायन-स्थित सूर्य के लिए विवस्वान् का उल्लेख है।[34] वायु और ब्रह्माण्ड पुराणों में विवस्वान् शब्द सूर्य के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है।[35] मार्तण्ड शब्द की व्युत्पत्ति के संदर्भ में एक दूसरे स्थान पर सूर्य के लिए विवस्वान् का प्रयोग मिलता है।[36] इसी प्रकार सूर्य की उपासना करने वाले नृप शक्रजित(सत्राजित) सामने स्थित सूर्य के लिए दोनों पुराणों में विवस्वान् शब्द का उल्लेख प्राप्त होता है।[37]

वैदिक विचारधारा के अंतर्गत विवस्वान् का वर्णन ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर मिलता है।[38] जिसके एक छन्द में विवस्वान् का उल्लेख प्रातःकालीन सूर्य के लिए किया गया है।[39] उत्तरवैदिक काल में शतपथब्राह्मण के समय विवस्वान् और आदित्य का तादात्म्य निश्चित रूप से स्थापित हो गया था। एक जगह कहा भी गया है कि प्राणिमात्र की सृष्टि विवस्वान् आदित्य से हुई है।[40]

पुराणों एवं ऋग्वेद में अर्यमन का वर्णन आदित्यों के अन्तर्गत किया गया है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ऐसे उल्लेख भी इन पुराणों में मिलते है जिनमें अर्यमन और सूर्य में तादात्म्य स्थापित की प्रवृत्ति दिखाई देती है। उदाहरणार्थ, मत्स्यपुराण के मन्दारसप्तमी नामक सौर व्रत के प्रसंग में नैऋत कोण में अर्चनीय सूर्य के लिए अर्यमन् नाम आया है।[41] इसी प्रकार विष्णुपुराण में सविता की भाँति अर्यमन् शब्द भी सूर्य के लिए प्रयुक्त हुआ है।[42] ये पौराणिक उल्लेख वैदिक परम्परा में परिवर्तन व्यक्त करते हैं। इसका कारण यह है कि ऋग्वेद में अर्यमन् का वर्णन बहुधा मित्र एवं वरूण आदि देवताओं के साथ मिलता है।[43] यहाँ तक कि शतपथब्राह्मण में भी अर्यमन् की प्रार्थना पूषन, बृहस्पति और वाक् के साथ पृथक् देवता के रूप में की गई है।[44]

ऋग्वेद एवं मत्स्यपुराण में सौर-व्रत के प्रसंग में भग का उल्लेख सूर्य के लिए हुआ है। जिसमें वायव्य कोण में अर्चनीय सूर्य का निर्देश भग के नाम से है।[45] वैसे तो भग और सूर्य का तादात्म्य वैदिक परम्परा में परिवर्तन का सूचक है, तो भी भग की अर्चना का आविर्भाव वैदिक काल में हो चुका था। जो ऋग्वेद के एक छंद में भग से धन, अश्व, रथ आदि के लिए प्रार्थना की गइ है, से स्पष्ट होता है।[46]

ऋग्वेद और शतपथब्राह्मण में मार्तण्ड का वर्णन द्वादशादित्यों के अन्तर्गत हुआ है। पर पुराणों में मार्तण्ड और सूर्य के एकीकरण की चेष्टा प्रदर्शित होता है। वायु, ब्रह्माण्ड और मत्स्य पुराणों में कहा गया है कि सूर्य को मार्तण्ड इसलिए कहते हैं, क्योंकि इनकी उत्पत्ति मृत अण्ड से हुई है।[47] मत्स्यपुराण में एक दूसरी जगह उल्लेखित है कि उत्तरी दिशा में अर्चनीय सूर्य को मार्तण्ड कहा जाता है।[48]

विष्णुपुराण के अनुसार सूर्य का रथ ईषा, दण्ड, नेमि और चक्र से निर्मित है। इस रथ को सात घोड़े खींचते है।[49] इसी विष्णुपुराण में कहा गया है कि सूर्य के रथ में मुनि, गन्धर्व, अप्सराऐं, राक्षस, सर्प, यक्ष और बालखिल्य आदि ऋषि तथा आदित्य रहते हैं।[50] मत्स्यपुराण में भी इसका उल्लेख मिलता है।[51] वायु और ब्रह्माण्डपुराण के अनुसार सूर्य के रथ को स्वयं ब्रह्मा ने बनाया था। जिसमें देव, आदित्य, ऋषि, गन्धर्व, अप्सराएँ, सर्प एवं राक्षस रहते थे।[52] सूर्य के रथ तथा सात अश्वों का उल्लेख ऋग्वेद में भी हुआ है अर्थात पौराणिक उल्लेख निश्चय ही वैदिक परम्परा से प्रभावित है।[53]

विष्णुपुराण में कहा गया है कि देव, असुर और मनुष्यों की सम्पूर्ण जगत् सूर्य पर आश्रित है। इसका कारण यह है कि सूर्य आठ मास तक अपनी किरणों से छः रसों से विशिष्ट जल को ग्रहण करके उसे चार महीने तक भूमि पर बरसाता है। जिससे उत्पन्न अन्न से जगत का परिपोषण होता है। सूर्य चार प्रकार के जल का आदान करते हैं - नदी, समुद्र, पृथ्वी तथा प्राणियों से उत्पन्न। इन उल्लेख में भी वैदिक परम्परा का प्रभाव

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

परिलक्षित होता है क्योंकि ऋग्वेद में कहा गया है कि समस्त जगत् सूर्य पर आधारित है।[54]

विष्णुपुराण के अनुसार भगवान रवि दिन और रात्रि की व्यवस्था के कारण है।[55] अन्यत्र सूर्य का दर्शन अशुभ का निवारक माना गया है।[56] ऋग्वेद में भी वर्णित है कि सूर्य दिन और रात्रि का मापन करते हैं।[57] इस शब्दांश का अर्थ सायण ने अहोरत्र का विभाग माना है। अन्यत्र सूर्य को जीवन के दिनों की दीर्घता का विधायक बताया गया है।[58] पौराणिक परम्परा में सूर्य जगत् और जीवों के द्रष्टा भी माने गये हैं। विष्णुपुराण में सूर्य की स्तुति करते हुए याज्ञवल्क्य उन्हें भुवन को प्रकाशित करने वाले चक्षु की उपाधि देते हैं।[59] जिसका उल्लेख ऋग्वेद में भी है, जहाँ सूर्य को जगत् और जीवों का चक्षु माना गया है।[60]

सूर्य-पूजा – विष्णुपुराण में सूर्य को जलांजलि देना गृहस्थ के कर्त्तव्यों के अंतर्गत वर्णित है। उन्हें ब्रह्म के समान भास्वान्, विष्णु के समान तेज, जगत् का सविता तथा कर्मो का साक्षी बताया गया है।[61] श्राद्ध प्रबंध में सूर्य को आहुति देने का विधान मिलता है।[62] अन्य स्थानों पर उल्लेखित है कि वित्तहीन मनुष्य को सूर्य से अपनी हीनता निवेदित करते हुए पितरों को तृप्त करना चाहिए।[63] याज्ञवल्क्य के संबंध में वर्णन है कि उन्होंने यजुर्वेद को प्राप्त करने के लिए अपनी स्तुति से सूर्य को प्रसन्न किया था।[64] इसी तरह से सत्राजित की स्तुति से प्रसन्न होकर सूर्य ने उनकी अभिलाषा को पूरा किया था।[65] विष्णुपुराण में वर्णित् याज्ञवल्क्य[66] और सत्राजित[67] (पाठान्तर में शक्रजित) का रोचक प्रसंग वायु और ब्रह्माण्ड पुराण में भी मिलता है। सूर्य-पूजा की महत्ता को व्यक्त करते हुए मत्स्यपुराण में उल्लेखित है कि विप्रों ने वाराणसी में आदित्य की उपासना कर अमरत्व को प्राप्त किया है।[68] इसी प्रकार सौर-उपासना वैदिक काल में भी प्रचलित थी। ऋग्वेद के एक छन्द में सूर्य की उपासना का उद्देश्य पाप का निवारण माना गया है।[69] शतपथब्राह्मण में सूर्य की स्तुति करते हुए उनकी किरणों को पवित्रता का कारण बताया गया है।[70] मनुस्मृति के अनुसार सूर्य शरीरधारियों को शुद्ध करते हैं।[71] मालती-माधव में कल्याण के लिए सूत्रधार सूर्य की वन्दना करता है।[72] मन्दसौर के अभिलेख में सूर्य की भक्तिपूर्ण स्तुति की गई है।[73]

सौर प्रतिमा, मन्दिर एवं व्रत-विधान – वायुपुराण के अनुसार गया तीर्थ में चारों युग की स्वरूप-बोधक सूर्य की चार मूर्तियाँ सन्निहित हैं, जिनका दर्शन, स्पर्श तथा पूजन पितरों की प्रसन्नता के लिए होता है।[74] मत्स्यपुराण में सूर्य-पूजा के विषय में मन्दिर, प्रतिमा तथा व्रत का भी निरूपण किया गया है। मत्स्यपुराण के अनुसार

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पूजा-कार्य में सूर्य का पैर नहीं बनाना चाहिए।[75] यदि कोई व्यक्ति पैरों के साथ सूर्य की आकृति बनाकर पूजा करता है, तो वह पाप का भागी होता है। सौर धर्म के प्रसंग में कल्याणसप्तमी, विशोक-सप्तमी, फलसप्तमी, शर्करासप्तमी, कमलसप्तमी, मन्दारसप्तमी तथा शुभसप्तमी व्रतों का निर्देश है।[76] शुक्ल पक्ष की सप्तमी के रविवार को कल्याणसप्तमी नाम दिया गया है और बताया गया है कि इस व्रत में गाय के दूध से स्नान करना चाहिए। श्वेतवस्त्र पहनकर पूर्वाभिमुख होकर अक्षत से कमल का चित्र तथा उसके मध्य भाग में कमल-कोष बनाना चाहिए। इस विधि से सूर्य का विन्यास कर उनके विभिन्न रूपों की पूजा करनी चाहिए।[77] माघ महीने के शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि को विशोकसप्तमी कहा गया है।[78] मार्ग-शीर्ष के शुक्ल पक्ष की सप्तमी को फलसप्तमी की संज्ञा दी गई है।[79] वैशाख के शुक्ल पक्ष की सप्तमी को शर्करासप्तमी नाम दिया गया है। इस तिथि को बालू की वेदी पर केसर द्वारा निर्मित कोष के साथ कमल बनाकर सूर्य की पूजा करने का विधान मिलता है।[80] बसन्त ऋतु की शुक्ल सप्तमी कमलसप्तमी नाम से वर्णित है। इस अवसर पर तिल से पूर्ण पात्र में श्वेत कमल बनाकर सूर्य की अर्चना करने का आदेश विहित है।[81] मन्दारसप्तमी के व्रत के लिए माघ महीने के शुक्ल पक्ष की पंचमी को अल्प भोजन कर, षष्ठी को उपवास तथा (दूसरे दिन) प्रातःकाल आठ मन्दार के पुष्पों को सूवर्ण-निर्मित कराकर उसी विधि से हाथ में कमल धारण किए हुए एक सुवर्ण-पुरूष की आकृति का निर्माण कर तदुपरांत ताम्रपात्र में काले तिलों द्वारा आठ दल वाले कमल को बनाकर(उपर्युक्त) सुवर्ण-पुरूषों द्वारा सूर्य की पूजा करनी चाहिए।[82] शुभसप्तमी का अनुष्ठान क्वार के महीने किया जाता है जिसमें गाय की पूजा तथा वृषभदान किया जाता है। सांयकाल में अर्यमन् (सूर्य) की पूजा करनी चाहिए।[83] सूर्य सदा लाल कमल पर आसीन रहते हैं एवं उनके हाथ में कमल रहता है। उनकी कांति कमल के अन्तर्गत के समान होती है और वे सात घोड़े, रज्जु एवं दो भुजाओं से संपन्न होते हैं।[84]

मत्स्यपुराण भी सूर्य-मूर्ति में चरणों के न होने की तथा कमल के साथ संबंध होने की बात करता है। सूर्य के परिचिन्तन में पैर नहीं होने की धारणा वैदिक काल से ही चली आ रही थी। शतपथब्राह्मण में सूर्य को चरणविहीन बताया गया है।[85] उत्तरकालीन साक्ष्य भी इसकी पुष्टि करते हैं। वृहत्संहिता में सूर्य की प्रतिमा के सिर और वक्ष को प्रदर्शित करने का विधान प्राप्त होता है और कहा गया है कि इस प्रतिमा के उर(वक्ष) स्थल तक निचले भाग को गूढ़ रखना चाहिए।[86]

बिहार से सूर्य की दो मूर्तियाँ मिली हैं, जिनके पैर नहीं हैं। यह बहुत कुछ संभव

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

है कि सूर्य की प्रतिमाओं में जिन्हें उपानह माना जाता है, वे वस्तुतः सूर्य के अनिर्मित चरणों के प्रदर्शन की चेष्टा के अभिव्यंजक है।[87] सूर्य की अधिकांश मूर्तियों को कमल पर स्थित प्रदर्शित किया गया है[88], ताकि पैर बनाने की जरूरत नहीं पड़े। शिल्प ग्रंथों में भी इस बात का निर्देश है कि सूर्य को पद्य पर स्थित प्रदर्शित करना चाहिए।[89] वैसे सूर्य-उपासना में मूर्ति-निर्माण पारसीक प्रभाव से मुक्त नहीं है। भविष्यपुराण के अनुसार श्रीकृष्ण के पुत्र शाम्ब ने कुष्ठ रोग से मुक्त होने के लिए सूर्य की उपासना की थी। सौर मंदिर एवं प्रतिमा के संरक्षक शाकद्वीपीय पुरोहित थे। इन सूर्य-उपासकों को मग नाम दिया गया है।[90] अल्बरूनी का भी कथन है कि उसके समय में मग नामक पारसीक पुरोहित भारत में विद्यमान थे।[91] इन सूचनाओं से सूर्योपासना में विदेशी तत्व का सम्मिश्रण व्यक्त होता है।[92] इतना यहाँ स्मरणीय है कि मत्स्यपुराण के अमिश्रित उद्धरणों अथवा अन्य आलोचित पुराणों में इस बात का संकेत मात्र भी नहीं मिलता हैं।

इस प्रकार विष्णु और शिव की भाँति सूर्य से संबंधित पौराणिक विचार पर भी अनेक अंशों में वैदिक धारणा का प्रभाव है। पुराणों ने सूर्य के जिस पूजा-पद्धति, आकार एवं स्वरूप की रूपरेखा बनाया है, उसकी पृष्ठभूमि में वैदिक परम्परा का संबंध स्पष्ट दिखाई पड़ता है। अनेक देवताओं से सूर्य की एकता स्थापित करने की प्रवृत्ति, उनके रथ आदि का वर्णन, यहाँ तक कि स्वयं सूर्य-उपासना आदि वैदिक धारणा के धरातल पर स्थित होने के आधार को दिखाते हैं। इन्हीं वैदिक धारणा के धरातल पर पुराणों में कई प्रकार की प्रवृत्ति की परिपक्वता का द्योतक दिखाई पड़ता है अथवा पुराणों में कई प्रकार के परिवर्तन का पुट देकर नवीन स्वरूप प्रस्तुत करने का चेष्टा की गई है जो सूर्य एवं सौर पूजा की पद्धति का चरम उत्कर्ष की प्राप्ति होती है, जहाँ मूर्ति-पूजा से अस्पष्ट संकेत मिलते हैं।

संदर्भ

1. वैष्णवोंऽशः परः सूर्यः...... । विष्णुपुराण, 2/8/56
2. अक्ष्णोः सूर्योऽनिलः....... । वही, 1/12/64
3. आधारभूतः सवितुर्ध्रवो ध्रुवस्य शिशुमारो सोऽपि नारायणात्मकः । वही, 2/9/24
4. अंगमेषा त्रयी विष्णोर्ऋग्यजुः सामसंज्ञिता । विष्णुशक्तिरवस्थानं सदादित्ये करोति सा । वही, 2/11/11
5. शक्रार्करूद्रः.....भेदवत् । वही 3/17/7
6. अर्केन्दुरूपश्व तमो हिनस्ति । वही, 4/1/87
7. विष्णुमीशाने विन्यसेत्सदा । मत्स्यपुराण, 98/6
8. रूद्राविष्टं सर्वमिदं.... सूर्योऽसौ.... । ब्रह्माण्डपुराण, 2/10/65-66
9. उरू यज्ञाय चक्रथुरू लोकं जनयन्ता सूर्यमुषासमग्निम् । ऋग्वेद, 7/99/4

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

10. प्रोक्तः संवत्सरश्चेति सूर्यो योऽग्निर्मनीषिभिः। वायुपुराण, 31/34
11. आदित्येयस्त्वसौ सारः कालाग्निः परिवतसर....। वही, 31/29
12. आदित्येयस्त्वसौ सूर्यः कालाग्निः....। ब्रह्माण्डपुराण, 2/13/117
13. ऋग्वेद 10/88/11, मैकडॉनल वैदिक माइथोलोजी, पृ. 30-31
14. वही, 5/17/3, ग्रिफिथ, हिम्स ऑफ दि ऋग्वेद, तृ.सं.पृ.18
15. आदित्यादिभूताय.......नमो नमः। विष्णुपुराण, 3/5/24
16. आदित्यःसविता भानुःजर्विनो ब्रह्मसत्कृतः। वायुपुराण, 31/37, आदित्यः सविता भानुः जीवनो ब्रह्मसत्कृतः। ब्रह्माण्डपुराण, 2/13/125
17. आदित्योपासनां कृत्वा......। मत्स्यपुराण, 184/31
18. उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह। ऋग्वेद, 1/50/13
19. विष्णु पु. 1/15/126-131, धाताऽर्यमा च मित्रश्च वरूर्णोऽशो भगस्तथा। इन्द्रो विवस्वान्पूषा च पर्जन्यो दशमः।। ततस्त्वष्टा ततो विष्णुरजधन्योऽजघन्यजः। इत्येते द्वादशाऽऽदित्याः कश्यपस्य सुताः स्मृताः। वायु पृ. 66/66-67, ब्रह्माण्डपुराण, 3/2/67-69, मत्स्यपुराण, 6/3-5
20. सवितुर्मण्डले ब्रह्मन्विष्णुशक्त्युपवृंहिताः। विष्णुपुराण, 2/10/19
21. सूर्यमापादयन्तयेते तेजसा तेज उत्तमम्। मत्स्यपुराण, 126/25
22. उदपप्तदसौ सूर्यः पुरूविश्वानि जूर्वन। आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टोअदृष्टहा। ऋग्वेद, 1/191/9, द्रष्टव्य, मैकडॉनल, वही. पृ.30
23. सजोषसा उषसा सूर्येणाचादित्यैर्यातमश्विना। ऋग्वेद, 8/35/13
24. वही, 9/114/3, 10/72/8-9, मैकडॉनल, वही, पृ.43
25. यास्त्वेतद्देवा आदित्या.... सप्त हैव.... हाष्टमंजनयांचकार....मार्तण्डम्। शतपथब्रह्मण, 3/1/3/3
26. द्वादशादित्या सृज्यंत.....। वही, 6/1/2/8
27. पूष्णोत्युत्तरतः पूज्यमानन्दायेत्यतः परम्। मत्स्यपुराण, 79/7
28. सर्वादित्यैः समं पूषा पावकोऽयं.....। विष्णुपुराण, 1/9/63
29. आदित्यः सविता भानुः जीवनः ब्रह्मसत्कृतः। वायुपुराण, 31/37, आदित्यः सविता भानुः जीवनो ब्रह्मसत्कृतः। ब्रह्माण्डपुराण, 2/13/125
30. नमस्सवित्रे द्वाराय मुक्तेरमिततेजसे। विष्णुपुराण, 3/15/16
31. जगत्सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मसाक्षिणो। विष्णुपुराण, 3/11/40
32. सरित्समुद्रभौमास्तु तथापः भगवानादत्ते सविता। वही, 2/9/1, सापि निष्पाद्यते वृष्टिः सवित्रा मुनिसत्तम। वही, 2/9/23
33. नमो विवस्वते ब्रह्मभास्वते.....। विष्णुपुराण, 3/11/40
34. दक्षिणे त्वयने चैव विपरीतां विवस्वतः। वही, 2/8/47
35. विवस्वानदितेः पुत्रः सूर्यो वै चाक्षुषेऽन्तरे। विशाखासु समत्पन्नो ग्रहाणां प्रथमो ग्रहः। वायुपुराण, 53/104, ब्रह्माण्डपुराण, 2/24/129

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

36. तस्माद्विस्वानूमार्तण्डः पुराणज्ञैर्विभाष्यते। वायुपुराण, 84/29, ब्रह्माण्डपुराण, 3/59/30
37. वायुपुराण, 96/22, ब्रह्माण्डपुराण, 3/71/23
38. मैकडानल, वही, पृ.42
39. त्वमग्ने प्रथमो मातरिश्वन आविर्भव सुक्रतूया विवस्वते। ऋग्वेद, 1/32/3, द्रष्टव्य, ग्रिफिथ, वही, पृ.40
40. विवस्वानादित्यः तस्येमाः प्रजाः। शतपथब्राह्मण, 3/1/3/4
41. तथाऽर्यम्णे च नैऋते....। मत्स्यपुराण, 79/6
42. उत्तरः सवितुः पन्या....। उदक्पन्यानमर्यम्णः....। विष्णुपुराण, 2/8/92-94
43. मैकडानल, वही. पृ.45
44. यच्छत्वर्यमा प्रपूषा प्रवृहस्पतिः। प्रवाग्देवी ददातु नः स्वाहा। शतपथ ब्राह्मण, 5/2/2/11
45. वायव्ये तु भगं न्यस्य पुनः पुनस्यार्चयेत्। मत्स्यपुराण, 98/6
46. अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा....। ऋग्वेद, 7/42/6
47. वायुपुराण, 84/26-29, ब्रह्माण्डपुराण, 3/59/27-30, मत्स्यपुराण, 2/36
48. मार्तण्डमुत्तरे विष्णुमीशानं विन्यसेत्सदा। मत्स्यपुराण, 98/6
49. विष्णुपुराण, 2/2/2-5
50. वही, पृ. 2/10/2-22
51. मत्स्यपुराण, 126/1-25
52. वायुपुराण, 1/89-90, ब्रह्माण्डपुराण, 1/1/82-83
53. सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य। ऋग्वेद, 1/50/8
54. सूर्यस्य.... तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा। ऋग्वेद, 1/164/14
55. अहोरात्रव्यवस्यानकारणं भगवान्नविः। विष्णुपुराण, 2/8/11
56. तस्यावलोकनात्सूर्य पश्येत् मतिमान्नरः। वही, 3/18/94
57. विद्यामेषि रजस्पृशथ्वहा मिमानो अक्तुमिः। ऋग्वेद, 1/50/7
58. ....आयूंषि तारीरहानीव सूर्यो वासराणि। ऋग्वेद, 8/48/7
59. भुवनालोकचक्षुषं तं नमाम्यहम्। विष्णुपुराण, 3/5/25
60. दृशे विश्वाय सूर्य। ऋग्वेद, 1/50/1, सूराय विश्वचक्षसे। वही, 1/50/2
61. विष्णुपुराण, 3/11/39-40
62. वही, 3/15/27
63. वही, 3/14/29-30
64. वही, 3/5/14-26
65. विष्णुपुराण, 4/13/12
66. ततः स ध्यानमास्थाय सूर्यमाराधयद् द्विजः। वायुपुराण, 61/20, ततः स ध्यानमास्थाय सूर्यमाराधयद् द्विजः। ब्रह्माण्डपुराण, 2/35/23
67. तस्योपतिष्ठतः सूर्यो विवस्वानग्रतः स्थितः। वायुपुराण, 96/22, तस्योपतिष्ठतः सूर्यो विवस्वानग्रतः स्थितः। ब्रह्माण्डपुराण, 3/71/23

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

68. आदित्योपासनां कृत्वा विप्राश्चामरतां गताः। मत्स्यपुराण, 184/31
69. यदद्य सूर्य ब्रवोनागा..... । ऋग्वेद, 7/60/1
70. ......उत्पवितारो सूर्यस्य रश्मयः । शपतथ ब्राह्मण, 1/1/3/6
71. वायुः कर्मार्ककालौ च शुद्धेः कर्तॄणि देहिनाम् । मनुस्मृति, 5/105
72. कल्याणानां त्वमसि महसां भाजनं विश्वमूर्ते । मालतीमाधव, 1/3
73. पायात्स वस्सुकिरणाभरणो विवस्वान् । से.ई.पृ. 288
74. चतुर्युगस्वरूपेण चतस्त्रो रविमूर्त्तयः। दृष्टाः स्पृष्टाः पूजितास्ताः पितृणां मुक्तिदायिकाः। वायुपुराण, 108/36
75. मत्स्यपुराण, 11/31-33
76. वही, 74/2-3
77. वही, अध्याय 74
78. वही, अध्याय 75
79. वही, अध्याय 76
80. वही, अध्याय 77
81. वही, अध्याय 78
82. मत्स्यपुराण, अध्याय 79
83. वही, अध्याय 80
84. पद्मासनः पद्मकरः पद्मगर्भसमद्युतिः सप्ताश्वः सप्तरज्जुश्व द्विभुजः स्यात्सदा रविः। वही, 94/1
85. यदि ह वाऽअप्यपाद् भवत्वलमेव प्रतिक्रमणाय। शतपथब्राह्मण, 4/4/55
86. नासाललाटजंघोरू....वक्षांसि चोन्नतानि रवेः। कुर्यादुदीच्यवेषं गूढं पादादुरो यावत्। वृहतसंहिता, 57/46
87. एन.के.भट्टशाली, आइकनोग्रैफी ऑफ बुद्धिस्ट एण्ड ब्रह्मैनिकल स्कल्पचर्स इन दि ढाका म्यूजियम, पृ. 158
88. वही, पृ. 149
89. गोपीनाथ राव, वही, भाग 1, खण्ड 2, पृ. 303
90. वही, पृ. 302, आर.पी. भण्डारकर, वही, पृ. 218
91. साचो, अल्बरूनीज इंडिया, भाग 1, पृ. 21
92. आर.जी. भण्डारकर, वही, पृ. 218-219

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सत्कर्मों की अक्षमता के द्योतक-नरक पुराणों के विशेष संदर्भ में

डॉ० सरोज शुक्ला*

मनुष्य शरीर विवेक प्रधान है। यद्यपि विवेक प्राणीमात्र में विद्यमान है, तथापि सत-असत् और कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का विवेक मनुष्य शरीर में ही है। यह विवेक व्यवहार और परमार्थ में, लोक और परलोक में सब जगह काम आता है। मनुष्य को परिस्थिति रूप से जो कर्त्तव्य प्राप्त हो जाये, उसका पालन करना ही मन्ष्य का धर्म है। मानवीय धर्म है स्वार्थ और अभिमान का त्याग कर दूसरे का हित देखना और किसी को किंचितमात्र भी दुःख न देना।

भारतीय जीवन-दर्शन में सदैव कर्म प्रधान रहा है और स्वर्ग-नरक की संकल्पना भी इसी पर आधारित है। मनुष्य जब मरता है, तो उसके कर्मों के आधार पर ही उसे स्वर्ग या नरक की प्राप्ति होती है। सत्कर्मो को करने पर एवं धर्मानुसार अपने कर्मो का निष्ठा के साथ पालन करने पर जीवन उपरान्त मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त करता है तथा पाप तथा अधर्माचरण करने वाले मनुष्य को नरक की प्राप्ति होती है। पुराणों में घोषित भी है कि दुष्कर्म या पाप करने के पश्चात् व्यक्ति प्रायश्चित या राजदण्ड विहीन होने पर नरक में गिरता है। वास्तव में नरक जाति कर्म-योग्यता एवं निष्ठता की कमी तथा सत्कर्मो के फल की हानि होने का द्योतक है। विष्णु पुराणानुसार जो व्यक्ति गंभीर या अन्य पाप करने पर सम्यक् या उचित प्रायश्चित नहीं करते, वे भाँति-भाँति की नारकीय यातनाएँ भुगतते हैं। पुराणों में मृत्यु-उपरांत नरक में दण्ड देने के लिए मृत्युदेव यम एवं उनके सहायकों विशेषकर चित्रगुप्त के उल्लेख स्पष्ट रूप से मिलते हैं।

---

* 61/8, आजाद नगर, उज्जैन

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

वराहपुराण में यम और चित्रगुप्त की बातचीत में यह उल्लेखित कि चित्रगुप्त मृत लोगों के कर्म का फल घोषित कर रहे है। अग्निपुराण में यम की आज्ञा से चित्रगुप्त पापी को भयानक नरकों में गिराने की घोषणा करते है।[1]

अलग-अलग पुराणों में विभिन्न प्रकार के नरकों पर विचार प्रतिपादित किये गये है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में 86 नरककुण्डों, पदमपुराण में 140 नरकों एवं भागवत तथा विष्णुपुराण में 28 नरकों की चर्चा की गई है। स्कंदपुराण एवं मार्कण्डेयपुराण में भी विभिन्न नरकों एवं उनमें दी जाने वाली यातनाओं का उल्लेख मिलता है। विष्णुपुराण में उल्लेखित है कि नरक पृथ्वी के नीचे होता है।[2] वहीं भागवतपुराण में आया है कि नरक, पृथ्वी के नीचे तीनों लोको के दक्षिण जल के ऊपर है और बीच में लटका हुआ है। अग्निपुराणानुसार नरकों के 28 दल पृथ्वी के नीचे है और सातवें लोक पाताल के भी नीचे है।[3]

अधर्माचरण और विभिन्न नरक - संसार में मनुष्य अपने क्षणिक सुखों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के दुष्कर्म करता है और अंत में उसे इसका दण्ड भी भुगतना पड़ता है। यदि मानव दुष्कर्म करता है, तो उसे मृत्युपरांत यातना देह मिलती है और नरक में उसे कई प्रकार की यातनायें भोगनी पड़ती है। भिन्न-भिन्न बुरे कर्मो के परिणामस्वरूप उसे कई प्रकार के नरकों में दण्डित किया जाता है। जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है -

1. **रौख**[4] - झूठी गवाही देने और झूठ बोलने वाले मनुष्य रौख नामक नरक में जाते हैं। इस नरक में वह मनुष्य स्वयं भयंकर रूरू नामक सर्प से भी भयंकर जन्तु बनकर उससे बदला लेता है।

2. **लालभक्ष** - ब्राह्मण कुल में जन्मा व्यक्ति कामवश में सगोत्र स्त्री में गमन करता है उसे शुक्र नदी रूप नरक में गिरकर शुक्रपान करना पड़ता है।

3. **तामिस्त्र** - परधन, परस्त्री या परपुल का हरण करने पर उसे कालपाश से बाँधा जाकर इस नरक में ढकेला जाता है। यहाँ खाने-पीने को कुछ नहीं मिलता।

4. **वेधका** - तीर बनाने का कार्य करने वाले मनुष्य को वेधक(छेदक) नरक में जाना पड़ता है।

5. **अन्धातामिस्त्र** - जो व्यक्ति अपने शरीर, स्त्री या पुत्र और कुटुंब का भरण-पोषण दूसरों का अहित कर या उसे दुःख पहुँचाकर करता है, वह इस प्रकार के नरक में जाता है। जहाँ उसकी बुद्धि व स्मृति दोनों ही अंधकारमय हो जाती है।

6. **महारौख** - प्राणियों को पीड़ा पहुँचाकर अपने शरीर का भरण-भोषण करने वाले को यह नरक भोगना पड़ता है जहाँ रूरूगण शरीर को नोच-नोचकर खाते हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

7. **कालसूत्र** – पितर, ब्राह्मण और वेदों का द्रोही इस नरक में गिरता है। यहाँ ताँबे की दस सहस्त्र योजन विस्तीर्ण समतल भूमि, जो सदा जलती रहती है और ऊपर से सूर्य की किरणें जलाती है।

8. **असिपत्रवन** – आपत्तिकाल के बिना भी स्वेच्छा से जो वेदमार्ग छोड़कर पाखंडमत ग्रहण करता है वह इसका भोगी होता है। यहाँ व्यक्ति को तलवार की धारों वाले (असिपत्रों से) वनों से मारते है।

9. **सूकरमुख**[5] – ब्राह्मण का वध करने वाले, स्वर्ण चोर तथा मद्यपान करने वाले पापी को इस नरक में गिराते हैं। यहाँ कोल्हू ईख की तरह दबाकर व्यक्ति के अंग-भंग खंडित होते हैं।

10. **कृमिभोजन**[6] – पितृ, ब्राह्मण एवं देवों की निंदा करने वाला इस प्रकार के नरक में गिरता है। जहाँ उसका भोजन कृमि होते है और वह स्वयं कृमियों का भोजन होता है।

11. **सन्दंश** – चोरी करनेवाला या बलपूर्वक ब्राह्मण का स्वर्ण छीनने वाला अथवा और किसी का स्वर्ण हरण करता है, वह इस नरक में लाया जाता है। अग्निपिण्ड तथा सन्देश द्वारा शरीर क्षत-विक्षत किया जाता है।

12. **तत्पसूर्मि** – जो पुरूष या स्त्री अगम्यागमन करते हैं, वे इस नरक में जलती हुई प्रतिमा से लिपटाये जाते हैं।

13. **वज्रकण्टक शाल्मली** – मनुष्येतर योनियों में जो सहवास करते हैं, उसे इस नरक में वज्रतुलय काँटोवाली शाल्मली पर यमदूतों द्वारा चढ़ाकर घसीटा जाता है। सेमल की रूई के समान काँटों से व्यक्ति को छेदा जाता है।

14. **वैतरणी** – जो शासक अथवा शासन पुरूष धर्म को दूषित करता है वह इस नदी में गिरता है। यह नदी वास्तव में सभी नरकों को घेरे हुए है। चातक को विष्ठा, मूत्र, पीब, रूधिर, केश, नख आदि से परिपूर्ण इस नदी में बहना पडता है, जहाँ हिंसक जल जन्तु भी रहते हैं।

15. **पूयोद** – शूद्रा के पति होकर व्यक्ति आचार और नियम से पतित होते हैं, वे पीब, विष्ठा, श्लेष्मा और लार से भरे पूयोद नामक नरकाम समुद्र में गिरकर वीभत्स पदार्थो का भक्षण करते है।

16. **विशसन** – तलवार, भाला तथा अन्य नुकीले शस्त्र बनाने वालो को विशसन नरक में जाना पड़ता है। ये शस्त्र पशुहिंसा के काम आते हैं।

17. **प्राणरोध** – जो ब्राह्मण कुत्ते एवं गधे पालते हैं और उनका शिकार करते हैं वे इस नरक में यमदूतों के शरसन्धान के लक्ष्य बनते हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

18. **कुम्भपाक** – सजीव पशु का माँस पकाकर खाने वाला, राजदूतों का वध करने वाला चातक इस नरक में तेल के खौलते हुए कड़ाहे में सीझता है। इसे 'सम्प्रतापन' भी कहते हैं।

19. **सारमेदापन** – दस्युवृत्ति, विषपान, गाँव एवं काफिले लुटने वाले राजा या राजसैनिक इस नरक में गिरकर सात सौ बीस कुत्तों की वज्रकराल दाढ़ों से चबाये जाते हैं।

20. **अवीचिमान** – झूठे गवाही देनेवाला, क्रयविक्रय में कम तौलने वाला तथा दान देते समय मिथ्या बोलने वाला व्यक्ति इस नरक में गिरता है। यमदूत व्यक्ति को सौ योजन ऊँचे पर्वत से सिर नीचे तथा पैर ऊपरकर गिराते हैं।

21. **अयःपान** – जो द्विज, द्विजपत्नी या व्रती जाने अनजाने मद्यपान करते है। उन्हें इस नरक में यमदूत छाती पर पैर रखकर पिघला हुआ शीशा पिलाते है।

22. **क्षारकर्दम** – पापी या अधर्मी व्यक्ति अपने घमंड में सदाचारी, तपी, विद्यावान तथा आश्रम में श्रेष्ठ पुरूष को आदर नहीं करता वह क्षारकर्दम में यातना भोगता है, जहाँ उसका सिर नीचे हो जाता है।

23. **रक्षोगणभोजन** – जो लोग नरबलि देते है तथा स्त्रियाँ जो मनुष्यों एवं पशुओं का माँस खाती है, वह इस नरक मे उन्हीं मारे हुए राक्षस रूपी पशुओं एवं पुरूषों द्वारा खंग से काटे जाते है और उनका भोजन बनते है।

24. **दन्दशूक** – उग्रस्वभाव वाले व्यक्ति मरने पर दंदशूक नरक में जाते है जहाँ सप्तमुख सर्प उन्हें चूहों की तरह निगल जाते है।

25. **अवरनिरोध** – निरोह या निर्दोष, प्राणियों को अन्धे कुएँ या गुफा में बंद करने वाले दुष्ट इस नरक में बंद और अंधे स्थानों में कैद होते है। जहाँ विषमय धुएँ से उनका दम घुटता रहता है।

26. **पर्यावर्तन** – अतिथि-अभ्यागत के आने पर क्रोध करने वाले तथा आँखों से अंगार बरसाने वाले इस नरक में गिरते हैं, जहाँ वज्रचक्षु कंकादि पक्षियों द्वारा निकाले जाते है।

27. **सूचीमुख** – जो धन को श्रेष्ठ समझता है एवं सदैव उसी की रक्षा में लगा रहने वाला मरने पर सूचीमुख नरक में जाता है, जहाँ उसे सुइयों से छेदा जाता और सिया जाता है।

28. **लौहदारक** – जहाँ पापी के अंगों को लोहे से काटा जाता है।[7]

इन नरकों के अतिरिक्त और भी कई नरकों का उल्लेख भिन्न-भिन्न पुराणों में भिन्न-भिन्न नाम से मिलता है। सत्य यह है कि इस लोक में दुष्कर्म, पाप तथा अधर्म का

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

आचरण करने पर व्यक्ति बच भी सकता है, परन्तु मृत्यु उपरांत यमलोक में उसे अपने कर्मो का फल भुगतना ही पड़ता है। जो लोग धर्म के विपरीत आचरण करते है, नरक के भोगी होते है। नरक का स्थान है जहाँ व्यक्ति केवल कष्ट एवं दुःख पाता है। अतः हमें सत्कर्म करना चाहिए, क्योंकि सत्कर्मों का फल हमें स्वर्ग के रूप में मिलता है। ब्रह्मपुराण, मत्स्यपुराण, गरूडपुराण आदि में उन कर्मो का उल्लेख किया है, जिनसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है। केवल सत्कर्म से ही जन्म-मरण से मुक्ति प्राप्त होती है।

सन्दर्भ

1. काणे वामन पांडुरंगः धर्मशास्त्र का इतिहास, तृतीय भाग, पृ. 1100
2. विष्णु पुराण 2/6/170
3. अग्निपुराण 371/13-14
4. विष्णु पुराण 2/6/170
5. विष्णु पुराण 2/6/171
6. विष्णु पुराण 2/6/171
7. काणे वामन पांडुरंगः उपरोक्त 1102
8. कल्याणः सन् 1996 धर्मशास्त्रांक, पृ. 388-394

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सामाजिक समन्वय में वैष्णव धर्म का महत्व

डॉ. सुधा सोनी*

वैष्णव पंथ हिन्दू धार्मिक समाज का एक प्रमुख अंग है और किसी न किसी रूप में वह आज भारतवर्ष के प्रायः प्रत्येक भाग में जीवित और प्रचलित है, सिद्धांतों की दृष्टि से वह विशिष्ट धार्मिक विचारों की एक प्राचीन परम्परा है।

वैष्णव पंथ की एक प्रमुख विशेषता इस बात में पाई जाती है कि अपने इष्टदेव की दया एवं प्रसाद का अधिकारी इसने प्राणी मात्र को एक समान माना है और सुलभ साधनों द्वारा अग्रषित होने का अवसर दिया है। इसके मूल सिद्धांतों में बड़ी व्यापकता है किन्तु इस धर्म का श्रृंखलाबद्ध इतिहास आज तक नहीं लिखा जा सका इसके मूल विकास की रूपरेखा कतिपय फुटकर प्रसंगों तथा अवतरण प्रकरणों के आधार पर अभी तक निर्मित होती आई है।[1] वैदिककालीन इतिहास से पता चलता है कि जिस सिलाधार पर इस धर्म की मूल भित्ति खड़ी है उसका अस्तित्व कम से कम संहिताओं की रचना के समय तक नहीं था वह काल वास्तव में कर्मकाण्ड का युग था। जबकि आर्य लोक प्राकृतिक वस्तु व घटना में किसी देवता की कल्पना कर लेते थे और उसे प्रसन्न रखने की चेष्टा में यज्ञ आदि कर्मों का अनुष्ठान करते रहते थे। उनका उद्देश्य ऐहिक सुखों की प्राप्ति तक सीमित था और उनका ध्यान अन्तःकरण की साधन की अपेक्षा बाह्य विधान का अनुसरण करने की ओर आकृष्ट रहा करता था। जिसमें श्रद्धा का महत्वपूर्ण स्थान था। आगे चलकर यही श्रद्धा मूल भक्ति और बहुदेववाद भी एक देववाद में परिणित होने लगा। उदाहरण के लिये अब इस प्रकार कहा जाने लगा "हे अग्नि देव तुम्ही वरूण

---

* प्राध्यापक (इतिहास), शासकीय कन्या महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

हो, तुम्ही इन्द्र भी हो और तुम्ही अरेमा होकर सदा सभी कार्य करते हो'' इस प्रकार की विचारधारा के अनुसार अखिल विश्व की मौलिक एकता प्रतिपादित हुई और वह सत्ता क्रमशः परमात्म हो गयी।[2]

आगे चलकर वेदों के क्रमशः अरण्यक, उपनिषद नामक विभिन्न भागों की रचना हुई और वैदिक धर्म के एक सुव्यवस्थित साहित्य का सूत्रपात हुआ। इन रचनाओं के आधार पर क्रमशः वैदिक कृत्यों की विधि परम्परा स्थिर की जाने लगी मूल दार्शनिक रहस्यों का अनुसंधान आरम्भ हुआ तथा गूढ़ रहस्यों का स्पष्टीकरण होने लगा। इस प्रकार एक देव अथवा परमात्मा तत्व के ही समान जीवात्मा तथा व्यक्ति प्रकृति की भावना का उदय हुआ लगभग इसी काल में हुआ। जीवात्मा के कर्म तथा जन्मांतर की कल्पना के आधार पर आर्यो की कर्म बंधन के अनवरत चक्कर से आत्मा को मुक्त करने के लिये अधिक से अधिक महत्वपूर्ण साधन सोचे गये जिसे हम वैदिक उपासना वाद्‌यान योग कह सकते हैं। वैदिक उपासना श्रद्धा एवं भक्ति का ही एक विकसित स्वरूप है।

भक्ति की वैष्णवानुमोदित भावना का आविर्भाव, आर्यों के आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचारों में पीछे अधिक गंभीरता आने पर हुआ और तभी वह प्रारंभिक श्रद्धा व उपासना से विकसित होती हुई क्रमशः उपास्य भगवान के ऐश्वर्य व मूलतत्व में भाग लेना (भज्=भाग लेना, बांटना आदि) व्यक्त करने वाले अधिक व्यापक भाव में परिणत हुई।[3] इसी प्रकार उस उपास्य देव के व्यक्तित्व की कल्पना भी बहुत काल के अनंतर ही की जा सकी। संहिताकाल में विष्णु सर्वप्रथम एक साधारण देवता के रूप में ही दिखाई पड़ते हैं।''ऋग्वेद''[4] के कई स्थलों पर वे एक आदित्य मात्र समझे जाते हैं और दिनभर की यात्रा को केवल तीन पगों में ही पूरी कर देने के कारण आर्य लोग उन्हें महत्व देते तथा उनका यशोगान करते जान पड़ते हैं। विष्णु के अनेक नाम प्राप्त होते हैं। कहीं कहीं रीतस्यगर्भम् आदि के प्रसंगों में यज्ञ के बीज रूप देवता अथवा ब्राह्मणों की रचना के समय तक 'यज्ञोह वई विष्णु' आदि द्वारा स्वयं यज्ञ के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है।[5]

ब्राह्मणों की रचना के समय तक विष्णु सबसे बड़े समझे जाने लगे और अग्नि देवता की प्रतिष्ठा भी उनसे कम की जाने लगी। अनुमान किया जाता है कि देवताओं के राजा इन्द्र, विष्णु की प्रतियोगिता में नीचा देखते जान पड़े और देवताओं का पद इन्द्र के हाथों से निकलकर विष्णु के हाथों में पहुँच गया। इन्द्र सूक्त के ही समान विष्णु सूक्त की रचना भी कर दी गई। ''विष्णु के अनेक नाम हरि, केशव, वासुदेव, वृष्णीपति, वृषण, ऋषभ, बैकुंठ, वृहच्छवस् जैसे नामादि पहले इंद्र के ही लिये प्रयुक्त होते थे अथवा इन्द्र संबंधी किसी वस्तु को सूचित करते थे और वे धीरे-धीरे विष्णु के कई नामों एवं

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

उपाधियों के आधार बन गये।"[6] व्याकरण के अनुसार 'विष्णु' शब्द 'विष्णु' धातु से बनता है, जिसका अर्थ है- व्यापक होना। "तेवेष्टि व्याप्नोति इति विष्णुः"- जो सबमें व्यापक हो वह विष्णु है। विष्णु पद से ही वैष्णव पद बनता है।[7] विष्णु के कई अवतार वेद, उपनिषद, ब्राह्मण, आरण्यक, स्मृति, पुराण, रामायण, महाभारत एवं गीता आदि ग्रंथों में बतलाये गये हैं कई आचार्यो ने इन पर भाष्य रचे हैं। इनके आधार पर जिस दर्शन का विकास हुआ वही "वैष्णव दर्शन' है। इन साईक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड इथिक्स में वैष्णव दर्शन का विस्तृत वर्णन मिलता है।[8]

वैष्णव पंथ का मूल वेद है। विष्णु के परमपद का संधान ही 'वैष्णव पंथ' है। वैष्णवों ने प्रधान रूपों में चार महान सदगुणों की परम्परा स्वीकार है - श्री, ब्रह्मा, रूद्र और सनकादि। इन्हीं के नामों पर चार वैष्णव सम्प्रदाय आरंभ हुये।

रामानुज रीः स्वीच के मधवाचार्य चतुर्मुखः।

श्री विष्णुस्वामिनं रूद्रो निम्बादित्यं चतुस्सनः॥[9]

सातवत्, भागवत व एकांतिक धर्म का एक अंतिम विकसित रूप पांचरात्रधर्म था जो ईसा के पूर्व लगभग तीसरी शताब्दी से प्रचलित हुआ था[10] और जिसमें भगवान की भक्ति का समर्थन अनेक तंत्रों व संहिताओं के आधार पर भी किया गया था। किन्तु वैष्णव पंथ के रूप में वह क्यों और किस प्रकार परिणत हुआ यह बतलाना बहुत कठिन है। सास्वत धर्म वस्तुतः वैदिक कर्मकाण्ड युग की कतिपय रूढ़ियों का सुधार करने के उद्देश्य से ही आरंभ हुआ था। उसने यज्ञादि अनुष्ठानों में बहुधा की जाने वाली हिंसा का अपने अहिंसा संबंधी सिद्धांतों द्वारा विरोध किया और ध्यान योग द्वारा केवल आत्मचिंतन मात्र में निरत रहने वाले निवृत्ति मार्गियों को कर्तव्य कर्म के फलाशा त्याग की शिक्षा देकर कर्मचारी बताया। इसका भक्ति मार्ग भी पहले समय की श्रद्धा एवं उपासना का एक विकसित रूप था। किन्तु 'पांचरात्रधर्म'[11] के रूप में इसने अनेक नवीन बातों को भी अपनाया और कुछ काल के लिये एक विशिष्ट स्थान ग्रहण किया। देश में इन्हीं दिनों कतिपय अन्य सुधारक सम्प्रदायों का भी प्रचार होने लगा था। जिनमें से जैन एवं बौद्ध धर्म प्रधान थे। ये दोनों धर्म निरीश्वरवादी थे और सनातन वैदिक धर्म तथा उसके उक्त सुधरे हुये रूपों पर भी उनकी प्रतिक्रिया का होना स्वाभाविक था। इन दोनों की प्रतियोगिता अथवा इनका सामना करने के उद्देश्य से ऐसे सभी दलों का संगठन आरंभ हुआ जाना पड़ता है कि इस प्रकार के प्रयत्नों का ही परिणाम था कि सस्तवत धर्म अन्य कई विशिष्ट धार्मिक विचारों के साथ समन्वित होकर वैष्णव धर्म बन गया।[12]

श्रीमद्भागवतगीता के कर्मयोग में जिस ज्ञान कर्म के समुचच्य का संकेत है वह मनुष्य को अपने कार्यपालन तथा चित्त की शुद्धि के कर्तव्य को निर्धारित करता है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

डॉ. भण्डारकर का कहना है कि ईसा के पूर्व पहली सदी में गोपाल कृष्ण की चर्चा नहीं पाई जाती, इसके बाद सामग्रियाँ कृष्ण की कथाओं से भरी पड़ी है। इस बीच कोई घटना अवश्य हुई होगी।[13] डॉ. भण्डारकर अभीर जाति का उल्लेख करते हैं जो पश्चिभ के देशों से घूमते हुये मथुरा के आसपास आकर बस गई जिसका उद्देश्य गाय चराना था। जिसका आराध्य देव एक बालक था ईसा की दूसरी शदी में वासुदेव कृष्ण को सम्मिलित कर लिया गया। 'ऋग्वेद' में विष्णु को 'गोपा' कहा गया है उसके साथ उत्तम सींग वाली गायों का रहना भी बतलाया गया है।

विष्णुर्गोपा अदाम्यः, ऋग्वेद 1/22/1814

यत्र गावो यूरिश्रृंगा अयासः। वही

इसी प्रकार बौधायन सूत्र में 'दामोदर' 'गोविन्द' कहा गया है।

नवीन वैष्णव धर्म का संघटन भंडारकर के अनुसार चार विचारधाराओं का परिणाम था पहले के विष्णु, दूसरे के नारायण, तीसरे वासुदेव, चौथे अमीर देवता बाल गोपाल हुये।

वैष्णव शब्द साम्प्रदायिक दृष्टि से महाभारत के अहारदेव अर्थात् अंतिम पर्व में प्रस्तुत हुआ।

महाभारत के युद्ध अथवा महाभारत ग्रंथ के प्रामाणिक प्राचीन ग्रंथों की रचना के समय वैष्णव पंथ का वही रूप वर्तमान था। जिसे सास्वत् या भागवत धर्म कहा जाता है।

वैष्णव पंथ का यह संगठन भक्ति योग अथवा भक्ति भावना से विकसित होकर अधिक अधिक व्यापक रूप ग्रहण भक्ति भावना श्रद्धा से प्रारम्भ होकर परमात्मा के विविध भावनाओं द्वारा व्यक्त किये जाते हुये सबके समन्वयात्मक रूप में आ गया।

चौथी शताब्दी तक वैष्णव पंथ की दशा का प्रायः अन्धकारपूर्ण युग था। इस काल में मथुरा में शक कृष्णों का अधिपत्य हो गया था और शैव और बौद्ध पंथ के अनुयायी थे फिर भी नासिक शिलालेख में कुछ प्रकाश अवश्य पड़ता है।[16]

गुप्तकाल के प्रारम्भ होते ही यह पंथ पंजाब, राजस्थान मध्य और पश्चिमी भारत मगध में फैल गया गुप्त वंश के प्रसिद्ध महाराजा चन्द्रगुप्त द्वितीय कुमार गुप्त स्कन्ध गुप्त ने राजधर्म ईस्वी सन्(400 से 464) के रूप में अपना लिया और मुद्राओं में परम भागवत किया।

इस समय अवतारों की पूजा की जाने लगी तथा नारायण के साथ लक्ष्मी की पूजा भी की जाने लगी।[17] विष्णु पुराण के अनुसार इन्द्रदेव ने लक्ष्मी को दुर्वासा के साथ के कारण खो दिया और समुद्र मंथन के उपरांत जब वह फिर प्रकट हुई तो उन पर विष्णु

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ने अधिकार कर लिया। श्री माँ देवता दोनों किसी न किसी रूप में करते आ रहे थे, गुप्तकाल में जब स्त्रियों के अधिकार का प्रबल, आंदोलन उठा तो उनकी प्रतिष्ठा और बढ़ गई।[18]

वैष्णवों ने प्रकृति पुरूष लक्ष्मी नारायण को अपना लिया। गुप्त साम्राज्य के ध्वंश होते ही उत्तरीय भारत वैष्णव धर्म का प्रभाव क्रमशः घटने लगा।

संदर्भ

1. परशुराम चतुर्वेदी - वैष्णव धर्म, विवेक प्रकाशन इलाहाबाद, पृ.9
2. इन्द्र मित्रं वरूणमग्नि माहुरयों दित्यः स सुपणो गरूत्मान।
   एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वान मातुः।
   ऋग्वेद संहिता - सायठा भाष्य सहित वैदिक संशोधन मण्डल पूना पृ.1/164/43
3. हरिभाऊ उपाध्याय - भागवत धर्म
4. ऋग्वेद संहिता - हिन्दी भाष्य स्वामी दयानन्द संस्थान दिल्ली, 1973 पृ.
5. ऋग्वेद संहिता - सामण भाष्य सहित वैदिक संशोधन मण्डल पूना 6/49/13
6. त्रीणि प दानि चकमें विष्णुर्गोपा अदाम्यः, ऋग्वेद 1/22/18
7. दुर्गा शंकर केवलराम शास्त्री, वैष्णव धर्मनो, संक्षिप्त इतिहास बम्बई, 1939
8. आर.जी. भंडारकर, वैष्णविज्म शैविश्म एण्ड माइनर रेलिजस सिस्टम
9. राकेश सोनी, वैष्णव धर्म एवं दर्शन पृ.11 वैभव प्रकाशन रायपुर छत्तीसगढ़
10. अष्टादश पुणानां श्रवणाद्यत्फलं भतेत्।
    तत्फलं समवाप्नोति वैष्णवों नात्र संशयः। महाभारत 18/6297
11. परशुराम चतुर्वेदी, वैष्णव धर्म, पृ.39
12. एस.सी. रामचौधरी, पृ.98/99 अर्ली हिस्ट्री ऑफ दि वैष्णव सेक्ट कलकत्ता 1920
13. आर.जी. भंडारकर - 105
14. विष्णुर्गोपा अदाभ्यः अयासः। वही
15. आर.जी.भंडारकर
16. रामचौधरी,104
17. गोस्वामी वी.के., पृ.104
18. भगिनी निवेदिता फुट फाल्स इण्डियन हिस्ट्री, पृ.206

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

शिवपुराण में वर्णित ओंकारेश्वर तीर्थ की महत्ता

रूचिका वर्मा*

भारत देश अध्यात्मिक साधनाओं की भूमि रहा है। अतः इसे कर्मभूमि कहा जाता है। यह देवताओं के अवतारों का देश माना जाता है। शिव यहाँ सर्वश्रेष्ठ योगी के रूप में स्वीकृति है। क्योंकि जहाँ पुराणों में अन्य सब देवताओं का चरित्र-चित्रण करते हुए उनको स्वार्थ के वशीभूत अथवा वैभव तथा अधिकार का अभिलाषी दिखलाया गया है, वहीं एक शिवजी ही ऐसे देवता बतलाए गये हैं, जो सम्पत्ति और वैभव के बजाय त्याग का वरण करते हैं। वे हिन्दू धर्म के सर्वशक्तिमान देव हैं, उन्हीं के इशारे पर संसार में सृजन एवं प्रलय का दृश्य उपस्थित होता है और उनका तीसरा नेत्र बड़ी से बड़ी शक्ति को राख करने की क्षमता रखता है।

सारस्वत-सिंधु घाटी सभ्यता के प्रारंभ से ही शिवलिंगों के अवशेषों के प्रमाण मिलते हैं। शिवलिंग भगवान शंकर के प्रत्यक्ष स्वयंभू रूप है। इसे भगवान शिव का प्रतीक माना जाता है। भारत में जिन-जिन स्थानों पर शिव को प्रतीक माना जाता है, वहाँ पर शिव ज्योति के रूप में स्वयं प्रकट हुए और वे ज्योतिर्लिंग के रूप में प्रसिद्ध हुए है। शिव सर्वाधिक प्राचीन एवं लोकप्रिय देवता है। विभिन्न देशों से प्राप्त प्रमाणों के आधार पर भगवान शिव की लोकप्रियता का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। इसी

---

* शोधार्थी पी.एच-डी.(इतिहास), शहीद भीमा नायक शास. महाविद्यालय बड़वानी (म.प्र.)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कारण ज्योतिर्लिंग तीर्थ क्षेत्र लोगों के आस्था के प्रमुख केन्द्र हैं। भारत के विभिन्न स्थानों पर विराजमान 12 ज्योतिर्लिंग लोगों में संस्कृति समन्वय का संदेश देते हैं। इन्हीं ज्योतिर्लिंगों में से ओंकारेश्वर क्षेत्र चौथे स्थान पर है। यह क्षेत्र मध्यप्रदेश राज्य का उप प्रदेश निमाड़ क्षेत्र है। 1 नवम्बर 1965 को नये प्रदेश के निर्माण के समय निमाड़ को दो भागों में विभक्त किया गया है। 1 पश्चिम निमाड़ एवं 2 पूर्वी निमाड़।[1] पूर्वी निमाड़ के अन्तर्गत ओंकारेश्वर पवित्र नगरी 220-140 अंक्षाश से 760 पूर्व देशान्तर पर है। ओंकारेश्वर जिसे मान्धाता ओंकारेश्वर भी कहते है।[2] खण्डवा व इन्दौर से 77 किलोमीटर की दूरी पर स्थित नगर है।

ओंकारेश्वर नगर पावन सलिला माँ नर्मदा के तट पर स्थित है। इस नदी को प्रख्यात भूगोलविद् टॉलमी ने इसे नामादोस कहा है।[3] इसके अन्य प्रमुख नामों में मैकलसुता, सोमोदेवी तथा रेवा है। यह गंगा नदी के समान पवित्र है। यह नगर ''ऊँ'' आकार के द्वीप पर स्थित है। यह द्वीप बेसाल्ट पत्थर से बनी एक के ऊपर एक बनी परतों के मोटे आवरण से ढका है जिसे सामान्यतः दक्कन ट्रैप भी कहते है।[4] लावे से बनी चट्टानों के कारण लोहे तथा मैगनीज के अंश अधिक मात्रा में पाये जाने से यह काले रंग की चिकनी तथा अधिक उपजाऊ मिट्टी है। अतः सागोन के वन की प्रचुरता है।[5] उत्तर में विन्ध्याचल पर्वत श्रेणियाँ है तथा दक्षिण में सतपूड़ा पर्वत श्रेणियाँ है। अतः भू-आकृति विज्ञान का प्रभाव पर्यटन व तीर्थ स्थलों पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

ओंकारेश्वर नगर के उद्भव एवं विकास का इतिहास ई.पू. 7000 के लगभग यहाँ का गौरवशाली ऐतिहासिक युग प्रारंभ हुआ। संस्कृत, प्राकृत एवं पाली साहित्य के संदर्भो में ज्ञात होता है कि यहाँ का भू-भाग अवन्ति राज्य की दक्षिण सीमा था। यहाँ का राजा कलचूरी महिष्मती यदुवंश का था तथा इसकी राजधानी का नाम महिष्मती था। प्रारंभिक ऐतिहासिक काल में ई.पू. छठी शताब्दी में नगर की तेजी से उन्नति हुई।[6] मौर्य साम्राज्य के अंतर्गत पूर्वी निमाड़ क्षेत्र में धर्म और संस्कृति के साथ-साथ पाषाण शिल्प का विकास हुआ। साथ ही जैन धर्म की उन्नति हुई।[7] मौर्यो के पश्चात् शुंग[8] तथा सातवाहन[9] वंशों ने लगभग ई.पू. दूसरी सदी के मध्य से 150 ई. तक मध्यप्रदेश के बड़े भू-भाग पर शासन किया। ये शासक वैदिक धर्म को मानने वाले थे। इस समय

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

महिष्मती कला के केन्द्र के रूप में विकसित हुआ। इस क्षेत्र में गुप्तवंश के साथ वाकाटक वंश(ई.4थी से 6ठी सदी तक) मैत्री से यह राज्य का शासन चला। इस काल में वैदिक धर्म की उन्नति हुई। गुप्तवंश के राजा चन्द्रगुप्त 'विक्रमादित्य' ने महिष्मती के शक क्षत्रपों का उन्मूलन कर दिया।[10] गुप्तवंश ने अपनी प्रतिष्ठा व लोक कल्याण के लिए इस क्षेत्र में वास्तुकला और मूर्ति कला का अभूतपूर्व विकास किया। तदुपरांत परमार वंश ई. 9वीं सदी के आरंभ में उदय हुआ। इन्होंने ओंकारेश्वर में कई मंदिर व इमारतों का निर्माण कराया।

इतिहास के साक्ष्य के रूप में जो उपलब्ध है, उनके अनुसार मान्धाता के परम्परागत अभिरक्षक भीलाला राव है। जिनके पार परिवार की परम्परागत जानकारी सुरक्षित रखी गई है। उस जानकारी के अनुसार भरतसिंह चौहान नामक राजपूत राजा ने नत्थू भील से ई.स.1165 में इसे लिया था। संभवतः नत्थू भील की पुत्री से विवाह कर भरतसिंह ने भिलाला परिवार की स्थापना की थी।[11] इसके सन्दर्भ में अनेक मत भी है। ओंकारेश्वर के महात्म्य का वर्णन विभिन्न पुराणों में मिलता है। ओंकारेश्वर क्षेत्र द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से चौथे स्थान पर है।

''सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्री शैलेमल्लिकार्जुनम्।

उज्जयिन्यां महाकालं ओंकारे ममलेश्वरम्।।[12]

ओंकारेश्वर क्षेत्र के महात्म्य के विषय में विभिन्न कथाऐं मिलती है। प्रथम - ओंकारेचमरेश्वरम्। (शिवपुराण कोटि रूद्रसंहिता) पुराणों में ऐसा वर्णित है कि रामेश्वर, अमलेश्वर, अमरेश्वर, ममलेश्वर एक ही नाम के अपभ्रंश रूप है। जिस ओंकार का उच्चारण सर्वप्रथम सृष्टिकर्ता विधाता प्रजापति पितामह ब्रह्म के मुख से हुआ। वेद का पाठ सर्वप्रथम ''ॐ'' के बिना नहीं होता है। श्रुतियों में इसका वर्णन है पुराणों में स्कन्दपुराण, शिवपुराण एवं वायुपुराण इस क्षेत्र की महिमा का गान किया है। ओंकार के प्राक्ट्य अद्‌भुत कथा इसी ओंकारेश्वर से संबंधित है। द्वितीय कथा -(शिव पुराण के अनुसार) एक बार देवर्षि नारदजी भ्रमण करते हुए विन्ध्याचल पर्वत पहुँचे। विन्ध्याचल ने उनका आतिथ्य सत्कार बड़े ऐश्वर्याभिमान के साथ किया किन्तु देवर्षि नारद ने यहाँ पर देवताओं का निवास न देखकर उदास मन से दीर्घ श्वांस लेकर उनके आतिथ्य को स्वीकार नहीं किया। जब विन्ध्याचल ने उनके मन की अभिलाषा जानने का प्रयास

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

किया तो देवर्षि नारद ने बताया कि सुमेरू पर्वत एवं कैलाश पर्वत दिव्यलोक तक फैली है, उसका सिर आपसे भी ऊँचा है, वहाँ दिव्य रूप से देवतागण निवास करके तपस्यारत है, श्रेष्ठता से आप सुमेरू पर्वत से कम हैं। अपनी श्रेष्ठता पर अभिमान करना उचित नहीं है। विन्ध्याचल पर्वत को अपनी तुच्छता का बोध होने पर अत्यंत क्षोभ हुआ और भगवान काशीविश्वनाथ की घोर तपस्या प्रारंभ की। पार्थिक लिंग बनाकर भलीभांति पूजन अर्चना करके प्रतिदिन घोर तप करने लगा। विन्ध्याचल की घोर तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान शंकर आशुतोष स्वयं साकार रूप में प्रगट हुए और अभीष्ट वर की प्राप्ति के लिए पर्वत राज्य विन्ध्य से कहा, तब विन्ध्याचल ने भक्तिभाव से सदाशिव भगवान का पूजन अर्जन करके अभीष्ट कार्य को सिद्ध करने वाली बुद्धि प्रदान करने हेतु वर मांगा। भगवान ने प्रसन्न होकर उन्हें अभीष्ट वर दिया। उसके बाद देवताओं और ऋषियों ने भगवान शंकर की अनेकों प्रकार से पूजा अर्चना कर विभिन्न मंत्रों से उनकी स्तुति की और निवेदन किया कि है परमात्मा! आप सर्वकाल इस स्थल पर स्थिर होकर निवास करें। भगवान शिव ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर सदाशिव प्रणव ज्योतिर्लिंग भगवान काशीविश्वनाथ ओंकारेश्वर में अवतरित हुए। इस प्रकार स्वयंभू प्रणव ज्योतिर्लिंग ओंकारेश्वर अभीष्ट फल प्रदान करने वाले हैं एवं श्रद्धापूर्वक दर्शन करने मात्र से व्यक्ति मोक्ष को प्राप्त होता हैं।

ओंकार विन्दु संयुक्तं नित्यं ध्यायति योगिनः।

कामदं मोक्षदंचैव ओंकारय नमो नमः।।

ओंकारेश्वर के मंदिर की स्थापत्य कला का वैभव अद्वितीय है। श्रद्धालुओं के लिए ओंकारेश्वर मंदिर अत्यन्त आकर्षक व श्रद्धा का स्थल है। यह नागर शैली की क्षेत्रीय शैली 'भूमिज शैली' में निर्मित है। इस मंदिर में भूमि से ही शिखर निर्मित है। शिखर वह जो दीवार की ऊपर उठता हुआ अंग है यह ऊपर की ओर पतला होकर शुंडाकार हो जाता है। इसके साथ उस श्रृंग भी लगे होते है।[13]

मंदिर में विशाल सभा मण्डप है जो लगभग 60 बड़े भूरे पत्थर के खम्बों पर बना है। ये खम्बें 14 फीट ऊँचे है तथा इन पर अत्यंत मनोरम नक्काशी की है। मंदिर का गुम्बद पत्थरों की परत दर परत जमाकर बनाया गया है। यह मंदिर नर्मदा के उत्तरी भाग पर स्थित है जो काफी ऊँचाई का है। अतः इसका विस्तार नई शैली में उत्तर की

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ओर है। इस कारण गर्भ गृह मुख्य द्वार के सामने नहीं है। थोड़ा आगे बढ़ने पर ज्योतिर्लिंग भगवान शंकर के प्रणवलिंग के दर्शन होते हैं। शिवलिंग अनगढ़ है छैनी हथोड़े से उसे नहीं गढ़ा गया है। ऐसी मान्यता है कि लिंग के नीचे हमेशा बने रहने वाला जल नर्मदा का जल है।[14] ओंकारेश्वर के परिक्रमा मार्ग में अन्य देवी देवताओं के मंदिर भी दर्शनीय है।

ओंकारेश्वर का ऐतिहासिक व प्राकृतिक वैभव आज भी इतना आकर्षक है कि वहाँ जाने वाला प्रत्येक व्यक्ति इस बात की प्रशंसा किये बिना नहीं रहता कि ओंकारेश्वर के उन महान कला पण्डितों ने अपनी साधना के लिए जिस स्थान को चुना वह सर्वथा उपर्युक्त था।

निमाड़ क्षेत्र में ओंकारेश्वर पूरे भारत में एक पवित्र तीर्थ स्थल के रूप में माना जाता है। आज भी यह लाखों भक्तों की श्रद्धा का केन्द्र बना हुआ है। यहाँ प्रति 12 वर्ष बाद उज्जैन के विशाल कुंभ के मेले के आयोजन का महोत्सव होता है। आदि शंकराचार्य को यही पर गोविन्द पादाचार्य के गुरू रूप में उपलब्ध हुए। ओंकारेश्वर और महेश्वर का परस्पर घनिष्ठ संबंध है। इसी क्षेत्र में निवास करते हुए शंकराचार्य ने अद्वैत सिद्धांत की प्रतिष्ठा की थी। ओंकारेश्वर के निकट सिद्धवरकूट प्रसिद्ध जैन तीर्थ है। इस प्रकार निमाड़ का यह क्षेत्र शैव और जैन धर्म की उत्थान स्थलीय रहा है। इस रूप में दोनों स्थान हजारों श्रद्धालुओं के लिये पवित्र तीर्थ स्थान के रूप में विख्यात है।

संदर्भ

1. कुमार पूर्णेन्दू, मध्यप्रदेशः विस्तृत अध्ययन, अरिहन्त पब्लिकेशन(इ) प्रायवेट लिमिटेड मेरठ, 2008, पृ.86
2. शर्मा, महेश, भारत के पर्यटन स्थल, तक्षशिला प्रकाशन दिल्ली, 2002, पृ.76
3. तिवारी, विजय कुमार, मध्यप्रदेश का भौगोलिक स्वरूप, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा, 2002, पृ.16
4. मामोरिया, चतुर्भुज, युनिफाईड भूगोल, साहित्य भवन पब्लिकेशन भोपाल, 2008, पृ.8
5. न्याति, जानकीलाल, खन्ना, बी.एल. भारत का भूगोल, साहित्य भवन पब्लिकेशन भोपाल, 2008, पृ.275
6. वाजपेय कृष्णदत्त, मध्यप्रदेश का पुरातत्व, साहित्य भवन पब्लिकेशन भोपाल, 2002, पृ.13
7. कांति सागर, खण्डरों का वैभव, साहित्य भवन पब्लिकेशन दिल्ली; 1996, पृ.152

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

8. मालवा थ्रू दी एजेज, पृ.512

9. कृष्णदेव, टेम्पल्स ऑफ नार्थ इण्डिया, पृ.15

10. वाजपेय मधुलिका, मध्यप्रदेश की जैन कला, परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली, 1993, पृ.36

11. पूर्वी निमाड़, गजेटियर, पृ.538

12. तिवारी, ब्रह्मनंद शिवपुराण चतुर्थ कोटि रूद्र संहिता अध्याय 1, पृ.1030

13. श्रीवास्तव, एम.एल., भारतीय कला किताब महल इलाहाबाद, 1998, पृ.179

14. शर्मा, श्रीराम आचार्य तीर्थ सेवन क्यों और कैसे? अखण्ड ज्योति संस्थान मथुरा, 1998, पृ.135

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

स्कन्दपुराण में शैव यात्राएँ

डॉ० कल्पना स्थापक*

शैव धर्म से अनुप्रमाणित मालवा क्षेत्र प्राचीन समय से ही शैव-यात्राओं एवं शैव पर्वो को अपने अंचल में समेटे हुए है। मालवा की अधिकांश शैव यात्राएँ मालवा की हृदय-स्थली अवंतिका में पूर्ण होती रही हैं। शैवपर्व भी यहाँ प्राचीन समय से ही हर्षोल्लास के साथ मनाये जाते रहे हैं। इन पर्वो तथा यात्राओं की परम्परा वर्तमान समय में भी अपने अस्तित्व को काफी कुछ बनाएँ हुये है। स्कन्दपुराण[1] के अनुसार उज्जयिनी में निम्न शैव यात्राएँ[2] की जाती रही है -

नित्य यात्रा – इस यात्रा में प्रतिहारेश्वर, नागचण्डेश्वर, महाकालेश्वर अवन्तिका देवी, हर सिद्धि देवी तथा अगस्त्येश्वर आदि देवताओं की पूजा व परिक्रमा की जाती है।

कुशस्थली प्रदक्षिणा - इस प्रदक्षिणा का प्रारंभ कर्क राजेश्वर से होता है। फिर क्रमशः नागेश्वर, लवांकुश, यम धर्मराज आदि देवताओं के दर्शन के पश्चात् तीर्थ यात्री पुनः कर्कराजेश्वर पहुँचते हैं।

अट्ठाइस-तीर्थ यात्रा – इस यात्रा के अंतर्गत शैव तीर्थों की यात्रा की जाती है। इस यात्रा की समाप्ति मंगलेश्वर व नागचण्डेश्वर की आराधना से होती है।

महाकाल यात्रा - महाकाल यात्रा में परिसर स्थित विभिन्न शिव मंदिर का दर्शन सम्मिलित होता रहा है। ये मंदिर हैं, कोटेश्वर, महाकाल, कपिलेश्वर, राजेश्वर, विश्वतोमुख, सोमेश्वर, प्राणीश्वर, कालेश्वर, बधिरेश्वर व यात्रेश्वर।

---

* सहायक प्राध्यापक, इतिहास, शासकीय नर्मदा महाविद्यालय, होशंगाबाद

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पंचक्रोशी यात्रा – पंचक्रोशी यात्रा अन्य यात्राओं की अपेक्षा सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानी गई। वर्तमान समय में भी यह परम्परा विद्यमान हैं। स्कन्दपुराण में इस यात्रा को पंचेशानी यात्रा कहा गया है।[3] ईशानी का अर्थ शिव के पाँच प्रकारों से लगाया जाता है। पिंगलेश्वर में अभी भी एक पंचमुखी शिवलिंग विद्यमान है। इस यात्रा का प्रारंभ नागचण्डेश्वर के दर्शन से प्रारंभ होता है। अवंति क्षेत्र की पूरी परिक्रमा करने के पश्चात् उण्डासा तालाब में अंतिम दिन स्नान करके यात्री पुनः उज्जैन लौट आते हैं।

चार द्वार यात्रा – चारद्वार यात्रा का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इस यात्रा के अंतर्गत उज्जयिनी के चार द्वारों यथा पिंगलेश्वर, कायाबरोहणेश्वर, विल्वेश्वर एवं दुर्द्धरेश्वर का दर्शन किया जाता है।[4] इसका प्रारंभ की नागचण्डेश्वर के दर्शन से होता है। इसमें यात्रा चार द्वारों का दर्शन चार दिन में करते हैं।

अष्ट तीर्थी यात्रा – अष्टतीर्थी यात्रा का प्रारंभ पंचक्रोशी तथा चार-द्वार यात्रा की समाप्ति के दूसरे दिन से होता है। यह यात्रा कर्कराज मंदिर से प्रारंभ होती है। इस यात्री की समाप्ति मंगलेश्वर व नाग चण्डेश्वर की आराधना से होती है।

उक्त यात्राओं में से वर्तमान समय में नित्य यात्रा तथा पंचक्रोशी यात्रा की परम्परा ही जीवित है। चार-द्वार यात्रा तथा अष्टतीर्थी यात्रा पंचक्रोशी यात्रा से ही जुड़ी हुई हैं।

मालवा पर मुस्लिम एवं मुगल आधिपत्य तथा असुरक्षा के कारण ये यात्राएँ मध्यकाल में लगभग समाप्त हो गई थी, किन्तु ऐसा लगता है ग्रामीण जन-जीवन द्वारा पंचक्रोशी यात्रा का अस्तित्व बना रहा। उज्जयिनी के आस-पास के मंदिरों एवं अन्य धार्मिक स्थलों के विध्वंस के कारण कुछ समय के लिये ये शैव यात्राएँ समाप्त हो गई थी। मराठाकाल में इनमें से पुनः प्रारंभ की गई।

महाकाल की नगरी अवन्तिका में शैव यात्राओं का ही नहीं वरन् शैव अनुष्ठानों और व्रतों का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा। पाशुपात व्रत, कपाल व्रत, शिवरात्रि व्रत, प्रदोष व्रत, सोमवार आदि व्रतों का अपेक्षाकृत अधिक महत्व था।[5]

अवंतिका में अनेक धार्मिक उत्सव होते थे। ऐसे उत्सव कार्तिक पूर्णिमा, भैरवाष्टिमी, वैशाख की अमावस्या, श्रावण मास आदि अवसरों पर सम्पन्न होते थे।

इस प्रकार प्राचीन मालवा क्षेत्र मठों, पवित्र शैव तीर्थो, शैव व्रतों, पर्वो व तिथि त्यौहारों से परिपूरित रहा है। पुराणों में वर्णित शैव तीर्थो की वर्तमान पहचान असंभव नहीं, तो कठिन अवश्य है। फिर भी मालवा की पवित्र शिप्रा तथा नर्मदा नदियों के किनारे प्राचीन स्थल आज भी विभिन्न घाटों, पुरावशेषों तथा अनुश्रुतियों के रूप में जीवित हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

संदर्भ

1. स्कन्दपुराण अवंति खंड 5.22, 26,29
2. इन शैव यात्राओं का विस्तृत वर्णन प्राचीन मालवा में विभिन्न जातियों, वर्गों में प्रचलित शैव धर्म नामक अध्याय में किया गया है।
3. स्कन्दपुराण अवंति खंड 5,29,7-8
4. उक्त - 5,22
5. उक्त 5.6-18, 99,93,102,106
6. डॉ. हंसा व्यास - प्राचीन मालवा में शैव धर्म (प्रारंभ से 1305) पृ.81-82

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पुराणों में वैष्णव सम्प्रदाय के विविध पक्ष

कु० शुभम जैन*

भारतीय संस्कृति के स्वरूप की जानकारी के लिए पुराण के अध्ययन की महती आवश्यकता है। अनादिकाल से ही पुराण भारतीयों के जीवन-दर्शन के पथ-प्रदर्शक रहे हैं। 'पुराण' शब्द की व्युत्पत्ति पाणिनि, यास्क तथा स्वयं पुराणों ने भी दी हैं। पाणिनीय व्याकरण के अनुसार व्युत्पत्ति इस प्रकार है - "पुराभवमिति विग्रहे" पुरा इस अव्यय से **"सायञ्चिरं प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यस्ट्यूट्युलौ डट् च"** इस सूत्र से ट्यु होकर लुट् का अभाव निपातनात् सिद्ध है और "युवोरनाकौ" इस सूत्र से अनादेश होकर गत्व करने पर शब्द की निष्पत्ति होती है।[1] यास्क के निरूक्त के अनुसार 'पुराण' की व्युत्पत्ति है - "पुरा नवं भवति" अर्थात् जो प्राचीन होकर भी नया है। वायुपुराण के अनुसार -"पुरा अनाति" अर्थात् प्राचीनकाल में जो जीवित था। पद्मपुराण के अनुसार यह निरूक्ति -"पुरा परम्परां वष्टि पुराणं तेन तत् स्मृतम" अर्थात् जो प्राचीनता की अर्थात् परम्परा की कामना करता है वह पुराण कहलाता है।[2]

संस्कृत साहित्य में वेदों के बाद पुराणों का ही सर्वमान्य स्थान है। महाभारत में स्वयं भगवान् व्यासजी ने कहा है कि "इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्" वेदों के उपकारक व समकक्ष होने के ही कारण पुराणों को पाँचवाँ वेद कहा है।

वेदों में जिन अग्नि, इन्द्र, वरूण, पूषा, सोम, उषा और पर्जन्य प्रमृति देवताओं का प्राधान्य था। पुराणों में उनका स्थान विष्णु, शिव, देवी, कृष्ण आदि देवों ने ले लिया। प्रगतिशील पुराण प्रथाओं ने केवल देवी देवताओं की ही स्थापनाओं में प्रयत्न

---

* शोधार्थी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

नहीं किया, बल्कि आचार, विचार, धर्म, अनुशासन, व्रत-पूजा आदि कर्म क्षेत्र में भी बहुत सी नई मान्यताओं को जन्म दिया है।

पौराणिक युग का यह एक क्रान्तिकारी परिवर्तन था जो धर्म, कर्म साधना व आराधना और रीति-रिवाज की दृष्टि से वेदों की अपेक्षा कहीं अधिक विकसित, परिवर्तित, सरल तथा सुगम पथ मालूम पड़ता है। इस प्रकार पुराण भारतीय संस्कृति, आचार, विचार व इतिहास को जानने के लिए विश्वकोष है।

पुराणों की संख्या प्राचीनकाल से 18 मानी गई हैं। जो इस प्रकार है-1. ब्रह्म, 2 पद्म, 3 विष्णु, 4 वायु(शिव), 5 भागवत, 6 नारदीय, 7 मार्कण्डेय, 8 अग्नि, 9 भविष्य, 10 ब्रह्मवैवर्त, 11 लिंग, 12 वराह, 13 स्कन्द, 14 वामन, 15 कूर्म, 16 मत्स्य, 17 गरूड तथा , 18 ब्रह्माण्ड।[3]

मत्स्यपुराण के अनुसार पुराणों का त्रिविध विभाजन मान्य है - सात्विक, राजस, तामस। सात्विक पुराणों में विष्णु का माहात्म्य अधिक रूप से वर्णित है, राजस पुराणों में ब्रह्मा तथा अग्नि का माहात्म्य अधिकांश वर्णित है और तामस पुराणों में शिव का माहात्म्य है।[4]

पद्मपुराण में सात्विक पुराणों की गणना की गई है - वैष्णव, नारद, भागवत, गरूड, पद्म तथा वराह -

वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभम्।

गारूडं च तथा पाद्मं वाराहं शुभदर्शने ॥[5]

गरूडपुराण में सात्विक पुराणों को तीन श्रेणियों उत्तम, मध्यम तथा अधम स्थापित कर उनका विभाजन किया गया है - (क) मत्स्य तथा कूर्म को 'सत्वधाम' (ख) वायु को 'सात्विकमध्यम' तथा (ग) गरूड, विष्णु और भागवत को 'सत्वोत्तम' पुराण कहा गया है।

'पुराणं कस्मात् पुरा नवं भवति' अर्थात् पुराण क्यों कहा जाता है? इसलिए कि जो कभी पहिले नया हो, यानि वर्तमान समय में जिसकी नवीनता अभीष्ट न हो।[6] सीधे शब्दों में पुराने को पुराण कहा जाता है। प्रतन, प्रत्न, पुरातन, चिरन्तन इसके पर्यायवाची शब्द है। परन्तु 'पुराण' शब्द विशेष रूप से अष्टदश ग्रन्थों में रूढ़ हो गया है। इसलिए अमरकोश में 'पुराणं पञ्चलक्षणम्' अर्थात् 1 सृष्टि की उत्पत्ति, 2 विनाश, 3 वंशपरम्परा, 4 मनुओं का वर्णन, 5 विशिष्ट व्यक्तियों के चरित्र - ये पाँच विषय जिन ग्रन्थों में मुख्यता से वर्णित हो उन्हें पुराण कहते है।[7] इसलिए पुराण शब्द का वास्तविक अर्थ ही इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण है कि ये ग्रंथ पुराने से पुराने यहाँ तक कि मनुष्यादि प्राणियों की उत्पत्ति-काल से भी पूर्ववत् रहस्यों का प्रत्यक्ष की भाँति वर्णन करते है।[8]

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पद्मपुराण

एतदेव यदा पद्मं ह्यभूद्धैरणमयं जगत्।
तद्वृत्तान्तादयं तद्वत् पाद्ममित्युच्यते बुधैः।
पाद्मं तत्पञ्चपञ्चाशत् सहस्राणीह कथ्यते।।

अर्थात् सृष्टि के आरम्भ में यह जगत् हिरण्यमय पद्म के रूप में प्रकट हुआ था, उस वैज्ञानिक वृतान्त का प्रतिपादन होने के कारण उक्त पुराण की पद्मपुराण संज्ञा है और इसकी श्लोक संख्या पचपन हजार है।[9] यह पुराण परिमाण में स्कन्दपुराण को छोड़कर अद्वितीय है। इसमें पाँच खण्ड है -1.सृष्टिखण्ड 2. भूमिखण्ड, 3. स्वर्गखण्ड, 4. पातालखण्ड और 5. उत्तरखण्ड।[10]

यह पुराण वैष्णव सम्प्रदाय के व्यावहारिक स्वरूप को समझने के लिए विशेष उपयोगी है। राम तथा कृष्ण के चरित्र का वर्णन विस्तार के साथ है, परन्तु वैष्णव तीर्थो तथा व्रतों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करना इस पुराण की महती विशेषता है। भिन्न-भिन्न मासों के वैष्णव व्रतों का बड़ा ही प्रामाणिक तथा रोचक विवरण यहाँ किया गया है। इस प्रकार पद्मपुराण का अनुशीलन वैष्णव धर्म के व्यावहारिक रूप, आचार, तीर्थ, व्रत आदि की जानकारी के लिए विशेष आवश्यक है।[11]

भागवतपुराण

यत्राधिकृत्य गायत्री वर्ण्यते धार्म्मविस्तरः।
वृत्रासुरवधोपेतं पद् भागवतमुच्यते।
अष्टदशसहस्राणि पुराणं तत्प्रकीर्तिततम्।।

अर्थात् जिस ग्रंथ में गायत्री अवलम्बनपूर्वक विस्तार से धर्म का तत्व वर्णित हो तथा वृत्रासुर का वध कहा गया हो वही पुराण 'भगवत' संज्ञक है। जिसका प्रमाण अठारह हजार है।[12]

इस भागवतपुराण के महापुराण और मौलिकत्व संबंध में अनेक मत प्रचलित है। वैष्णवलोक विष्णुमहिमा प्रकाशक 'श्रीभागवत' को और शाक्तलोक शक्तिमाहात्म्यपूर्ण 'देवीभागवत' को ही महापुराण बताते है।[13]

यह पुराण संस्कृत साहित्य का एक अनुपम रत्न है। वैष्णव आचार्यो ने प्रस्थानत्रयी के समान भागवत को भी अपना उपजीव्य माना है। भागवत के गूढ़ार्थ को व्यक्त करने के लिए प्रत्येक वैष्णव सम्प्रदाय ने इस पर व्याख्या लिखी है - जिनमें से कूट टीकाओं के नाम दिए गए है- रामानुज मत में सुदर्शनसुरी की, शुकपक्षीय तथा वीरराधवाचार्य की 'भागवतचन्द्रचन्द्रिका' माध्यक्त में विजयध्वज की 'पदरत्नावली'

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

निम्बार्कमत में शुकदेवाचार्य की 'सिद्धान्तप्रदीप' बल्लभमत में स्वयं आचार्य बल्लभकी 'सुबोधिनी' तथा गिरिधराचार्य की आध्यात्मिक टीका चैतन्यमत में श्रीसनातन की 'बृहद्वैष्णवतोषिणी' ।(दशम स्कन्ध पर) जीवगोस्वामी की 'क्रमसन्दर्भ' विश्वनाथ चक्रवर्ती की 'सारार्थदर्शिनी' । सबसे लोकप्रिय श्रीधरस्वामी की 'श्रीधरी' है ।[14]

श्रीमद्भागवत अनेक आख्यानों से युक्त एक वैष्णवदर्शन का महाग्रंथ माना जाता है, क्योंकि इसमें वेदान्त दर्शन के सिद्धान्तप्रदर्शन के साथ-साथ नारदपञ्चराज और गीता के अपूर्व दर्शनिक तत्वों को विस्तार के साथ समझाने का प्रयास हुआ है। इसीलिए दार्शनिक जगत् में श्रीमद्भागवत का अधिक आदर हुआ है। इसी कारण सम्पूर्ण पुराणों की अपेक्षा श्रीमद्भागवत पर सर्वसाधारण हिन्दुओं का अधिक अनुराग पूर्णसम्मान और अचल भक्ति लक्षित है। श्रीमद्भागवत वैष्णवों की परम सम्प्रति है और परमहंसों के सर्वोच्च ज्ञान का इसमें प्रकाश हुआ है। पुराणों में श्रीमद्भागवत ने वैष्णव जनता के हृदय पर विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया है।

दो भागवत होने का मत - अष्टदश पुराणों में भागवत नामक पुराण के साथ में दो ग्रंथ गिने जाते है। एक श्रीमद्भागवत और दूसरा देवीभागवत। वैष्णव व शाक्त मत के लोगों द्वारा अपने-अपने पुराण को उच्चकोटि में गिनाने का प्रयास किया जाता है, परन्तु पुराण गणना में केवल भागवत नाम से ही जाना जाता है। वहीं श्रीमद् या देवी शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। अतः 'त्ववतानुबन्धे साभान्यग्रहणम्' इस नियम के अनुसार भागवतत्व सामान्येन दोनों का ही ग्रहण होगा। 'भगवत' शब्द की व्युत्पत्ति भी 'भगवतो भगवत्या वा इदम्भागवतम्' इस प्रकार दोनों पुराणों के एकत्व में प्रमाण है।[15]

गरूडपुराण

यदा च गारूडे कल्पे विश्वाण्डाद् गरूडोद्वतम।
अधिकृत्याब्रवीद् विष्णुर्गारूडं तदिहोच्यते ।
तदष्टादशकं चैव सहस्राणीह पठयते ॥

अर्थात् जिस ग्रंथ में विष्णु भगवान् ने गरूड कल्प के प्रसंग में विश्वरूप अण्ड से लेकर सब वृत्तान्त गरूड के प्रति वर्णन किया गया है वहीं गरूडपुराण की संज्ञा है। इसकी श्लोक संख्या अठारह हजार है।[16]

विष्णु के परमेश्वर रूप तथा माहात्म्य से गरूडपुराण के युग में विष्णु भक्ति अथवा वैष्णव धर्म की प्रधानता ज्ञात होती है। उनके विविध अवतारों और उनकी संख्या से वैष्णव धर्म के विकास पर भी प्रकाश पड़ता है। वैदिक युग में भी विष्णु का उल्लेख मिलता है। आधुनिक विद्वान् उन्हें 'आदित्य मात्र' कहते है। प्रो. बनर्जी का मत है कि वैष्णव धर्म का आधार विष्णु है। जो वेदों में सौर देवता है, लेकिन इसका यह

 CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मतलब नहीं है कि यह देवता पौराणिक(वैष्णव) धर्म का मूलाचार था जो कालान्तर में विकसित हुआ।[17]

वराहपुराण के अनुसार विष्णु के उपासक ही वैष्णव कहलाते हैं - वैष्णावा...... ..विष्णुपूजन पत्पराः।[18] लिंगपुराण के अनुसार भी वासुदेव के भक्त वैष्णव कहलाते है - वैष्णावा इति ये प्रोक्ता वासुदेवपरायणाः।[19]

गरूडपुराण वैष्णव पुराण है। इसके अनुसार नारायण ही एक 'देवनामीश्वरेश्वरः परमात्मा परं ब्रह्म' परमेश्वर पुराणपुरूष और देवदेव सर्व लोकेश्वरेश्वर है।[20] वह सर्वेश्वर है और उनसे बड़ा और कोई देवता नहीं है। इस प्रकार गरूडपुराण से परमेश्वर का माहात्म्य ज्ञात होता है। इस पुराण में विष्णु ने गरूड को विश्व की सृष्टि बतलाई है, इसलिए इसका नाम गरूडपुराण पड़ गया। इसमें दो खण्ड है। पूर्व खण्ड में उपयोगिनी नाना विधाओं का वर्णन है। आरम्भ में विष्णु और उनके अवतारों का माहात्म्य कथित है। इस पुराण के उत्तरखण्ड को 'प्रेतकल्प' कहा जाता है।

वराहपुराण

नारदपुराण के 103 अध्याय में वराहपुराण का लक्षण है -

श्रृणु पुत्र! प्रवक्ष्यामि वाराहं वै पुराणकम्।
भागद्वययुतं शश्वद् विष्णुमाहात्म्यसूचकम्।।
मानवस्य तु कल्पस्य प्रसङ्गं मत्कृतं पुरा।
निबबन्धा पुराणेऽस्मिश्चतुर्विंशसहस्रके।।

अर्थात् हे पुत्रों! सुनों मैं वराहपुराण का वर्णन करता हूँ, इसके दो भाग है और यह विष्णु भागवान् की महिमा का सूचक है। मेरा उपदिष्ट मानव कल्प का प्रसंग वेदव्यास ने 24 हजार श्लोकों में उक्त पुराण में निबद्ध किया गया है।[21]

इसके उत्तरभाग में पुलत्स्यकुरूराजसंवाद में विस्तारपूर्वक तीर्थो का पृथक् माहात्म्य अनेक धर्माख्यान और पौष्करपर्व आदि पाये जाते हैं। वराहपुराण में भगवान् विष्णु के विभिन्न व्रतों का उल्लेख है। इसमें दो अंश महत्त्वपूर्ण है। एक मथुरामाहात्म्य और दूसरा नाचिकेतोपाख्यान।

नारदपुराण

श्रृणु विप्र! प्रवक्ष्यामि पुराणं नारदीयकम्।
पञ्चविंशतिसाहस्रं बृहत्कल्पकथाश्रयम्।।

अर्थात् हे विप्र! सुनों तुम्हारे प्रति नारदीय पुराण कहता हूँ। यह पुराण बृहत्कल्प की कथा संयुक्त पच्चीस हजार श्लोक संख्या वाला है।

नारदपुराण में पूर्व और उत्तर दो खण्ड है। मत्स्यपुराण के 53 अध्याय के

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अनुसार जिस ग्रंथ में नारद ने बृहत्कल्प-प्रसङ्ग में अनेक धर्म कथाएँ कही है, वहीं 28000 श्लोकों से युक्त नारदपुराण है।

शिवपुराण के उत्तराखण्ड के अनुसार नारदपुराण को नारदीयपुराण भी कहते हैं। नारदपुराण में पूर्व और उत्तर दो खण्ड है। नारदपुराण वैष्णवपुराण कहा जाता है, क्योंकि इसमें वैष्णव के अनुष्ठानादि और उनके सम्प्रदाय की दिक्षा का विधान है। नारदपुराण के उत्तरखण्ड में वैष्णवसम्प्रदाय का विशेष स्थान है। इस पुराण में जिस प्रकार सभी पुराणों का विषयानुक्रम दिया गया है, उससे मालूम पड़ता है कि यह उन पुराणों के पीछे का बना हुआ है, या कम से कम इसमें इतना अंश तो पुराणों के पीछे का है।

विष्णुपुराण में सनाक्रम से सह छठा पुराण माना गया है। बृहन्नारदीयपुराण के नाम से एक और वैष्णव ग्रंथ उपस्थित होता है, जो उपपुराणों में गिना जाता है। नारदपुराण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें अठारह पुराणों की विषयानुक्रमणिका विस्तृत रूप से दी गई है। जिससे संक्षेप में सभी पुराणों के विषय का ज्ञान मिलता है।[22]

वैष्णव धर्म की महत्त्ता - वैष्णव धर्म उदारता का प्रतीक है। एक तो वैदिक धर्म स्वयं उदार धर्म है और उसमें भी वैष्णव धर्म तो ओर भी उदार है। वैष्णव धर्म की दृष्टि सदा ही औदार्य से मंडित रही है। वैष्णव धर्म को वर्णाश्रम धर्म में पूर्ण आस्था है, परन्तु फिर भी वह भक्ति के राज्य में, उपासना के क्षेत्र में सबका समान अधिकार मानता है। इतिहास इस औदार्य दृष्टि का सर्वथा परिचायक है। बाहर से आने वाली अनेक विदेश जातियों को वैष्णव धर्म के अन्तर्गत स्थान मिला है। वे वैष्णव धर्म के घुलमिलकर पूर्ण भारतीय बन गई है।[23]

वैष्णव धर्म की विजयगाथा - भारतवर्ष के चतुर्दिक् पूरब से पश्चिम तक तथा उत्तर से लेकर दक्षिण तक प्रत्येक प्रांत में वैष्णव धर्म का प्रसार तथा प्रचार संपन्न हुआ था। इसने इस प्रकार भारत की अधिकांश जनता के आचरणशील तथा सदाचार के ऊपर अपना भव्य प्रभाव जमाया। परन्तु हमारा वैष्णव धर्म भारतवर्ष की चार दीवारी के भीतर ही कभी सीमित तथा संकुचित नहीं रहा। उल्लासपूर्ण भारतीयों की विजय वैजयंती के साथ वैष्णव धर्म ने भी अपना क्षेत्र विस्तृत किया।[24]

पुराणों में वैष्णव धर्म का महनीय इतिहास उल्लिखित किया गया है। अठारह पुराणों में से लगभग आधे पुराणों का संबंध वैष्णव धर्म से नितान्त स्फुट है। मत्स्य, कूर्म, वराह तथा वामन इन चार पुराणों का नामकरण तथा निर्माण भागवान् विष्णु के चार

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अवतारों को लक्ष्य कर रखा गया है। नारद, ब्रह्मवैवर्त, पद्म, विष्णु तथा श्रीमद्भागवत इन पाँच पुराणों में विष्णु के आध्यात्मिक रूप तथा महिमा का व्यापक तथा स्वर्गसुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया है जिसमें अन्तिम चार पुराण वैष्णव सम्प्रदायों के ऐतिहासिक विकास की जानकारी के लिए नितान्त महत्त्वशाली है।[25]

वैष्णव धर्म एवं सम्प्रदाय – वेदों में सर्वव्यापक परम तत्व को विष्णु कहा गया है। विष्णु का परम पद, परम धाम दिव्य आकाश में स्थित एवं सूर्य के समान देदीप्यमान माना गया है -''तद् विष्णोः परमं पदं पश्यन्ति सूरयः।'' दिवीय चक्षुराततम् (ऋग्वेद 1/22/20) विष्णु अजय गोप हैं, गोपाल हैं, रक्षक हैं और उनके गोलोक धाम में गाय हैं - 'विष्णुर्गोपा' अदाभ्यः (ऋग्वेद 1/22/18) यत्र गावो भूरिश्रृंगा आयासः (ऋग्वेद 1/15)। विष्णु श्रीकृष्ण वासुदेव, नारायण आदि नामों से परवर्ती युग में लोकप्रिय हुए। ब्राह्मण ग्रंथों में इन्हीं विष्णु को यज्ञ के रूप में माना गया -'' यज्ञो वै विष्णुः।'' तैत्तरीय संहिता, शतपथब्राह्मण में इन्हें त्रिविक्रम रूप से प्रस्तुत किया गया है, जिसकी कथा पुराणों में वामन अवतार के रूप में मिलती हैं। विष्णु के उपासक, भक्त वैष्णव कहे जाते हैं। विष्णु के अनन्त ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य रूप में 'भग' से सम्पन्न होने के कारण भगवान् या भगवत कहा जाता है। इस कारण वैष्णवों को भगवत नाम से भी जाना जाता है। महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्य का कथन है कि इन्हीं परमतत्व को वेदान्त में 'ब्रह्म' स्मृतियों में 'परमात्मा' तथा भागवत में 'भगवान्' कहा गया है। उनकी सुदृढ़ मान्यता है कि श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं - ''परब्रह्म तु कृष्णा हि'' (सिद्धान्त मुक्तावली-3) वैष्णव धर्म भक्तिमार्ग है।

भक्ति का संबंध हृदय की रागात्मिक वृत्ति से, प्रेम से है। इसलिए महर्षि शांडिल्य को ईश्वर के प्रति अनुरक्ति अर्थात् उत्कृष्ट प्रेम मानते हैं और देवर्षि नारद इसे परमात्मा के प्रति परम प्रेमस्वरूपता कहते हैं। वैष्णव भक्ति का उदय और प्रसार सबसे पहले भगवान् श्रीकृष्ण की जन्मभूमि और लीलास्थली ब्रजमण्डल में हुआ। तंत्रों में भगवान् श्रीकृष्ण के वंश के आधार पर ही वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरूद्ध ये चार व्यूह माने गये है। एक समय ऐसा आया था। जबकि वैष्णव धर्म ही मानव राष्ट्र का धर्म बन गया था। गुप्त नरेश अपने आपको 'परम भागवत' कहलाकर गौरवान्वित होते थे तथा यूनानी राजदूत हेलियोडोरस(ई.पू.200) ने भेलसा(विदिशा) में गरूड़ स्तम्भ बनवाया और वह स्वयं को गर्व के साथ 'परम भागवत' कहता था। पाणिनि के पूर्व भी तैत्तरीय आरण्यक में विष्णु, गायत्री में विष्णु, नारायण और वासुदेव की एकता दर्शायी गयी है -'' नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।'' 7 से 14 वीं शताब्दी के बीच दक्षिण के द्रविड क्षेत्र में अनेक आलवार भक्त हुए, जो भगवत भक्ति में

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

लीन रहते थे और भगवान् वासुदेव नारायण के प्रेम, सौन्दर्य तथा आत्मसमर्पण के पदों की रचना करके गाते थे।उनके भक्ति पदों को वेद के समान पवित्र और सम्मानित मानकर 'तमिलवेद' कहा जाने लगा था।

वैष्णव सम्प्रदाय के उप-सम्प्रदाय - वैष्णव के बहुत से उपसम्प्रदाय भी हैं जैसे- बैरागी, दास, रामानन्द, वल्लभ, निम्बार्क, माध्य, राधावल्लभ, सखी, गाड़ीय आदि।

प्रमुख वैष्णव सम्प्रदाय - वैष्णवों के चार प्रमुख सम्प्रदाय माने जाते हैं। ये है -1. श्रीसम्प्रदाय, 2. हंस सम्प्रदाय, 3 ब्रह्मसम्प्रदाय, 4 रूद्रसम्प्रदाय

1. श्रीसम्प्रदाय - यह सम्प्रदाय 'श्री' देवी के द्वारा प्रवर्तित है। इसके आद्य आचार्य रंगनाथमुनि हैं। उनके पौत्र यमुनाचार्य ने इसे बढाया और रामानुजाचार्य ने इसे गौरव के शिखर पर पहुँचा दिया। इसे आजकल रामानुज सम्प्रदाय के नाम से जाना जाता है। वैष्णवमत की पुष्टि करने वालों में रामानुज या रामानुजाचार्य का महत्वपूर्ण स्थान है। इनका जन्म 1207 ई. में मद्रास के समीप पेरूबुदूर गाँव में हुआ था। इन्होंने भक्तिमार्ग के समर्थ में गीता और ब्रह्मसूत्र पर वाक्य लिखा। इनके चौहत्तर शिष्य थे। इन्होंने महात्मा विल्ललोकाचार्य को अपना उत्तराधिकारी बनाकर 120 वर्ष की अवस्था में इस संसार से प्रणय प्रयाण किया। इस सम्प्रदाय के अनुयायी श्री वैष्णव कहलाते हैं। इनका दार्शनिक सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत है।

2. हंससम्प्रदाय - इस सम्प्रदाय को हंस सम्प्रदाय, देवर्षि सम्प्रदाय अथवा सनकादि सम्प्रदाय भी कहा जाता है। इस सम्प्रदाय के आदि उपदेशक भगवान् हंस हैं। उनकी परम्परा सनकादि मुनि और देवर्षि नारद से होती हुई निम्बार्काचार्य तक पहुँचती है। वर्तमान में इसे निम्बार्क सम्प्रदाय के नाम से जाना जाता है। निम्बार्क का अर्थ है - नीम पर सूर्य। मथुरा पर स्थित ध्रुवटीले पर निम्बार्क सम्प्रदाय का प्राचीन मंदिर बताया जाता है। इस सम्प्रदाय का सिद्धान्त द्वैताद्वैतवाद कहलाता है। इसी को मतभेद भी कहा जाता है। भेदाभेद सिद्धान्त के आचार्यो में औधुलोमि, आश्मरथ्य, भवृप्रपंच, भास्कर और यादव ये भी नाम आते है। इस सम्प्रदाय में भगवान् श्रीकृष्ण और राधाजी के युगल स्वरूप की उपासना की जाती है। निम्बार्काचार्य ने वेदान्त, परिजात-सौरभ, वेदान्त कामधेनु, रहस्य षोडसी, प्रपन्न कल्पवल्ली और कृष्ण स्तोत्र नामक ग्रन्थों की रचना की।

3. ब्रह्मसम्प्रदाय - इसके प्रवर्तक ब्रह्माजी प्रतिष्ठापक श्री माध्वाचार्य माने जाते है। इनका दार्शनिक मत द्वैतवाद है। माध्वाचार्य जिन्हें आनन्दतीर्थ भी कहते हैं ये दक्षिण भारत में आधुनिक कर्नाटक राज्य के थे, जहाँ उनके अब भी बहुत से अनुयायी हैं। अपने जीवन काल में उनके शिष्य उनको वायु का अवतार मानते थे। इस सम्प्रदाय में

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

श्रीहरि विष्णु ही सर्वोच्च तत्त्व हैं।

4. रूद्र सम्प्रदाय- इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक रूद्र और प्रतिष्ठापक आचार्य विष्णु स्वामी है। वृन्दावन की पुण्य भूमि में पनपने वाला दूसरा वैष्णव सम्प्रदाय है। श्रीमद्वल्लभाचार्य ने इसे गौरव के शिखर पर पहुँचाया था। इनका दार्शनिक सिद्धान्त 'शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद' है। आचार्य वल्लभ का शुद्धाद्वैती सम्प्रदाय जिसने उत्तरप्रदेश, राजस्थान तथा गुजरात प्रान्त को कृष्ण भक्ति की पावनधारा से आव्यायित तथा आप्लावित कर दिया था। इसे वल्लभ सम्प्रदाय या पुष्टिमार्ग के नाम से भी जाना जाता है। इस मत के अनुयायी 'पुष्टिमार्गीय' वैष्णव कहलाते हैं। नाथद्वारा में विराजित श्रीनाथ जी पुष्टिमार्ग के सर्वस्व है।

पुष्टिमार्ग भगवत्कृपा का मार्ग है। पुष्टिमार्गीय वैष्णव का विश्वास है कि भगवत्कृपा से ही जीव में भक्ति का उदय होता है तथा उसे भगवत्सेवा सौभाग्य प्राप्त होता है। प्रभु की भक्ति परम प्रेम से होती है। श्रीकृष्ण की भक्ति फलात्मिका है और प्रभु स्वयं ही फल देते है। उनकी कृपा जीव की कृतार्थता है। यह वैष्णव जीवन की सबसे बड़ी साध है - यही वैष्णव जीवन का लक्ष्य हैं।

अन्य वैष्णव सम्प्रदाय

हितहरिवंशजी - राधावल्लभीय सम्प्रदाय को कुछ लोग निम्बार्क मत की वृंदावनी शाखा मानते है और कुछ लोग चैतन्य मत का, वस्तुतः यह एक स्वतंत्र वैष्णव सम्प्रदाय है जो ठेठ ब्रजमण्डल में ही उत्पन्न हुआ और यही खूब फूला-फला। सम्प्रदाय की साधना-पद्धति इसे एक स्वतंत्र वैष्णव सम्प्रदाय मानने के लिए बाध्य करती है। इस सम्प्रदाय को जन्म देने वाले महत्मा श्री हितहरिवंश जी थे जो वैष्णवमतानुसार श्रीकृष्णचन्द्र की मुरली के अवतार माने जाते हैं। उनकी कविता इतनी सरस तथा स्निग्ध है कि आश्चर्य नहीं भक्तों के कर्णकुहरों में वंशीनिनाद के समान ही सुधा रस बरसाती है।[26]

असम का वैष्णव मत - मध्ययुग में वृन्दावन से कृष्णभक्ति को सरिता इतने प्रवाह से बहने लगी कि उसमें उत्तरी भारत के किसी भी प्रान्त को अछूता नहीं छोड़ा। भारत का सबसे पूर्वी प्रान्त भी इस वैष्णवता के प्रचुर प्रभाव से बच नहीं सका। असम प्रान्तीय वैष्णव प्रचारकों के अदम्य उत्साह, अश्रांत परिश्रय तथा अमिट लगन का ही यह परिणाम है कि आज यहाँ की 98 प्रतिशत जनता वैष्णव धर्म में दीक्षित है तथा भगवान् कृष्ण को अपना उपास्य देव मानती है। इस विपुल परिवर्तन का श्रेय है असम के वैष्णवाग्रणी शंकरदेव तथा उनके प्रिय शिष्य माधवदेव को। इसी वैष्णव युगल की मनोरम कीर्ति-कौमुदी असम प्रान्त के साहित्य के ऊपर तथा तद्देशीय जनता की कोमल

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मनोवृत्ति, अहिंसामय आचरण तथा उदात्त धर्म भावना के ऊपर सदा के लिए अंकित है।[27]

वैष्णव धर्म की विशिष्टता - भारतवर्ष की साधना-प्रणाली में वैष्णव धर्म की एक अपनी विशिष्टता है। साधना ही किसी धार्मिक सम्प्रदाय का मेरूदण्ड है। वैष्णव धर्म की मूल तात्विक भावना की मीमांसा उसने वैशिष्ट्य के अनुशीलन के लिए नितान्त आवश्यक है। उपास्य देवता की विभिन्नता को किसी सम्प्रदाय-विशेष की भिन्नता का कारण मानना वस्तुतः न्यायसंगत नहीं है। शिव को उपास्यदेव मानने के कारण ही कोई सम्प्रदाय 'शैव' माना जाये तथा विष्णु को उपास्य देव मानने से कोई सम्प्रदाय 'वैष्णव' समझा जाये यह पार्थक्य का पूर्ण तथा समुक्तिक हेतु नहीं हैं। उनके तत्त्वविषयक सिद्धान्त की विषमता ही उनके पार्थक्य को सबल हेतु माना जाना चाहिए।

वैष्णव सम्प्रदायों में कतिपय सिद्धान्तों को लेकर परस्पर में मतभेद तथा वैषम्य अवश्यमेव वर्तमान है, तथापि कतिपय ऐसे तथ्य है जिनमें वैष्णवमात्र चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय का अनुयायी हो, समभावेन श्रद्धा रखता है और उनकी सत्यता में पूर्ण विश्वास रखता है।

सन्दर्भ

1. पुराण तत्व विमर्श-पं. थानेशचन्द्रउप्रैति, पृ.3
2. पुराण विमर्श , बलदेव उपाध्याय, पृ. 3-4
3. पुराण विमर्श, बलदेव उपाध्याय, पृ.75
4. मत्स्यपुराण, अध्याय 53
5. पद्यपुराण, उत्तरखण्ड, 163/81-84
6. निरूक्त, 3/19/24
7. अमरकोश, 1/6/5
8. पुराण दिग्दर्शन , पं. माधवाचार्य शास्त्री, पृ.52
9. मत्स्यपुराण, 53/13-14
10. पुराण दिग्दर्शन, पं. माधवाचार्य शास्त्री, पृ.77
11. भागवत सम्प्रदाय, बलदेव उपाध्याय, पृ.147
12. मत्स्यपुराण, 53/21-22
13. अष्टादश पुराण दर्पण, ज्वालाप्रसाद मिश्र, पृ. 13
14. पुराण विमर्श, बलदेव उपाध्याय, पृ.145-146
15. पुराण दिग्दर्शन, पं. माधवाचार्य शास्त्री, पृ.59
16. मत्स्यपुराण, 53/52-53
17. जे.एन.बनर्जी पौराणिक और तान्त्रिक रिलिजन कलकत्ता, 1966, पृ.18-19
18. वराहपुराण, 2/1/9

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

19. लिंगपुराण, 2/4/7 (क)
20. गरूडपुराण, 1/2/37
21. नारदपुराण, 4/12
22. पुराण तत्त्व मीमांसा, श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, पृ.172-173
23. भागवत सम्प्रदाय, बलदेव उपाध्याय, पृ. 5
24. भागवत सम्प्रदाय, बलदेव उपाध्याय, पृ. 19
25. भागवत सम्प्रदाय, बलदेव उपाध्याय, पृ. 142
26. भागवत सम्प्रदाय, बलदेव उपाध्याय, पृ. 419
27. भागवत सम्प्रदाय, बलदेव उपाध्याय, पृ. 544

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पुराणों में श्रीमद्भागवत महापुराण का वैशिष्ट्य

घनश्याम उपाध्याय*

प्रस्तावना

किसी भी देश की परम्पराएँ उसकी संस्कृति का निर्माण करती है। यदि हम किसी भी युग विशेष के इतिहास को लेते हैं तो उसमें किन्हीं उपलब्धियों का समावेश मिलता है जो कि उस युग में प्राप्त की गई है। इसके अतिरिक्त जहाँ कुछ उपलब्धियाँ होती है, जिनको प्राप्त करने का प्रयत्न उस युग विशेष समाज करता है। इसके उपरान्त ये दोनों वस्तुएँ वे उपलब्धियाँ एवं आदर्श दूसरी परवर्ती पीढ़ी को उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त होती है, वह दूसरी पीढ़ी उन आकांक्षाओं और आदर्शों को प्राप्त करने का प्रयत्न करती है। इन आदर्शों की प्राप्ति के लिए अतीत की उपलब्धियों से पर्याप्त प्रेरणा मिलती है। इन्हीं दोनों घटकों से उपलब्धि एवं आदर्श एवं आकांक्षाओं से परम्परा का निर्माण होता है। परम्परा में वास्तविकता एवं कल्पना दोनों ही विद्यमान रहती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि किसी भी संस्कृति के इतिहास में प्रत्येक युग में दोनों तत्व विद्यमान रहते हैं।

इतिहास युग विशेष की उपलब्धि है तो पुराण उस युग की आकांक्षा व आदर्श। प्राचीनकाल से लेकर हमें संस्कृत साहित्य में ऐतिहासिक साहित्य अपने स्वतंत्र रूप में कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता है। अतः भारतीय संस्कृति की सच्ची झांकी निश्चित रूप से पुराणों के अतिरिक्त अन्य कोई ग्रन्थ प्रदर्शित नहीं कर सकता।

---

* शोधार्थी, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म०प्र०)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भारतीय परम्परा ज्ञान को सर्वाधिक उत्कृष्ट एवं पवित्र मानकर उसके अर्जन अथवा उपलब्धि के विषय में सतत बद्धादर रही है और कहीं उससे अभिन्न मानते हुए मनीषियों ने आरम्भ से इसे महनीय प्रतिष्ठा दी है। यह ज्ञान, उसका स्वरूप, उसकी ग्राहक सामग्री और ग्रहण प्रक्रिया यद्यपि हमारी पृथक-पृथक दार्शनिक सारणी में आकर विभिन्न रीति से विवृत एवं व्याख्यात होते रहे हैं, तथापि ज्ञान को केवल स्थूल सांसारिक ऐन्द्रियबोध तक ही सीमित रखना किसी भी आस्तिक दर्शन-पद्धति को स्वीकार्य नहीं रहा है प्रायः सभी ने उसे अपनी रीति से अनादि एवं चिन्तन मानने का अभिनिवेश रखा है।

ज्ञान की दो धाराएँ सामान्य रूप से स्वीकृत है प्रथम श्रुतिधारा तथा द्वितीय स्मृतिधारा। श्रुतिधारा एवं स्मृतिधारा ये दोनों मिलकर ही परम्परा के दो नेत्र माने गए हैं। आपातः श्रुति शब्द से समग्र वेद राशि तथा स्मृति शब्द से इतिहास पुराण आदि प्रबन्धों को ग्रहण किया जाता है, अतः पुराण स्मृति धारा के अन्तर्गत आते हैं और इन्हीं पुराणों में महापुराण की उपाधि से मण्डित श्रीमद्भगवत साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण का स्वरूप है -

श्रीभागवतरूपं तत् पूजयेद् भक्तिपूर्वकम्।
अर्चकायाखिलान् कामान् प्रयच्छति न संशयः ॥

यह श्रीमद्भागवत वेदरूप कल्पवृक्ष का पका हुआ फल है। अठारह पुराणों में भागवत सर्वश्रेष्ठ पुराण है। यह धर्म का आधार स्तम्भ है। श्रीमद्भागवत संस्कृत साहित्य का अनुपम रत्न है भक्ति शास्त्र का तो यह अनुपम रत्न है।

पुराण परिचय

पुराण की व्युत्पत्ति पाणिनि, यास्क तथा स्वयं पुराणों ने भी दी है। 'पुराभवम्' (प्राचीनकाल में होने वाला) इस अर्थ में सायंचिरं प्रोह्मेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युटयुलौ तुट् च[1] इस सूत्र से 'पुरा' शब्द से 'ट्यु' प्रत्यय करने तथा 'तुट' के आगमन होने पर 'पुरातन' शब्द निष्पन्न होता है, परन्तु स्वयं पाणिनि ने ही अपने दो सूत्रों - 'पूर्वकालैक सर्व जरत पुराणनव केवलाः समानाधिकरणेन'[2] तथा 'पुराणत्रोन्तेषु ब्राह्मण कल्पेषु'[3] में पुराण शब्द का प्रयोग किया गया है, जिससे तुडागम का अभाव निषातनात सिद्ध होता है। यास्क के अनुसार 'पुराभवं भवति'[4] अर्थात् जो प्राचीन होकर भी नया है। वायुपुराण के अनुसार 'पुराअनति' अर्थात् प्राचीनकाल में जो जीवित था। पद्मपुराण[5] 'पुरा परम्परा वष्टि कामयते' अर्थात् जो प्राचीनता अर्थात् परम्परा की कामना करता ही ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार 'पुरा एतत् अभूत'[6] अर्थात् प्राचीनकाल में ऐसा हुआ ।

इन समग्र व्युत्पत्तियों की मीमांसा करने से स्पष्ट होता है कि 'पुराण' का वर्ण्य

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

विषय प्राचीनकाल से सम्बद्ध था। प्राचीन ग्रन्थों में पुराण का सम्बन्ध 'इतिहास' से इतना घनिष्ठ है कि दोनों सम्मिलित रूप से 'इतिहासपुराण' नाम से अनेक स्थानों पर उल्लखित हुए हैं।

पुराण संख्या

(1) ब्रह्मपुराण (2) पद्मपुराण (3) विष्णुपुराण (4) वायुपुराण (5) भागवतपुराण (6) नारदपुराण (7) मार्कण्डेयपुराण (8) अग्निपुराण (9) भविष्यपुराण (10) ब्रह्मवैवर्तपुराण (11) लिंगपुराण (12) वाराहपुराण (13) स्कन्धपुराण (14) वामनपुराण (15) कूर्मपुराण (16) मत्स्यपुराण (17) गरूड़पुराण (18) ब्रह्माण्डपुराण[7]

इस प्रकार पुराणों की संख्या अष्टादश है। सभी पुराणों में प्रायः एक ही जैसे विषयों का तत्पुराण के प्रधान प्रतिपाद्य के साथ हुआ है। पुराणों का मुख्य विषय अपने सम्प्रदाय का वर्णन ही प्रतीत होता है जैसा कि उनके नाम से ही भासित होता हैं सम्प्रदाय-साहित्य होने के कारण इसमें परिवर्द्धन-परिवर्तन दिखाई देते हैं। इतना सब कुछ होते हुए भी ये एकान्ततः संकीर्ण या अनुदार नहीं है क्योंकि प्रत्येक पुराण में अपने प्रतिपाद्य स्वरूप (भगवान्) और विषय के समक्ष अन्य देवों और विषयों की अवहेलना नहीं की गई है और सबकी चर्चा सब पुराणों में प्राप्त होती है।

पुराणों में श्रीमद्भागवत पुराण

श्रीमद्भागवत अपने अभिधान की अन्वर्थकता के प्रति जागरूक सरस दांर्शनिक पुराण है। अतएव पारम्परिक दृष्टि से इसका स्वरूप निर्धारण करने में इसकी आत्मसाक्ष का आश्रय लेना समीचीन होगा। भगवान् वेदव्यास के द्वारा द्वादशस्कन्धात्मक ग्रन्थरूपता के पूर्व इसकी भगवत्प्रोन्तज्ञानरूपता और तदनन्तर 'नित्यपुराण विद्यारूपता' दृष्टिगोचर होती है। 'भागवत' शब्द वस्तुतः भगवततत्व रूप ज्ञान के भगवदुपदिष्ट स्वरूप का उपलक्षक है अतएव -

वदन्ति ततत्त्वं विदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ।।[8]

मूलभागवत तो श्रुत्यन्त सारसर्वस्व तत्त्व या अद्वयज्ञान ही है और इस स्वरूप में वह 'ब्रह्म', 'परमात्मा', या 'भगवान्' से भिन्न नहीं है। श्रीमद्भागवत ने एक साथ ही दर्शन, साहित्य, संस्कृति तथा कला के अनेक क्षेत्रों को युगों तक प्रवाहित किया। भारतीय इतिहास की धूमिल मध्ययुगीन पृष्ठों को जिनमें एक ओर तो विदेशी विधर्मी आक्रान्ताओं द्वारा उत्पीड़न और विप्लव की करुण-कथा को रक्तरंजित खड्गों और अश्वों की टापों से लिखा गया था तो दूसरी ओर स्वयं भारतीय जनता ने ही अवसाद, नैराश्य और किंकर्त्तव्यविमूढ़ता की वक्रलिपि अंकित कर दी थी। भगवान् विष्णु के

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

लोकमंगल विधायक- लीलाचरित्रों को अपने अन्वाख्यानात्मक अनुवर्ती साहित्य के माध्यम से लोक जीवन में सम्प्रेषित कर पुनः भास्वर प्रदान कर देने का कार्य श्रीमद्भगवतपुराण में किया है।

पूर्व वर्णनानुसार पुराणों के पाँच लक्षण होते हैं, किन्तु श्रीमद्भागवत में लक्षणों का दोगुनापन उसकी महापुराणता को सिद्ध करता है।

अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः ।

मन्वन्तरेशानुकथा निरोधाो मूक्तिकाश्रयः॥[9]

यह दक्षलाक्षणिक ग्रन्थ निगम कल्पतरु का स्वयं गलित अमृतमय फल है। भागवत भूमिका में श्री वियोगी हरि कहते हैं कि -

धानंजये हाटकपरिक्षा, महारणे शस्त्रभृतां परिक्षा।

विपत्तिकाले गृहीणी परिक्षा, विद्यावतां भागवते परिक्षा॥

विद्वानों की चूडान्त विद्या की परीक्षा श्रीमद्भागवत महापुराण द्वारा हुआ करती है। केवल विद्वानों की नहीं, बल्कि कहना उचित होगा कि बड़े-बड़े तत्वज्ञानियों परमार्थमार्गियों एवं रस भक्तों की भी परीक्षा भागवत से होती है।

यह पुराण साहित्य की अमूल्य निधि श्रीमद्भागवत वेद भी है, पुराण भी है और काव्य भी है। वेद होने के कारण प्रभुसमान आज्ञा देता है। पुराण होने के कारण मित्रवत् व्यवहार करता है और काव्य होने के कारण प्रिया के समान मुग्ध कर देता है।

अतः महापुराण की उपाधि से विभूषित यह कमनीय कलश सभी पुराणों में श्रेष्ठ पुराण है - सर्वेषां च पुराणानां श्रेष्ठ भागवतं स्मृतम्।'[11]

अन्य पुराणों से महानता दर्शाते हुए कहा है -

राजन्ते तावदन्यानि पुराणानि सतां गणे ।

यावन्न दृश्यते साक्षाच्छीमद्भागवतं परम् ॥[12]

अर्थात् सन्तों की सभा में तभी तक दूसरे पुराण की शोभा होती है जब तक स्वयं श्रीमद्भागवत महापुराण के दर्शन नहीं होते हैं। यह श्रीमद्भागवत समस्त उपनिषदों का सार है

अतः कहा गया है कि -

निम्मगानां यथा गंगा वेदानामुच्यतो यथा।

वैष्णवानां यथा शम्भुः पुराणामिदं तथा॥

क्षेत्राणां चैव सवेषां यथा काशी ह्यनुत्तमा।

तथा पुराणाव्रतानां श्रीमद्भागवतं द्विजः॥[13]

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

जिस प्रकार नदियों में गंगा, देवताओं में भगवान् विष्णु, वैष्णवों में शंकर श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार पुराणों में सर्वश्रेष्ठ श्रीमद्भागवत महापुराण है।

पुराणों में श्रीमद्भागवत का महापुराणत्व

श्रीमद्भागवतं शास्त्रं यत्र भागवतैर्यदा।
कीर्त्यते श्रुयते चापि श्रीकृष्णस्तत्र निश्चितम् ।।

स्कन्दपुराण, वैष्णवखण्ड, भागवत महात्म्य

वेदापनिषदां साराज्जाता भागवती कथा।
अत्युत्तमा ततो भाति पृथग्भूता ?ला कृतिः।।

पद्मपुराण 2/67

श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम् ।
तदष्टादशसाहसं कीर्त्तितं पापनाशनम् ।।

नारदपुराण 96/1

यत्राधिकृत्ये गायत्रीं कीर्त्यते धार्मविस्तरः ।
वृत्रासुरवधोपेत तद् भागवतमुच्यते ।।

अग्निपुराण 272/6

यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्णयते धार्मविस्तरः।
वृत्तासुरवधोपेत तद् भागवतमुच्यते ।।

मत्स्यपुराण 53/20

उपसंहार

श्रीमद्भागवत भारतीय वाङ्मय का विश्वकोश है। यह पुराण साहित्य में कूटस्थ है, इसीलिए यह ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में महार्घ महापुराण के रूप में सर्वस्वीकृत है। वेदव्यास ने हादिनी शक्ति सम्पन्न इस महापुराण की रचना कर अपनी मन्त्र सिद्ध लेखनी को सार्थक तथा तपःपूत सारस्वत जीवन को कृतार्थ माना था। इसमें भारतीय दर्शन, चिन्तन और जीवन अर्थात् महापुराण भारतीय जीवन का प्रतिनिधि ग्रन्थ है।

बड़े-बड़े व्याकरण, साहित्यशास्त्री, कवि और दार्शनिक इस ग्रन्थ का निरन्तर गहन आवगान करते रहते हैं, फिर भी यह अतल स्पर्श ही बना रहता है। इस प्रकार यह एक वैष्णव संस्कृति और साधना का ज्ञान गूढ़ ग्रन्थ है तो दूसरी ओर सौन्दर्य चेतना का महाकोश एवं मधुर रस का अपार सिन्धु है। इस ग्रन्थ के महात्म्य की अवतारणा के क्रम में महर्षि व्यास ने लिखा है -

निगम कल्पतरोर्गलितं फलं
शुक्रमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पिबत भागवतं रसमालयं

मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः॥[13]

रस के मर्मज्ञ भक्तजन् ! यह श्रीमद्भागवत वेद रूप कल्पवृक्ष का पका हुआ फल है। श्री शुकदेव रूप तोते के मुख का सम्बन्ध हो जाने से यह परमानन्दमयी सुधा से परिपूर्ण हो गया है। इस फल में त्याज्य तनिक भी नहीं है। यह मूर्तिमान रस है। जब तक शरीर में चेतना रहे, तब तक इस दिव्य भगवद् रस का निरन्तर बार-बार पान करते रहो। यह पृथ्वी पर ही सुलभ है।

कहना न होगा कि यह महापुराण भवतापदग्ध मानव जीवन के लिए अमृतरसमय शीतल विलेपन का काम करता है। यहाँ तक कि संयत चित्त से इस ग्रन्थ का अध्ययन-मनन करने से आत्मदर्शन है और आत्मदर्शन होने से अखिल ब्रह्माण्ड का रहस्य प्रत्यक्ष हो जाता है। जिस पुराण ग्रन्थ की ऐसी अमोघ शक्ति है, उसका अनुशीलन और रहस्योद्घाटन भगनिष्ट हुए बिना कदापि सम्भव नहीं है।

सन्दर्भ

1. पाणिनिसूत्र 4/3/23
2. पाणिनिसूत्र 2/1/49
3. पाणिनिसूत्र 4/3/105
4. निरुक्त (यास्क)
5. वायुपुराण 1/20/3
6. पद्मपुराण 5/2/53
7. नारद्पुराण 92/1/3
8. श्रीमद्भागवत 1/2/11
9. भा, 2/10/1
10. विष्णु पु. 3/28/15
11. भागवत 12/13/14
12. भागवत 12/13/16-17
13. भागवत, 1/1/3

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

नीलमत पुराण तथा शैव धर्म

जॉन मोहम्मद पॉल*

कल्हण के अनुसार 'राजतरगिणी' की रचना करते समय नीलमत पुराण से पूर्व युगों की सूचना मिली थी।[1] नीलमत पुराण की तिथि अस्पष्ट है।

कल्हण के उद्धरण से इसको हम कर्कोटा वंश से पूर्व रख सकते हैं। इसमें बुद्ध को विष्णु के एक अवतार के रूप में माना गया है, इस कारण इस पुराण की तिथि 7वीं शताब्दी ई. से बहुत पूर्व नहीं रखी जा सकती है।[2] ब्यूलर के अनुसार काश्मीर के धार्मिक स्थलों तथा उनकी कथाओं का विशद् वर्णन इसमें है। अतः इसका बहुत महत्व हो जाता है। यह ग्रन्थ कांजीलाल तथा ज़ाडू द्वारा 1924 में सर्वप्रथम प्रकाशित हुआ था।

आर.जी.भण्डारकर ने नीलमत को महात्म्य के रूप में माना है। उन्होंने इसको काश्मीर महात्म्य के रूप में एक ही ग्रन्थ में वर्णित किया है।[3] परन्तु डॉ. वेद कुमारी के अनुसार यह एक उप पुराण ही है। इसका सदृश्य नागर खण्ड तथा दूसरे महात्म्यों से है, जो पुराणों के ही भाग की भाँति है। अतः इसे हम उप पुराण कह सकते हैं।[4] सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि 'राजतरंगिणी' में इसे पुराण कहा गया है महात्म्य नहीं।[5] अतः डॉ. वेद कुमारी के अनुसार जब 700 वर्षों पूर्व से इसे पुराण माना गया है इसलिये इसे पुराण की संज्ञा दे सकते हैं।[6]

नीलमत पुराण में विस्तार से काश्मीर के उद्‌भव की कथा है कि उसका जल से कैसे उद्‌भव हुआ तथा वह नागों के संरक्षण में आया, जिसमें नील उनका मुखिया था। इसमें देवता तथा उनके अनुष्ठान आदि का वर्णन है। इसमें नाग पूजा, वैष्णवधर्म, शैव धर्म, बौद्ध धर्म के वर्णन के साथ-साथ अनेक उत्सवों तथा त्योहारों का भी वर्णन है।

---

* पीएच.डी. रिसर्च स्कॉलर

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

नीलमत पुराण के शैव धर्म के कुछ पक्ष यहाँ रखे जा रहे हैं। इसके अनुसार काश्मीर पहले एक सरोवर था जिसको सतीदेश कहते थे, जो पार्वती के नाम पर था। शिव के ही द्वारा जलोद्भव दैत्य का अन्त कर कश्यप ऋषि आदि को यहाँ पुनःस्थापित किया गया। यह भी कहा गया है कि विष्णु द्वारा शम्भू तथा पार्वती के मंदिर स्थापित किये गये।[7]

नीलमत पुराण में शिव को सर्जक, पालक तथा संहारक कहा गया है। इसमें वैदिक रूद्र के सम्पूर्ण लक्षण दिखते हैं। शिव के इसमें नाम रूद्र, शर्व, महादेव और भव कहा गया है।[8] इसके अतिरिक्त हर, ईश्वर, शम्भू, शंकर, शिव, विरुपाक्ष, भीम, भूषण्ड, कृथ, कृथन, शीघ्र, महांश, समुद्र, महानांदिश्वर आदि भी है। कही उनका वर्णन मुण्डमाल तथा सर्पयज्ञोपवीत लिये हुए हैं, कहीं जटाजूट के ऊपर अर्द्धचन्द्र शोभित हुए हैं। उनको धर्म के प्रतिनिधि नन्दी पर आरूढ़ कहा गया है तथा उर्ध्वलिंग भी कहा गया है।[9] इनका अर्द्धनारीश्वर रूप भी बतलाया गया है। गंगावतरण, त्रिपुर दहन, अंधकासूर वध, कामदेव का दहन आदि सभी प्रसंग इसमें हमको मिलते हैं। इसमें उमा का भी विस्तार से वर्णन है। इसी प्रकार गणेश, स्कन्ध, शाख, विशाख तथा नैगमेश का भी वर्णन है।

नीलमत पुराण में शैवधर्म के वर्णन से यह प्रतीत होता है कि उसमें शैव धर्म का एक समग्र रूप है। इसमें साम्प्रदायिक विविधता नहीं दिखाई देती है। यद्यपि काश्मीर में नवीं शताब्दी ई. से पूर्व पाशुपत सम्प्रदाय लोकप्रिय था और नवीं शताब्दी से त्रिक शैवदर्शन का प्रारम्भ हुआ। परन्तु नीलमत पुराण में शैवधर्म का हम एक समग्र रूप ही देख सकते हैं, जो सभी सम्प्रदायों में माना गया है।

संदर्भ

1. राजतरंगिणी प्रथम, पृ. 14
2. ब्युलर, रिपोर्ट ऑफ ए टूर इन सर्च ऑफ संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट मेड इन काश्मीर, जे.बी.बी.आर.ए.एस.,1987, पृ.141
3. आर.जी. भण्डारकर, रिपोर्ट ऑफ द इयर, 1983-84, पृ. 44
4. वेद कुमारी, द नीलमत पुराण, जिल्द 1, श्रीनगर, 1968 पृ. 2
5. राजतरंगिणी प्रथम, पृ. 178,183
6. वेद कुमारी, द नीलमत पुराण, जिल्द 1, श्रीनगर, 1968 पृ. 5
7. वही, 158-160
8. वेद कुमारी, द नीलमत पुराण, जिल्द 2, श्रीनगर, श्लोक 1091
9. वेद कुमारी, द नीलमत पुराण, जिल्द 2, श्रीनगर, श्लोक 261

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

विष्णु पुराण में अतिप्राकृत तत्व

प्रीति वर्मा

पुराण भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के श्रेष्ठ अंग है। इनमें सृष्टि के आदिकाल का इतिहास उपनिबद्ध है तथा महत्वपूर्ण राजवंशों की वंशावलियों द्वारा क्रमबद्ध ऐतिहासिकता का बोध होता है। पुराण ही पुराकथाओं के आदिम स्त्रोत है। इनमें अगाध ज्ञानराशि यत्र-तत्र बिखरी पड़ी है। वस्तुतः ये एक प्रकार के अद्भुत ज्ञान समुद्र है।

पुराण वैदिक साहित्य के उपरान्त महती ज्ञानराशि के रूप में हमें उपलब्ध होते है। 'पुराण' का शाब्दिक अर्थ हैं - पुरातन। इसमें यह लक्षित होता है कि इस साहित्य में पर्याप्त प्राचीनता है, तथादि निरूक्तकार यास्क **''पुरा नंव भवति''** के अनुसार ये प्राचीन होकर भी नूतन है। तात्पर्य यह है कि पुराणों की विषयावस्तु पुरातन अवश्य है किन्तु जन सामान्य के लिए अब तक अज्ञात होने के कारण वह नवीन प्रतीत होता है। भारतीय संस्कृत वाड़मय में पुराणों की संख्या अठारह है तथा इन अष्टादश महापुराणों में कई अलौकित, अतिप्राकृत घटनाओं का वर्णन किया गया है। जिनसे यह रमणीयता प्रदान करने वाले होते है। अष्टादश पुराणों के नाम इस प्रकार है-

1. मत्स्यपुराण
2. मार्कण्डेयपुराण
3. भावगतपुराण
4. भविष्यपुराण
5. ब्रह्मपुराण

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

6. ब्रह्माण्डपुराण
7. ब्रह्मवैवर्तपुराण
8. विष्णुपुराण
9. वायुपुराण
10. वामनपुराण
11. वराहपुराण
12. अग्निपुराण
13. नारदपुराण
14. पद्मपुराण
15. कूर्मपुराण
16. कूर्मपुराण
17. स्कन्दपुराण
18. लिङ्गपुराण

इन महापुराणों में कई प्रकार की पूरा कथाओं का वर्णन किया गया है। अलग-अलग पुराणों में भिन्न-भिन्न देवताओं का वर्णन किया गया है तथा कई गौण देवता की कथाओं का वर्णन भी किया गया है।

अष्टादश महापुराणों में श्री विष्णुपुराण का स्थान बहुत ऊँचा है। इसके रचयिता श्री पराशरजी है। इसमें अन्य विषयों के साथ भूगोल, ज्योतिष, कर्मकाण्ड, राजवंश और श्रीकृष्ण-चरित्र आदि कई प्रसंगों का बड़ा ही अनूठा और विशद वर्णन किया गया है। भक्ति और ज्ञान की प्रशान्त धारा तो इसमें सर्वत्र ही प्रछन्न रूप से बह रही है। विष्णु पुराण में कई ऐसी अतिप्राकृत घटनाओं का वर्णन किया है। जिससे यह सभी पुराणों से अधिक चमत्कृत और रमणीयता प्रदान करने वाला है। विष्णु पुराण के कुछ अंशों से हमने श्लोक लिये है जिनमें हमने अतिप्राकृत घटनाओं का यहाँ उल्लेख किया है।

अविकारय शुद्धय नित्याय परमात्मने।
सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे।।
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शंकराय च।
वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकारिणे स्त्र

विपु. (1/2/1.2)

जो ब्रह्मा, विष्णु और शंकररूप से जगत की उत्पत्ति, स्थिति और संहार के कारण है तथा अपने भक्तों को संसार - सागर से तारने वाले है, उन विकार-रहित, शुद्ध

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अविनाशी, परमात्मा, सर्वदा एकरूप, सर्वविजयी भगवान् वासुदेव संज्ञक विष्णु को नमस्कार है।

यहाँ इस श्लोक में चौबीस तत्वों के विचार के साथ जगत् की उत्पत्ति क्रम का वर्णन कर विष्णु की महिमा को बताया गया है, जो कि अतिप्राकृत, अलौकिक तत्वों से निर्मित हैं

भगवान वराह द्वारा पृथिवी का उद्धार करना यह एक अतिप्राकृत घटना है जिसमें कि भगवान वराह का रूप धारण कर जिस प्रकार से पृथिवी को जलमग्न होने से बचाते है।

एवं संस्तूयमानस्तु परमात्मा महोधरः ।
उज्जहारं क्षितिं क्षिप्रं न्यस्तवांश्च महाम्भसि स्त्र

वि.पु. (1/4/45)

इस प्रकार स्तुति किये जाने पर पृथिवी को धारण करने वाले परमात्मा वराह जी ने उसे शीघ्र ही उठाकर अपार जल के ऊपर स्थापित कर दिया।

ततो भगवता तस्य रक्षार्थ चक्रमुत्तमम्।
आजगाम समाज्ञप्तं ज्वालामालि सुदर्शनम् स्त्र
तेन मायासहस्त्रं तच्छम्बरस्याशुगामिना ।
बालस्य रक्षता देहमेकैकं च विशोधितम् स्त्र

वि.पु. (1/9/19.20)

यहाँ पर वह अतिप्राकृत घटना है जिसमें कि उस समय भगवान की आज्ञा से उनकी रक्षा के लिये वहाँ ज्वाला-मालाओं से युक्त सुदर्शनचक्र आ गया। उस शीघ्रगामी सुदर्शनचक्र ने उस बालक (प्रहलाद) की रक्षा करते हुए शम्बरासुर की सहस्त्रों मायाओं को एक-एक करके नष्ट कर दिया। प्रहलाद की रक्षा करने के लिए भगवान विष्णु ने अपने सुदर्शनचक्र को भेजा यह एक अतिप्राकृत घटना है जिसमें कि चक्र द्वारा जीवन रक्षा की जा रही है। विष्णु की महिमा का वर्णन किया है।

विष्णु पुराण के द्वितीय अंश में भी कई अतिप्राकृत तत्वों के द्वारा ऐसी घटनाओं सामने आयी है जिससे कि इस पुराण को ओर अधिक रोचक बना दिया है।

जम्बूप्लक्षाह्वयौ द्वोपौ शाल्मलश्चापरो द्विज।
कुशः कौचचस्तथा शाकः पुष्करश्चैव सप्तमः ॥

वि.पु. (2/2/5)

एते द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृताः।
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधि दुग्ध जलैः समम् ॥

वि.पु. (2/2/6)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

हे द्वीज! जम्बूल्पक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौंच, शाक और सातवाँ पुष्पकर - ये सातों द्वीप चारों और से खारे पानी, इक्षुरस, मदिरा घृत, दुग्ध और मीठे जल के सात समुद्रों से घिरे हुए हैं।

विष्णु पुराण में कई अध्यायों में ऐसी कई अतिप्राकृत घटनायें है जो रोमांच से भरी हुई है जो कि हमें और भी अधिक चमत्कृत करती है।

सूर्य के अतिप्राकृत रूप का वर्णन कर शस्त्रों का निर्माण देवताओं के लिए किया गया। यहाँ सूर्य ने भी अश्वरूप होकर उससे दो अश्विनी कुमार ओर रेतः स्त्राव के अनन्तर ही रेवन्त को उत्पन्न किया। यह अलौकिक, अतिप्राकृतिक घटना है जिसमें कि सूर्य का अविर्भाव प्रकट किया है।

सिन्धवो निजशब्देन वाद्यं चकुर्मनोहरम्।
जगुर्गन्धावंपयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः स्त्र
ससृजुः पुष्पवर्षाणि देवा भुव्यन्तरिक्षगाः।
जज्वलुश्चाग्नयश्शान्ता जायमाने जनार्दने स्त्र

वि.पु. (5/3/5.6)

यहाँ पर भगवान का आविर्भाव किया गया है। समुद्रगण अपने घोष से मनोहर बाजे बजाने लगे गन्धर्वराज गान करने लगे और अप्सराएँ नाचने लगी। श्री जनार्दन के प्रकट होने पर आकाशगामी देवगण पृथिवी पर पुष्प बरसाने लगे तथा शान्त हुए यज्ञाग्नि फिर प्रज्वलित हो गये।

विष्णु पुराण में भिन्न-भिन्न राजवंशों, राजाओं, भूगोल, ज्योतिष कृष्ण चरित्र आदि कई प्रसंगों का उल्लेख किया गया है जो कि अतिप्राकृतिक घटनाओं के द्वारा रमणीयता को प्राप्त करते है।

ऐसी अद्भुत घटनाओं के द्वारा इस महापुराण में भगवान विष्णु की अलग-अलग रूप में स्तुति की गयी है और कई भक्तों के जीवन की रक्षा की गयी है भगवान के भिन्न-भिन्न अवतार ही अद्भुत है जो अतिप्राकृत घटनाओं को जन्म देते है विष्णु पुराण में अतिप्राकृत तत्वों का समावेश निश्चित रूप से है। जिससे और अधिक रमणीयता, चमत्कारिता प्रदान करने वाला है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पुराणों में तीर्थों की अवधारणा

डॉ० ममता सिंह

विश्व के प्रायः सभी धर्मों में किसी न किसी स्थान विशेष की यात्रा का प्रावधान है यथा इस्लाम में हजयात्र उनके पॉच व्यवहारिक धार्मिक कर्तव्यों में से एक है।[1] बौद्धों के चार तीर्थ स्थल है - लुम्बिनी, बोधगया, सारनाथ एवं कुशीनारा।[2] ईसाइयों के लिए जेरूसलेम सर्वोच्च पवित्र स्थल कहा गया है[3] किन्तु इतने सारे स्थानों का इतने विधि-विधान से यात्रा करने का प्रावधान हिन्दू धर्म की विशेषता है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो तीर्थयात्रा करने की परम्परा का सर्वप्रथम उल्लेख विष्णु स्मृति में हुआ है जो तीसरी शताब्दी ईसवीं की रचना मानी जाती है। इसके बाद के प्रायः सभी पुराणों में अपने अनुवर्ती पुराणों से अधिक संख्या में तीर्थों का उल्लेख हुआ है। जिन स्थानों को तीर्थ घोषित किया गया उनमें नदी तट, पर्वत घाटियाँ, जंगल में स्थित ऋषि मुनियों के आश्रम महत्वपूर्ण नगर आदि सभी सम्मिलित हैं। किसी स्थान विशेष को कभी किसी देवता ने तीर्थ घोषित किया तो कभी किसी देवभक्त ने तीर्थ स्थलों पर दान पुण्य का विशेष महत्व बताया गया ।[4] तीर्थ स्थान पर दान करने पर पुण्य कई गुना बढ़ जाते हैं। इस अवधारणा पर विशेष बल दिया गया।[5] इस भावना को जनमानस में प्रचारित करने के लिए अनेक पौराणिक कथाएँ लिखी गई। साथ ही जनमानस में अनेक दृष्टान्त प्रस्तुत किये गये। आज भी प्रयाग के पण्डित हर्ष का उदाहरण दिये बिना नहीं रहते। पुराणों में इस बात उल्लेख हुआ है कि तीर्थो में श्राद्ध, पिण्डदान, व्रत होम एवं जप तथा तपस्या करने पर उसका विशेष फल अवश्य प्राप्त होगा। इन कर्मों में भी सबसे अधिक फलदायी एवं बार-बार किये जाने वाला कर्म श्राद्ध और पिण्डदान मान गए। परिवार के

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

किसी भी सदस्य की मृत्यु हो जाने पर श्राद्ध एवं पिण्डदान आवश्यक बताया गया। व्रत एवं होम का सम्बन्ध दान-पुण्य से जोड़ दिया गया। व्रत को मनुष्य की कठिन ही नहीं असम्भव सी मनोकामनाओं की भी पूर्ति का कारक बताया गया।

पुराणों में वैदिक देवताओं में से विष्णु एवं शिव को विशेष महत्व प्राप्त हुआ। ये दोनों देवता वैदिक युग में सोमयाग से वंचित रखे गये जो संयोग की बात नहीं थी। वैदिकोत्तर युग में इन्ही देवताओं की भक्ति पर विशेष बल दिया गया। वहीं इन देव को भक्ति बनाने में तीर्थों एवं व्रतों का विशेष योगदान है। बौधायन धर्मसूत्र में जहाँ आर्यावर्त के बाहर के स्थानों को अपवित्र कहा गया है और उनकी यात्रा करने वालों की प्रायश्चित करने का निर्देश दिया गया है। वहीं पुराणों में उनमें से कुछ स्थानों के अवन्ति एवं कलिंग को तीर्थ कहा गया है। ब्रह्मपुराण में सम्पूर्ण भारतवर्ष को ही जम्बूद्वीप का तीर्थ कहा गया है-

जाम्बवे भारतं वर्ष तीर्थ की त्रैलोक्य विश्रुतम्।
कर्मभूमियतः पुत्र तस्मात्तीर्थ तदुच्यते स्त्र ॥

(ब्रह्म पुराण 70/29)

कलिंग में स्थित पुरूषोत्तम क्षेत्र के विषय में कहा गया है - समुद्र जल से सुशोभित परम श्रेष्ठ पुरूषोत्तम तीर्थ का एक बार भी दर्शन करने से तथा ब्रह्मविद्या प्राप्त करने से मुनष्य कभी जन्म-मरण के फन्दे में नहीं फँसता, यह निश्चय ही परम श्रेष्ठ सत्य है। ईश्वर के शाश्वत निवास इस क्षेत्र में जो व्यक्ति एक वर्ष या एक मास रहकर उपासना करता है। उसे जप, हवन और तप से प्राप्त होने वाले सभी फल प्राप्त हो जाते हैं और वह उस परम स्थान को जाता है जहाँ स्वयं योगेश्वर हरि निवास करते हैं।[6]

पुराणों में तीर्थों के महत्व का विस्तृत विवेचन है। स्कन्दपुराण के रेवाखण्ड एवं काशीखण्ड में अनेक तीर्थों का उल्लेख है। महाभारत के वनपर्व में अध्याय 80 से 85 तक पुलस्त्य के द्वारा, अध्याय 86 से 90 तक धौम्य के द्वारा तथा 91 से 156 तक लोमश के द्वारा तीर्थों का वर्णन है। ब्रह्म पुराण में तीर्थो का विस्तृत वर्णन है। अग्नि पुराण के अध्याय 109 में तीर्थों की सूची मिलती है तथा अध्याय 110 में गंगा, प्रयाग, वाराणसी, गया, नर्मदा का पृथक-पृथक वर्णन संक्षेप में हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि तीर्थ पंचक है- गंगा, प्रयाग, वाराणसी नर्मदा तथा गया। ये अति प्राचीन काल से अत्यंत प्रसिद्ध तीर्थ माना गया है। काशी तो शैव एवं वैष्णवों दोनों के लिये महत्वपूर्ण तीर्थ था।

समयक्रम के अनुसार तीर्थों की संस्था में अभिवृद्धि होती गयी। मत्स्यपुराण के अनुसार 35 कोटि तीर्थ है जो आकाश, अन्तरिक्ष एवं पृथ्वी पर स्थित है और वे सभी गंगा में अवस्थित माने जाते हैं।[7] ब्रह्म पुराण के अनुसार तीर्थों एवं पवित्र धार्मिक स्थलों

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

की संख्या इतनी अधिक है कि उन्हें सैकड़ो वर्षों में भी नहीं गिनता जा सकता। इसी प्रकार के उल्लेख महाभारत, नारदीयपुराण, पद्मपुराण एवं वाराहपुराण में भी हुआ है।[8]

ब्रह्मपुराण में तीर्थों को चार कोटियों में बाँटा गया है - देव (देवों द्वारा उत्पन्न), असुर (बलि जैसे असुरों से सम्बन्धित), आर्ष (ऋषियों द्वारा संस्थापित जैसे-प्रभास नर-नारायण) एवं मानुष (अम्बरीष, मन, कंस आदि राजाओं द्वारा निर्मित), जिनमें प्रत्येक पूर्ववर्ती अपने अनुवर्ती से उत्तम है।[9]

पुराणों में तीर्थ विशेष के महत्व का अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि एक ही तीर्थ से व्यक्ति के लोक एवं परलोक की सारी मनोवांछित कामनायें पूर्ण हो जायेगी। काशी, प्रयाग जैसे तीर्थों में जाने के उपरान्त तो अन्य कर्मकाण्डों की आवश्यकता ही नहीं रहती, उदाहरणार्थ पुष्कर में स्नान तथा श्रद्धा पूर्वक देवों एवं पितरों की पूजा करने पर अश्वमेघ यज्ञ की पूजा करने का दस गुना फल प्राप्त हो जाता है।[10] मत्स्य पुराण में नदियों की पवित्रता का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि - सरस्वती का जल तीन दिनों के स्नान से पवित्र करता है, यमुना का सात दिनों में, गंगा का जल तत्क्षण किन्तु नर्मदा का जल केवल दर्शन से पवित्र कर देता है।[11] ब्रह्मपुराण में विंध्य के दक्षिण की छः नदियों और हिमालय से निकली हुई छः नदियों को देवतीर्थों में सबसे अधिक पवित्र कहा गया है। ये नदियाँ हैं - गोदावरी, भीमरथी, तुंगभद्रा, वेणिका, तापी, पयोष्णी, भागीरथी, नर्मदा, यमुना, सरस्वती, विशोका एवं वितस्ता।

तीर्थयात्रा के अधिकार वाले लोगों को पुराणों में विशद विवेचन किया गया है वनपर्व में कहा गया है कि वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शुद्र जो तीर्थों में स्नान करे लेते है, वे पुनः जन्म नही लेते।[12] वहीं यह भी कहा गया है कि जो स्त्री या पुरुष एक बार भी पवित्र पुष्कर में स्नान करता है वह जन्म से किये गये पापों से मुक्त हो जाता है।[13] इससे स्पष्ट हो जाता है कि स्त्रियों को भी तीर्थयात्रा करने का अधिकार था। मत्स्यपुराण में उल्लिखित है कि अनेक प्रकार के वर्णों, विवर्णों, चाण्डालों और भाँति-भाँति के रोगों एवं बढ़े हुए पापों से युक्त व्यक्तियों के लिए अविमुक्त (वाराणसी) सबसे बड़ी औषध है।[14] वामन पुराण में कहा गया है कि सभी आश्रमों के लोग तीर्थ में स्नान कर अपने कुल की सात पीढ़ियों की रक्षा करते हैं, चारों वर्णों के लोग एवं स्त्रियाँ भक्तिपूर्वक स्नान करने से परमोच्च ध्येय का दर्शन करती है।[15] स्पष्ट है कि सभी वर्णों के पुरुषों एव स्त्रियों को तीर्थयात्रा करना श्रेयस्कर माना जाता था।[16]

तीर्थयात्रा के निमित्त प्रस्थान करने वाले व्यक्तियों के लिए पुराणों में कुछ व्यवस्था दी गयी है। वहाँ कहा गया है कि तीर्थयात्रा के इच्छुक व्यक्ति को एक दिन पूर्व

 CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

से ब्रह्मचर्यपूर्वक रहना चाहिए और उपवास करना चाहिए, दूसरे दिन उसे गणेश, देवों और पितरों की पूजा करनी चाहिए और अपनी सामर्थ्यानुसार अच्छे ब्राह्मणों का सम्मान करना चाहिये तथा लौटने पर भी वैसा ही करना चाहिए।[17] वायुपुराण में कहा गया है कि गणेश, ग्रहों एवं नक्षत्रों की पूजा के उपरान्त व्यक्ति को कार्पटी का वेश धारण करना चाहिए, अर्थात् उसे ताम्र की अँगूठी तथा कंगन एवं काषाय रंग के परिधान धारण करना चाहिए।[18]

पद्मपुराण एवं स्कन्दपुराण में तीर्थयात्रा करते समय मुण्डन करवाना अनिवार्य बताया गया है।[19] पुराणों से तीर्थयात्रा की विधि पर भी प्रकाश पड़ता है। मत्स्यपुराण में कहा गया है कि यदि कोई प्रयाग की तीर्थयात्रा बैलगाड़ी में बैठकर करता है तो नरक में गिरता है और उसके पितर तीर्थ पर दिये गये जल-तर्पण को ग्रहण नहीं करते, अतः तीर्थयात्री को वाहन आदि पर नहीं जाना चाहिए।[20] साथ ही पद्मपुराण में यह भी कहा गया है कि यदि कोई व्यक्ति असमर्थता के कारण नर-यान या घोड़ों या खच्चरों से खींचे जाने वाले रथों का प्रयोग करते है तो वे पाप या अपराध के भागी नहीं होते।[21] विष्णुपुराण का कथन है कि यात्रा में जूता पहनकर, वर्षा एवं आतप में छाता का प्रयोग करके, रात में या वन में दण्ड लेकर चलना चाहिए। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में यात्रा की प्रकृति के अनुसार उसका फल बताया गया है। वहाँ कहा गया है कि पैदल तीर्थयात्रा करने से सर्वोच्च तप का फल मिलता है यदि यान पर यात्रा की जाती है तो केवल स्नान का फल मिलता है।[22]

स्मृतियों एवं पुराणों में तीर्थयात्रा फल प्रतिनिधि रुप से प्राप्त करने का प्रावधान किया गया है। अत्रि ने कहा है - वह, जिसके लिए कुश की आकृति तीर्थजल में डुबोयी जाती है, स्वयं जाकर स्नान करने के फल का अष्टभाग पाता है। जो व्यक्ति माता, पिता, मित्र या गुरु को उद्देश्य करके (तीर्थजल में) स्नान करता है, उससे वे लोग द्वादशांश फल पाते है।[23] यह भी कहा गया है कि वह धनवान व्यक्ति जो दूसरे को धन या यान द्वारा तीर्थयात्रा की सुविधा देता है वह तीर्थयात्रा फल का चौथाई भाग पाता है।[24]

इस प्रकार तीर्थाटन की परम्परा, विधान एवं उसके अमोघ फलों का उल्लेख अनेक पुराणों में बार बार किया गया। जहाँ उत्तर वैदिक युग में यज्ञ अति श्रमसाध्य एवं खर्चीले थे। समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग यज्ञ से वंचित हो जाता था। निर्धनों, विधुरों, असहायों, मित्रविहीनों द्वारा उनका सम्पादन सम्भव नहीं था। तीर्थयात्रा का अधिकार समाज के सभी वर्णो-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र सभी को प्राप्त था।[25] यद्यपि ऋग्वेद में जलों, सामान्य रूप से सभी नदियों तथा कुछ प्रसिद्ध नदियों को श्रद्धेय एवं दैविक

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

शक्तियों से सम्पन्न होने के कारण पूजनीय कहा गया है। ऋग्वेद में ही जलों का पुनानाः अर्थात् पवित्र कहा गया है।''[26] तैत्रिरीय संहिता के अनुसार सभी देवता जलों में केन्द्रित हैं। (आपो वै सर्वा देवताः)[27] ऋग्वेद में कहा गया है कि पर्वतो की घाटियाँ एवं नदियों को संगम पवित्र है।[28] वहीं विशाल वन को देवता के रूप में सम्बोधित किया गया है।[29] इसी प्रकार पर्वत को इन्द्र का संयुक्त देवता कहा गया है।[30] इस प्रकार हम देखते हैं कि ऋग्वैदिक काल से ही नदियों, पर्वतों एवं वनों पवित्र घोषित होने लगा था। किन्तु उनका नाम तीर्थयात्रा कि विधान, फल और हर क्षेत्र में उनको सुलभता प्रदान करने का कार्य पुराणों द्वारा किया गया है, जिससे अल्पकाल में ही जनक के प्रिया हो गये। यद्यपि विश्व के प्रायः सभी धर्मों में स्थल विशेष को पवित्र घोषित किया गया है एवं स्थान विशेष पर जाने के निर्देश दिये गये है। किन्तु पुराणों में तीर्थों एवं तीर्थयात्रा का जितना विशेष एवं सुन्दर वर्णन है वैसे अन्यत्र दुर्लभ है।

संदर्भ

1. स. बी. ई. जिल्द 6 भूमिका
2. महापरिनिर्वाण सुत्त 10
3. काणे पाण्डुरंग वामन, धर्मशास्त्र का इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान 1994 काश्यप अर्जुन चौबे द्वारा अनुवादित पृ 129
4. रोमिला थापर दान एण्ड दक्षिणा एज फोर्ज्म ऑब एक्सचेंज, एनशियंट इंडियन सोशली हिस्ट्री दिल्ली 1978 पृ. 116-117
5. प्राचीन भारत में धर्म के सामाजिक आधार पेज 44, रमेन्द्रनाथ नंदी अनुवादक नरेन्द्र व्यास
6. ब्रह्मपुराण, 70/16-17
7. मत्स्य पुराण, 82/26-27
8. महाभारत, वनपर्व 83. 202. 82. 21, नारदीयपुराण उत्तर 63. 53-54, पद्मपुराण 4.89. 16-17 एवं 5.20, 150 वाराहपुराण 159.6-7
9. ब्रह्मपुराण, 70 16-17
10. वन पर्व, 82 26-27
11. मत्स्यपुराण, 186.11
12. वन पर्व, 82/30-31
13. वहीं, 82/33-37
14. मत्स्यपुराण, 184/66-67
15. वामनपुराण, 36/78-79
16. काणे पाण्डुरंग वामन पूर्वोक्त पुस्तक, 130/6-11

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

17. नारदीयपुराण उत्तर, 62/24-25
18. वायुपुराण, 110/2-3
19. पद्यपुराण उत्तर, 237/45
20. मत्स्यपुराण 106.4, कूर्म पुराण 137.4
21. पद्यपुराण 4.19.27
22. विष्णु धर्मोत्तर पुराण 3.273.11-12
23. अत्रि, 50-51
24. पद्य पुराण, 237
25. ऋग्वेद VII 49-1
26. तैत्रिरीय संहिता 11. 6. 8. 3
27. ऋग्वेद VIII 6.28
28. वही X 146.1
29. वही I 132.6
30. सिंह ममता, वैष्णव धर्म का लौकिकीकरण अप्रकाशिति

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पुराण दृष्टि एवं धार्मिक समवाय

डॉ० ओम प्रकाश शर्मा*

भारतीय साहित्य के इतिहास में पुराण-आन्दोलन से बड़ा कोई साहित्यिक आन्दोलन नहीं हुआ। नीमसार (नैमिषारण्य) से प्रारम्भ हुए इस वैचारिक अश्वमेध ने सम्पूर्ण देश को धार्मिक सांस्कृतिक एवं सामाजिक एकता के महासूत्र में सुदृढ़ता से निबद्ध कर दिया। वेदों के दुरूह एवं दुर्बोध हो जाने और उनके वास्तविक अभिप्राय को समझने में जनसाधारण की असमर्थता को परिलाक्षत कर देश की तत्कालीन आर्ष मनीषा ने पुराणों के रूप में वेदों और उपनिषदों के ही तत्वज्ञान को इतने सरस और सुबोध रूप में प्रस्तुत किया कि वह सर्वग्राह्य और सर्वगम्य हो गया। पद्मपुराण के अन्तर्गत भागवत-माहात्म्य में इसी तथ्य का प्रकटीकरण है-

"श्रीमद्‌भागवतालापात् तत्कथं बोधमेष्यति।
तत्कथासु तु वेदार्थः श्लोके-श्लोके पदे-पदे स्त्र
वेदोपनिषदां साराज्जाता भागवती कथा।
यथा दुग्धो स्थितं सर्पिर्न ज्ञानायोपकल्पते स्त्र
पृथग्भूतं हि तद् गव्यं देवानां रसवर्धानम् स्त्र

अभिप्राय यह है कि भागवत् की कथाओं में वेदों का ही तात्पर्य सन्निहित है, उसी का सार समाहित है। जैसे घी जब तक दूध में मिला रहता है, तब तक उसका स्वाद नहीं मिलता, लेकिन वही घी जब अलग निकाल लिया जाता है, तो वह लौकिक प्रयोजन

---

* सहायक प्राध्यापक (इतिहास), शासकीय महाविद्यालय, इटारसी (म.प्र.)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

के अतिरिक्त देवों को भी रसास्वादन करा देता है। वस्तुतः पुराणों की अतिशयोक्तिमयी शैली होने के कारण कुछ पश्चिमी इतिहासकारों ने आरोप लगाया कि पुराण के तथ्यों में यथार्थता नहीं हैं यह आरोप निराधार है। पुराणों के अनुशीलन के लिए तर्क और श्रद्धा के समन्वय की आवश्यकता है। तभी हम पुराणों के आन्तरिक यथार्थ को समझ पाएंगे। इसे हम एक उदाहरण से समझ सकते हैं। पुराणों की दृष्टि में इस कलियुग में शूद्र का ही माहात्म्य है। इस कथन का यह अर्थ नहीं है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य का सर्वथा लोप हो जायेगा और एक मात्र शूद्र वर्ण ही शेष रह जाएगा। इसका तात्पर्य गम्भीर है। शूद्र का धर्म है सेवा। फलतः कलियुग में सब लोग सेवक ही हो जाएंगे, कोई भी स्वामी या प्रभु न रह जायेगा। आज के सामाजिक-आर्थिक जीवन में यही भाव परिलक्षित भी हो रहा है। आज की दुनिया में कोई भी स्वामी नहीं, सभी सेवक हैं। 'राजा' का सर्वथा लोप ही हो गया संसार से, और जहाँ वह बचा-खुचा भी है, वहाँ वह अपने को प्रजा का सेवक यथार्थतः मानता ही नहीं, बल्कि वह सेवक है भी। किसी देश का प्रधानमंत्री जनता का 'प्रथम सेवक' मानने में गौरवबोध करता है। संसार के इस वातावरण में शुद्र की सार्वभौम स्थिति नहीं है तो किसकी है? अतः कलियुग में शूद्र की महत्ता का पौराणिक कथन सर्वथा सत्य हैं।

पुराणों में कथानकों में सत्यता के सम्बंध मे रामकृष्ण परमहंस का कथन है कि पुराणों के बहिरंग पर हमें कभी ध्यान नहीं देना चाहिए। पुराणों का अन्तरंग अर्थात् अन्तः वर्णित तथ्य वेदानुकूल होने से प्रमाण कोटि में निश्चित रूप से आता है, तब हमें उनके बहिरंग की सत्यता के विषय में संशयालु नहीं होना चाहिए। पुराणों की विशिष्ट शैली से परिचित न होने के कारण अन्तरंग की सत्यता में भी कुछ विद्वानों को सन्देह हो जाता है। संस्कृत भाषा के विविध साहित्य की शैली में नितान्त पार्थक्य है-

पुराण की शैली है रूपकमयी।
पुराण की शैली है अतिश्योक्तिमयी।
ज्योतिष की शैली है स्वभावोक्तिमयी।

एक उदाहरण से इसे समझ सकते हैं। वर्षा का वर्णन इन तीनों साहित्य में विशिष्ट दृष्टि से किया गया है। ज्योतिष वर्षा का वर्णन स्वभावोक्ति में करता है- किस नक्षत्र में कैसी वायु बहती है और किस प्रकार के मेघ उत्पन्न होते हैं, किस प्रकार के मेघों से कितनी वृष्टि होती है, और वृष्टि के अवरोधक कौन हैं और उनका नाश कैसे होता है आदि । वेद इसी तत्व को इन्द्रवृत्र के युद्ध का रूपक प्रदान करता है। वृष्टि को निरोध करने वाला तत्व ही वृत्र (सबको घेरने वाला पदार्थ) है। वृत्र अवर्षण का राक्षस है। इन्द्र वृष्टि के देवता हैं। दोनों तत्वों में उत्पन्न संघर्ष इस इन्द्र-वृत्रयुद्ध के द्वारा संकेतित किया

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

जाता है। पुराण में यही तत्व अतिशयोक्ति में लिपटा हुआ वर्णित है। इन्द्र है देवों का राजा तथा वृत्र है असुरों का अधिपति। दोनों अपनी प्रमुखता चाहते हैं। वृत्र इन्द्र को परास्त करने के उद्योग में लगा रहता है, तो इन्द्र वृत्र को ध्वस्त करने के लिये उद्यमशील है। इन्द्र ऐरावत हाथी पर चढ़कर संग्राम में उतरता है, तो वृत्र भी तदनुसार हाथी की सवारी पर आता है। दोनों के सहायक सैन्यों की संख्या गणनातीत है। पुराण इन देवासुर संग्राम का बड़ा ही रोचक तथा पुष्ट वर्णन करता है। ध्यान देने की बात यही है कि यहाँ तीनों ग्रन्थ एक ही अभिन्न तत्व का ही वर्णन करते हैं। ज्योतिष के द्वारा स्वभावोंक्ति में वर्णित तथा वेद में रूपक द्वारा उद्भासित तथ्य ही पुराण की अतिश्योक्तियों के द्वारा अपनी अभिव्यंजना करता है। 'शैलीभेदात् वर्णनभेदः न तु तथ्यभेद' यही यथार्थ है।

अतः पुराणों के कथनों में सच्चाई है और गहरी सच्चाई है, परन्तु इसके अध्ययन के लिये अनुसन्धाता में तर्क के साथ श्रद्धा, सहानुभूति और ईमानदारी आवश्यक है। बिना इनके पुराणों का अनुशीलन भारतवर्ष के लोगों के लिये किसी प्रकार भी उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकता। शुष्क छानबीन करने से मास्तिष्क को कुछ क्षणों के लिये आराम भले ही मिल जाय, परन्तु हृदय को चिर शान्ति नहीं मिल सकती।

जहाँ तक पुराणों में धार्मिक समवाय की बात है तो हम कह सकते हैं कि पुराणों ने इस क्षेत्र में प्रमुख भूमिका निभाई। भागवतपुराण में मत्स्य, कच्छप, वाराह प्रभृति स्वरूपों वाले विविध एवं बहुसंख्यक देवों की पूजा अर्चना करने वाले विशाल भारतीय जन-समुदाय की छोटी-छोटी धार्मिक निष्ठाओं को भागवतकार ने विष्णु के विराट स्वरूप के अन्तर्गत समेट कर सबको एक बृहद् आस्था-मण्डप के नीचे ला दिया है। हम देखते हैं कि विष्णुपुराण शिव की निन्दा नहीं करता, बल्कि शिव को भी वह हरि के रूप में ही ग्रहण करता है। विष्णु भक्ति के मुख्यतया प्रतिपादक होने पर भी नारदीय पुराण ने स्पष्टतः शिव, विष्णु तथा ब्रह्मा का एकत्व प्रतिपादन किया हैं-

हरिशंकरयोर्मधये ब्रह्ममणश्चापि यो नरः।
भेदं करोति सोऽध्येति नरकं भृशदारूणम् स्त्र
हरं हरिं विधातारं यः पश्यत्येकरूपिणम्।
स याति परमानन्दं शास्त्रणामेष निश्चयः स्त्र

नारदीयपुराण 6, 48-49

वस्तुतः धार्मिक औदार्य पुराणों का प्रमुख लक्ष्य रहा है। स्कन्दपुराण के 'काशी खण्ड' में कहा गया है-

यथा शिवस्तथा विष्णुर्पथाया विष्णुस्तथा शिवः।
अन्तरं शिवविष्णोश्च मनागपि न विद्यते स्त्र ॥

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अर्थात् जैसे शिव हैं वैसे ही विष्णु हैं और जैसे विष्णु हैं वैसे ही शिव हैं। इन दोनों में कोई भी अन्तर नहीं है। इसी तरह 'स्कन्द पुराण में 'महेश्वर खण्ड' में कहा गया है-

'यो विष्णुः स शिवो ज्ञेया यः शिवा विष्णुरेवसः'।

अर्थात् जो विष्णु हैं उन्हीं को शिव जानना चाहिए, और जो शिव हैं उनको विष्णु मानना चाहिए। इस सद्भावना के कारण ही इस पुराण में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, गंधर्व आदि की अनगिनत कथाओं का समावेश किया गया है। साम्प्रदायिक सौहार्द के सम्बन्ध में स्कन्दपुराण के महेश्वर खण्ड के अन्तर्गत 'कौमारिका खण्ड' में राजा करंधम के महाकाल से पूछा गया यह प्रश्न उल्लेखनीय है-

केचिच्छिवं समाश्रित्य विष्णुभाश्रित्य वेधसम्।
वर्णयन्ति परे मोक्षं त्वन्तु कस्मान्तु मन्यसे स्त्र ॥

अर्थात् हे भगवन। मोक्ष की प्राप्ति के लिये कोई शिव का, कोई विष्णु भगवान का और कोई ब्रह्माजी का आश्रय ग्रहण करने पर बल देते हैं। इस विषय में आप की क्या सम्मति है? इस पर महाकाल ने कहा-

पुराकिलैबं मुनयो नैमिषारण्य वासिनः।
सदा तपस्यां चरामि प्रीत्यर्थ हरिवेधसौः स्त्र

अर्थात् प्राचीन काल में नैमिषारण्य में निवास करने वाले ऋषि-मुनियों को यह जानने की जिज्ञासा हुई कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों देवताओं में सर्वश्रेष्ठ कौन है? वे इसका निर्णय करने के विचार से ब्रह्मलोक को गये, वहाँ उन्होंने ब्रह्मा जी को यह कहते सुना-'अनंत भगवान (विष्णु) को नमस्कार है, जिनका कहीं अन्त नहीं मिल सकता और महादेव जी को भी नमस्कार है। ये दोनों मुझ भक्त पर कृपा दृष्टि रखें।' जब वे भगवान् विष्णु को महान् समझकर क्षीर सागर पहुँचे तो उस समय विष्णु भगवान् स्वयं ही कह रहे थे-'मैं परमब्रह्म स्वरूप, सर्वव्यापक ब्रह्मा और भगवान सदाशिव की वन्दना करता हूँ। वे दोनों मेरे लिये मंगलकारी हों। यह सुनकर ऋषिगण बड़ा आश्चर्य करने लगे और चुपचाप क्षीर सागर से चल कर कैलास पर्वत पर गये। वहाँ शंकर जी पार्वती जी से कह रहे थे- ''मैं भगवान विष्णु और ब्रह्मा जी की प्रसन्नता के लिये एकादशी की रात्रि को विष्णु मंदिर में जागरण करके नृत्य किया करता हूँ। यह सुनकर ऋषियों का समस्त संशय स्वयं दूर हो गया और वे परस्पर कहने लगे कि हम लोग अभी तक कैसी मूढ़ता में पड़े हुए थे? जब ये तीनों प्रमुख ही नहीं जानते कि इनमें से कौन बड़ा है, सभी दूसरों को अपने से बड़ा समझ रहे हैं, तब हम लोग इसका निर्णय कैसे कर सकते हैं? वास्तव में ये तीनों एक ही परम शक्ति के तीन रूप हैं, जो तीन प्रकार के

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कार्यो की दृष्टि से विभाजित किये जाते हैं, और जब वह कार्य समाप्त हो जाता है तब तीनों फिर एकरूप में समाविष्ट हो जाते हैं। वे लोग अज्ञानी हैं, जो इनके छोटे-बड़े का प्रश्न उठाकर धार्मिक सौहार्द को बिगाड़ते हैं।

स्कन्दपुराण के ही 'कौमारिका खंड' में भगवान बुद्ध को भगवान विष्णु का अंशवतार मानते हुए दोनों में ऐक्य स्थापित किया गया। 'करंधम महाकाल संवादे चतुर्युग व्यवस्था वर्णनम्' प्रकरण में लिखा है-

ततस्त्रिषु सहस्त्रेषु षट् शतैरधिकेषु च।

विष्णोरंशो धर्मपाता बुधः साक्षात्स्वयं प्रभुः।

ततो वक्ष्यन्ति तं भवत्या सर्वपापहरं बुधम् स्त्र ।।

अर्थात् कलियुग के तीन हजार छः सौ वर्ष बीतने पर मगध देश के हेमसदन में अंजनी के गर्भ से भगवान् बुद्ध प्रकट होंगे, जो साक्षात् विष्णु के अंशावतार होंगे। वे धर्म का पालन करने वाले होंगे। उनके बहुत से उत्तम गुण और चरित्र स्मरणीय होगें। अपने भक्तों के लिये अपनी यशागाथा छोड़कर वे मुक्त हो जाएंगे और लोग उनको सर्वपापहारी बुद्ध कहेंगे।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि धार्मिक सौहार्द भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता रही है जिसका वर्णन हमें पुराणों में भी देखने को मिलता है।

संदर्भ

1. स्कन्दपुराण, पं. श्रीराम शर्मा आचार्य
2. पुराण विमर्श, आचार्य बलदेव उपाध्याय
3. पद्मपुराणोक्त भागवत माहात्म्य
4. सर्वधर्म-समभाव-एक विश्लेषण-रेखा द्विवेदी राजीव दुबे
5. हमारे चिंतन की मूल धारा, डॉ. शंकर दयाल शर्मा

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भारतीय परम्परा में विभिन्न मतों तथा सम्प्रदायों की दार्शनिक पृष्ठभूमि

डॉ. श्रीमती शिवा खण्डेलवाल*

धर्म आत्मा है तो विभिन्न सम्प्रदाय उसके शरीर। सब शरीर में आत्मा एक ही है, तथापि उन शरीरों के साथ व्यवहार उस शरीर की आकृति और स्वभाव के अनुसार करना आवश्यक है। सम्प्रदायों के कर्मकाण्ड एवं अन्य बाह्याचार भिन्न-भिन्न होते हैं। अतः उनमें व्यवहार की भिन्नता भी पाई जाती है।

स्थूल रूप में भारतीय परम्परा में सम्प्रदायों को पांच भागों में विभक्त किया जा सकता है। शैव, वैष्णव, शाक्त, गाणपत्य और सौर जिनके इष्टदेव क्रमशः इस प्रकार है - शिव, विष्णु, शक्ति, गणेश और सूर्य। इसमें से शैव और वैष्णव सम्प्रदायों का ही विशेष वर्चस्व रहा है।

शैव सम्प्रदाय के अनुयायियों के आराध्य शिव हैं। शैव दर्शन को काश्मीर में प्रत्यभिज्ञा दर्शन कहा जाता है। इसे त्रिक दर्शन तथा माहेश्वर दर्शन भी प्राचीनों ने कहा है। यह भी एक अद्वैतवाद है। आगमाचार्य अभिनवगुप्त इसके सर्वश्रेष्ठ प्रतिपादक हैं।[1] यजुर्वेद के शतरूद्रीय अध्याय में भगवान शिव का वर्णन है। उन्हें गिरीश, गिरिज और औषधपति कहा गया है। पाशुपत सम्प्रदाय में लिंग और नाग पूजा प्रचलित है। यह भी एक मत है कि शिव आर्येत्तर जातियों के देव रहे हैं। अतः लिंग और नाग पूजा की पद्धति आर्येत्तर जातियों से आई है।

---

* सहायक प्राध्यापक, इतिहास, श्री अटल बिहारी वाजपेयी शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पौराणिक साहित्य में शिव असुरों तथा देवताओं में तेजस्वी कहे गये। शिव परम योगी हैं। भागवतपुराण में कहा गया कि लोकरक्षा के निमित्त वे शक्ति के साथ विचरण करते हैं। लिंगपुराण में शिव लिंग पूजा का अतिशय महत्व बताया गया है।[2] कर्नाटक में तो शैव धर्म की परम्परा ही शायद सबसे प्राचीन है। बारहवी शताब्दी के पहले तक यहाँ पर शैव धर्म के कालमुख तथा पाशुपत जैसे संप्रदायों का अच्छा प्रचार था किन्तु बारहवी शताब्दी से वहाँ वीर शैव तथा लिंगायत संप्रदाय का प्रचार प्रारम्भ हो गया। वीर शैव सम्प्रदाय के प्रमुख प्रचारक वसव समझे जाते हैं।[3] वैष्णव सम्प्रदाय हिन्दू परम्परा की प्रमुख शाखा है। इसके अनुयायी वैष्णव कहलाते हैं। इनके इष्टदेव विष्णु हैं। वैष्णव सम्प्रदाय का एक रूपान्तर पांचरात्र के रूप में मिलता है। जिसका वर्णन अहिर्बुध्न्य संहिता एवं महाभारत में मिलता है। अवतार परम्परा में कृष्ण को विष्णु का अवतार कहा गया। कृष्ण का ही एक अभिधान नारायण हैं। भक्ति मार्ग और पंचरात्रिको ने परब्रह्म को नारायण नाम से अभिहित किया और परब्रह्म के सगुण तथा निर्गुण दोनों ही रूप स्वीकृत किये। वैष्णव संप्रदाय प्राचीन काल से चार प्रधान विभागों में विभक्त हैं-

01. **श्री सम्प्रदाय** – इसके प्रधान संस्थापक श्री रामानुजाचार्य हुए। बाद में श्री रामानंद स्वामी ने इसका प्रचार बढ़ाया, इसलिए इसे रामानंद सम्प्रदाय और इसके अनुयायी को रामानंदी भी कहते हैं। इसका दार्शनिक मत विशिष्टाद्वैत के नाम से प्रसिद्ध हैं।

02. **हंस सम्प्रदाय** – इसके प्रवर्तक सनकादि और प्रधान संस्थापक निम्बार्काचार्य हुए अतएव यह निम्बार्क सम्प्रदाय भी कहलाता है और बाद में हरिव्यास स्वामी ने इसका प्रचार किया इसलिए यह हरिव्यासी भी कहा जाता है। इसका दार्शनिक मत द्वैताद्वैत कहा जाता है।

03. **ब्रह्म सम्प्रदाय** – इसके प्रधान प्रवर्तक ब्रह्मा और संस्थापक माध्वाचार्य हुए। पश्चात गौड़ स्वामी ने इसका विशेष प्रचार किया। इसलिए यह मध्व सम्प्रदाय और गौड़िया सम्प्रदाय भी कहलाता है। इसका दार्शनिक सिद्धांत द्वैतवाद कहा जाता है।

04. **रूद्र सम्प्रदाय** – रूद्र इसके प्रधान प्रवर्तक और विष्णुस्वामी इसके संस्थापक हुए। बाद में वल्लभाचार्य ने इसका विशेष प्रचार किया। इसलिए यह विष्णुस्वामी सम्प्रदाय और वल्लभ सम्प्रदाय भी कहलाता है। इसका दार्शनिक मत शुद्धाद्वैत कहा जाता है।

शक्तिसंगम तंत्र के अनुसार गौण और मुख्य भेद से तंत्रोक्त वैष्णव सम्प्रदायों की संख्या दस है वे इस प्रकार है, वैरवानस, श्रीराधा, वल्लभी, गोलुकेश, वृन्दावनी,

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

रामानंदी, हरिव्यासी, निम्बार्क, भागवत पांचरात्र तथा वीर वैष्णव।

डॉ. भंडारकर के अनुसार वैष्णव धर्म चार धार्मिक विचारधाराओं के आधार पर संगठित हुआ। जिनमें से पहली के मूलस्त्रोत वैदिक देवता विष्णु थे, दूसरी के दर्शन देवता नारायण थे, तीसरी के ऐतिहासिक देवता वासुदेव थे और चौथी के आभीर देवता बालगोपाल थे और इन चारों की परम्पराओं ने मिलकर इसके निर्माण में सहयोग प्रदान किया।[4]

शक्ति उपासना, शिवोपासना की तुलना में अधिक व्यापक रही है। शक्ति के सात रूप माने गये हैं - ब्रार्हत, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, बाराही नारसिंही तथा ऐन्द्री। शक्ति को ही आनंद भैरवी, महा भैरवी, त्रिपुर सुन्दरी, ललिता आदि नामों से पुकारा जाता है। दुर्गा के नौ रूप भी शक्ति के ही रूप हैं। शक्ति की प्रत्येक साधना का आधार निश्चित रूप से अद्वैतवाद होता है।

कल्याण के भगवत तत्वांक में स्वामी श्री सनातन देव ने ठीक ही कहा है कि ''नदी को पार करने के लिए नौका की आवश्यकता होती है, परन्तु नौका को छोड़े बिना कोई दूसरे तट पर नहीं पहुँच सकता। इसी प्रकार संसार को पार करने के लिए किसी सम्प्रदाय या साधन-पद्धति का अनुसरण अनिवार्य है, परन्तु उसी का आग्रह रहे तो कोई भी संसारातीत परमार्थ का साक्षात्कार नहीं कर सकता। अतः सम्प्रदाय तो साधनरूप है, परन्तु साम्प्रदायिकता अभिशाप है।''

इस प्रकार शैव वैष्णव शाक्त आदि अनेक सम्प्रदायों में बाहरी मतभेद होते हुए भी उनमें एकता विद्यमान रही है।

संदर्भ

01. उमेश मिश्र - भारतीय दर्शन हिन्दी समिति सूचना विभाग उ.प्र., पृ. 380
02. नत्थूलाल गुप्त नक्ल - संस्कृति के सात सोपान, पृ. 216
03. डॉ. आर.जी. भंडारकर - वैष्विनिज्म, शैविज्म एण्ड अदर माइनर रिलीजन, पृ. 45-46
04. डॉ. वासुदेव उपाध्याय - प्राचीन भारतीय स्तूप गुफा एवं मंदिर, पृ. 198

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

गरुड़पुराण में ध्यान-योग

डॉ. अंशु भारद्वाज*

योग का सामान्य अर्थ है ज़ोड़ना अर्थात् आत्मा का परमात्मा से जुड़ना। गरुड़ पुराण के द्वितीय खण्ड में वेदान्त सांख्य सिद्धान्त ब्रह्मज्ञान अध्याय में योग का वर्णन प्राप्त होता है।

अहं ब्रह्म पर ज्योति र्विष्णुरित्यवे चिन्तन्।

अर्थात् मनुष्य को ऐसा चिन्तन करना चाहिए कि मैं ही परम् ज्योति स्वरूप ब्रह्म और विष्णु हूँ। प्रत्येक जीव अव्यक्त ब्रह्म है। बाह्य और अन्तःप्रकृति को वशीभूत करके अपने इस ब्रह्म भाव को व्यक्त करना इस जीवन का परम लक्ष्य है। गरुड़ पुराण में प्राणायाम, जप, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि योग के छः प्रसादक बतलाये है।

प्राणायामो जपश्चवै प्रत्यारोऽथ धारणा।
ध्यान समाधिरित्यैन षठयोगस्य प्रसाधका:।।

गरुड़ पुराण में चित्त की अस्थिरता भ्रमित मन, प्रमादता ये योगाभ्यास के कार्य में विघ्नकारी बतलाये गये हैं।

ध्यान किस प्रकार करना चाहिये इसकी विधि भी गरुड़ पुराण में बतायी गई है। हृदय में ईश्वर का भली-भाँति चिंतन करना चाहिए और साधक को ओंकार का उरस्थल में ध्यान करना चाहिए।

---

* सहायक प्राध्यापक इतिहास, शास. कन्या स्नात. महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ब्रह्मप्रकाशक ज्ञान भवबन्ध विभेदनम्।

तत्रै कचित्ता योगो मुक्ति दो मात्र संशयः॥

अर्थात् ब्रह्म को प्रकाशित करने वाला ज्ञान भवसागर के बंधनों का विशेष रूप से भेदन करने वाला होता है। चित्त की एकाग्रता का हो जाना ही योग है और मुक्ति प्रदान करने वाला होता है। योगाभ्यास को करते हुए आत्मा के द्वारा परमात्मा का दर्शन होता है। इन्द्रियों को वश में करके मनुष्य एक काष्ठ की भांति रहकर ब्रह्म में लीन हो जाता है और वह मुक्त हो जाता है। ध्यान योग में अप्रकट अग्नि दिखलाई देती है जो सर्वत्र विद्यमान रहते हुए भी किसी को ध्यान के पूर्व मालूम नहीं हुआ करती। इस प्रकार विधिपूर्वक किया गया ध्यान योग ब्रह्म व आत्मा के एकत्व का योग होता है। ध्यान द्वारा आत्मसाक्षात्कार किया जा सकता है। गरुड़ पुराण में आसन पर अधिक बल नहीं दिया गया है।

आसन स्थान विषया न योगस्य प्रसाधाकाः।

विलम्बजनकाः सर्वे विस्तराः परिकीर्तिताः॥

इस प्रकार गरुड़ पुराण में योग के छः प्रसादक महत्वपूर्ण माने गये है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पुराणों में वर्णित तीर्थ एक ऐतिहासिक विश्लेषण
(उज्जयिनी के विशेष संदर्भ में)

सोहन कुमार शर्मा*

तीर्थ का अर्थ होता है, पानी। प्रत्येक धार्मिक स्थलों में तीर्थों का अपना विशिष्ट महत्त्व रहा है और इस दृष्टि से उज्जयिनी प्राचीन काल से ही सुसम्पन्न रही है। स्कन्द पुराण पंचम खण्ड में अवन्ति क्षेत्र के निम्नलिखित तीर्थों का वर्णन हमें प्राप्त होता है। वर्तमान में समस्त तीर्थों में बहुत कम तीर्थ हमें उज्जैन में प्राप्त होते है जिनका विशलेषणात्मक विवरण ही शोध पत्र में किया गया है ये निम्नानुसार है :-

1. **कर्कराज** - कर्कराज तीर्थ पर कर्कराजेश्वर का मन्दिर विद्यमान हैं। मन्दिर शिप्रा के किनारे उस स्थान पर खड़ा है, जहाँ नृसिंह द्वीप के सामने स्थित शिप्रा प्रारम्भ होता है। यहाँ इसी द्वीप के कारण शिप्रा दो भागों में विभक्त हो जाती है। ये दोनों धाराएँ द्वीप को अपने बाहुओं में समेटती हुई पुनः नृसिंह तीर्थ के समक्ष संगम तीर्थ में विलीन हो जाती है। यहाँ का दृश्य बड़ा ही मनोरम और प्राकृतिक छवि वाला है।

2. **संगम तीर्थ** - यह तीर्थ जयरामदा सनेहीराम की बगीची और विराट हनुमान के बीच में स्थित है। यहाँ चौरासी महादेव में से 69वें संगमेश्वर महादेव स्थित है। इस तीर्थ के घाट मिट्टी में दब गये है। वर्तमान में केवल यहाँ मन्दिर ही शेष है।

3. **मल्लिकार्जुन तीर्थ** - यह तीर्थ शिप्रा घाट पर पिशाचमोचन और गंधवती तीर्थ के मध्य स्थित रहा है। आजकल यह मौलाना घाट कहलाता है। किवदन्ती के अनुसार प्राचीन समय में यहाँ वैष्णव तीर्थ हुआ करता था।

---

* शोधार्थी (इतिहास विषय), शासकीय कन्या महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

4. **गंधवती तीर्थ** – इस तीर्थ पर गंधवती नदी आकर शिप्रा में मिलती थी। स्कन्दपुराण में विस्तार से इस तीर्थ की महिमा कही गई है। चन्द्रग्रहण में यहाँ स्नान करने का विशेष महत्व है। यहाँ के मुख्य देवता मनकामनेश्वर महादेव हैं।

5. **ब्रह्मकुण्ड** – स्कन्दपुराण में ब्रह्म तीर्थ का वर्णन आया हैं यह तीर्थ वर्तमान में कालियादेह क्षेत्र कहलाता है। मुगल काल में यह इस तीर्थ को नष्ट कर दिया गया था और एक विशेष कालियादेह महल का निर्माण एक टापू के ऊपर किया गया जहाँ क्षिप्रा दो भागों में बंट जाती है। और टापू की समाप्ति पर पुनः एक हो जाती है। यहाँ का दृश्य अत्याधिक मनोहारी एवं प्रकृतिक छवि से युक्त है। इस महल के सामने क्षिप्रा पर बावन कुण्ड बनाये गये थे जिनमें से होकर क्षिप्रा का जल अत्यन्त ही शर्पाकार घूमता हुआ बड़ी सुन्दर छवि प्रस्तुत करता है। इन प्राचीन बावन कुण्डों में से एक ब्रह्मकुण्ड है जो अपनी प्राचीन संस्कृति को बनाये हुये है। 28 तीर्थ यात्रा में इसका विशिष्ट स्थान है।

6. **सोमतीर्थ** – सोमतीर्थ को संगम तीर्थ भी कहा जाता है। स्कन्दपुराण में इस तीर्थ से संबंधित उल्लेख प्राप्त होता है कि सोम के पिता महाभाग से सोमानदी उत्पन्न हुई जो बाद में क्षिप्रा में विलीन हो गई इसी कारण यह स्थल संगम सोम तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

7. **शद्रिभेद तीर्थ** – यह तीर्थ भी उज्जैन का प्रमुख तीर्थ है। स्कन्दपुराण में उल्लेख आया हैं कि कार्तिक स्वामी का चौल संस्कार यही किया गया था तथा नरकासुर को वध के पश्चात देवसेनापति ने अपनी विजयदायिनी शक्ति को यहाँ त्याग दिया था। वही इस तीर्थ के अधिष्ठाता देवता है। नग-बलि, नारायण बलि, त्रिपिण्डि श्राद्ध, तीर्थ श्राद्ध और अन्त्येष्टी कर्म यहाँ हुआ करता है। चौरासी महादेवों में से बडलेश्वर महादेव भी यही विराजमान है। जो वर्तमान में घाटों के जीर्णोद्धार के कारण दिखाई नहीं देते है।

अतः उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है, कि अवन्ति क्षेत्र के पौराणिक तीर्थों का अनादि काल से ही क्षेत्र विशेष में अपनी ऐतिहासिक गौरव गाथा से जनमानस को प्रेरित किये हुए है जो वर्तमान में भी तीर्थों की प्राचीन परम्परा को बनाये हुए है जिसका स्थाप्त्य और धार्मिक दृष्टि में विशेष महत्व है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

'शिवपुराण' में गुरूतत्त्व की महिमा

डॉ.प्रवीण जोशी*

यह सर्वविदित है कि प्राचीनकाल से शिवोपासना का प्रचार-प्रसार एवं बाहुल्य मात्र भारत में ही नहीं अपितु विश्व की कई सभ्यताओं में मिलता है। भारतीय ज्ञान मनिषा में 'शिवपुराण' एक प्रमुख तथा सुप्रसिद्ध पुराण है, जिसमें 'शिव' का तात्विक विवेचन, रहस्य, महिमा एवं उपासना का दर्शन प्राप्त होता है। भगवान शिव मात्र पौराणिक देवता नहीं, अपितु वे पंचदेवों में प्रधान, अनादि सिद्ध परमेश्वर है। 'शिव' का अर्थ ही है- 'कल्याणस्वरूप' और 'कल्याणप्रदाता'। शिवपुराण वृहद पौराणिक ग्रन्थ है, यह छः संहिता में विभक्त है। प्रथम संहित रूद्रसंहिता है इसके पांच खण्ड क्रमशः सृष्टि, सती, पार्वती, कुमार और युद्ध का वर्णन शिवपुराण में मिलता है। इसके पश्चात् घतरूद्रसंहिता, कोटिरूद्रसंहिता, उमासंहिता, कैलाशसंहिता और वायवीयसंहिता (पूर्वखण्ड) और वायवीयसंहिता (उत्तरखण्ड) का विस्तृत वर्णन है। वायवीयसंहिता (उत्तरखण्ड) अध्याय 14 एवं 15 में गुरूतत्व को महिमामण्डित किया गया है, इसमें गुरू से मन्त्र लेने तथा उसके जप करने की विधि, पाँच प्रकार के जप तथा उनकी महिमा, मन्त्रगणना के लिये विभिन्न प्रकार की मालाओं का महत्व व तथा अंगुलियों के उपयोग का वर्णन, जप के लिये उपयोगी स्थान तथा दिशा, जप में वर्णनीय बातें, सदाचार का महत्व, आस्तिकता की प्रशंसा तथा पंचाक्षर मन्त्र की विशेषता का वर्णन प्रमुख रूप से मिलता है। शिवपुराण में गुरूतत्व की महिमा के साथ-साथ गुरू से मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग और गुरू के माध्यम से सफल, उच्चतम व श्रेष्ठ जीवन कैसे प्राप्त हो ? इसका भी

* 32 एल.आय.जी. द्वितीय, इन्दिरा नगर आगर रोड़, उज्जैन

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

उल्लेख किया गया है।

शिवपुराण के अनुसार शिष्य को चाहिए कि वह पहले तत्ववेत्ता आचार्य, जपशील, सद्गुणसम्पन्न, ध्यान-योगपरायण एवं ब्राह्मण गुरू की सेवा में उपस्थित हो तथा मन में शुद्धभाव रखते हुए प्रयत्नपूर्वक उन्हें संतुष्ट करें। जो शिष्य अपने लिए सिद्धि चाहता हो, वह धन के दान में कंजूसी ना करें। तदूनन्तर सब सामग्रियों सहित अपने आपको गुरू की सेवा में अर्पित कर दे। गुरू योगमार्ग से शिष्य के शरीर में प्रवेश करके ज्ञानदृष्टि से जो ज्ञान की दीक्षा अपने शिष्य को प्रदान करें, उसका परीक्षण सभी विधि से करें। शिष्य गुरू का शिक्षणीय होता है और उसका गुरू के प्रति गौरव होता है। इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके शिष्य ऐसा आचरण करें, जो गुरू के गौरव अनुरूप हो। जो गुरू है, वह शिव कहा गया है और जो शिव है, वह गुरू माना गया है। विद्या के आकार में शिव ही गुरू बनकर विराजमान है। जैसे शिव है, वैसी विद्या है। जैसी विद्या है वैसे गुरू है। शिव, विद्या और गुरू के पूजन से समान फल मिलता है। शिव सर्वदेवात्मक है और गुरू सर्वमन्त्रमय। अतः सम्पूर्ण यत्न से गुरू की आज्ञा को शिरोधार्य करना चाहिये। यदि मनुष्य अपना कल्याण चाहनेवाला और बुद्धिमान है तो वह गुरू के प्रति मन, वाणी और क्रिया द्वारा कभी मिथ्याचार-कपटपूर्ण बर्ताव न करें। गुरू आज्ञा दे या न दे शिष्य सदा उनका हित और प्रिय करें। उनके सामने और पीठ पीछे भी उनका कार्य करता रहे। ऐसे आचार से युक्त गुरूभक्त और सदा मन में उत्साह रखनेवाला जो गुरू का प्रिय कार्य करने वाला शिष्य है वही शैव धर्मों के उपदेश का अधिकारी है। यदि गुरू गुणगान, विद्वान, परमानन्द का प्रकाशक, तत्ववेत्ता और शिवभक्त है तो वही मुक्ति देनेवाला है, दूसरा नहीं। ज्ञान उत्पन्न करने वाला जो परमानन्द जनित तत्व है, उसे जिसने जान लिया है, वही आनन्द का साक्षात्कार करा सकता है। ज्ञानरहित नाममात्र का गुरू ऐसा नहीं कर सकता।

अन्योन्यं तारयेन्नौका किं शिला तारयेच्छिलाम्।
एतस्य नाममात्रेण मुक्तिर्वै नाममात्रिका।।
यैः पुनर्विदितं तत्त्ववं ते मुक्त्वा मोचयन्त्यपि ।
तत्वहीने कुतो बोधः कुतो ह्यात्मपरिग्रहः।।

(शि.पु.वा.सं.उ.ख.15/38-39)

नौकाएँ एक-दुसरे को पार लगा सकती हैं, किन्तु क्या कोई शिला दूसरी शिला को तार सकती है ? नाममात्र के गुरू से नाममात्र की ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है। जिन्हें तत्व का ज्ञान है, वे ही स्वयं मुक्त होकर दूसरों को भी मुक्त करते हैं। तत्वहीन को कैसे बोध होगा और बोध के बिना कैसे आत्मा का अनुभव होगा ?

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

इस प्रकार हम देखते है कि 'शिवपुराण' में गुरू शब्द की व्युत्पत्ति अनादि अनन्त शिव को आधार मानकर की गई है और मनुष्य से अपेक्षा की गई है कि सांसारिक रहकर गुरूतत्व को कभी ना छोड़े, यह मनुष्यों को साक्षात् शिवधाम की प्राप्ति कराने के लिये सबसे उत्तम साधन है। अतः जिसके सम्पर्क से ही उत्कृष्ट बोधस्वरूप आनन्द की प्राप्ति संभव हो, बुद्धिमान पुरूष उसी को अपना गुरू चुने, दूसरे को नहीं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भारतीय परम्परा में विभिन्न मतों तथा सम्प्रदायों की दार्शनिक पृष्ठभूमि

डॉ. शिवप्रसाद बामने*

उत्तरवैदिक एवं बुद्धोत्तर काल में वैदिक धर्म में पर्याप्त परिवर्तन हुए। इस काल में पुराने इन्द्र, अग्नि, सूर्य और वरूण जैसे देवताओं का महत्व कम हो गया और उनके स्थान पर अब प्रजापति या ब्रह्मा एवं विष्णु और कुछ लोकोत्तर गुणों से विभूषित अनार्य देवताओं एवं महापुरुषो जैसे वासुदेव, कृष्ण, संकर्षण शिव आदि का सृजन किया गया। परवर्ती वैदिक युग में यज्ञों का स्वरूप अत्यंत जटिल हो गया तथा धर्म कर्मकाण्डीय एवं विभिन्न प्रकार के दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विचारों जैसे ब्रह्मा और आत्मा, पुनर्जन्म के सिद्धांत आदि के चिंतन में लीन हो गया। उत्तरवैदिक काल में सृष्टिकार देवता के रूप में ब्रह्म या ब्राह्मण की कल्पना की गई और इसे एक अलौकिक, रहस्यमयी या ऐन्द्रजालिक सत्ता माना गया। इसी काल में सृष्टि के गुढ तत्वों, आत्मा और परमेश्वर के स्वरूप और याज्ञिक कर्मकाण्ड के वैज्ञानिक विवेचन के लिए दर्शन-शास्त्रों का विकास किया गया। इस प्रकार उत्तरवैदिक काल अर्थात् आरण्यकों, ब्राह्मणों एवं उपनिषदों के रचना काल में वैदिक धर्म ने ब्राह्मण धर्म या ब्राह्मणवाद के रूप में औपचारिक धर्म का स्वरूप ग्रहण कर लिया।

इस युग में ब्रह्मा को सृष्टि के नियमन करने वाली आदिशक्ति या सत्ता के रूप में स्वीकार करते हुए ब्रह्मविद्या या तत्व चिंतन की एक नई लहर का उदय हुआ। तत्सबंधी अनेक विषयों जैसे इस सृष्टि का कर्त्ता कौन है, इसका नियमन किस शक्ति के द्वारा होता है, शरीर और आत्मा भिन्न है या एक ही है, मृत्यु के बाद आत्मा कहाँ जाती है

* शा. महाराजा भोज स्नात्कोत्तर महाविद्यालय, धार (म.प्र.)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

आदि जैसे विषयों की चर्चा की गई। इसी चिंतन की पृष्ठभूमि छान्दोग्यउपनिषद् में पहली बार पुनर्जन्म के सिद्धांत का उल्लेख किया गया। इस सिद्धांत के अंतर्गत एक जन्म-जन्मांतर तक आत्मा की अनंत यात्रा की कल्पना की गई। पुनर्जन्म के सिद्धांत से निराशावादी विचारों का भी विकास हुआ। परंतु ब्राह्मण धर्म की उपर्युक्त ईश्वरवादी, रूढ़िवादी, कर्मकाण्डीय मान्यताओं तथा यज्ञीय स्वरूप की अनेक धर्म सुधारकों जैसे - बुद्ध, महावीर, कश्यप, कात्यायन, मस्करि गोशाल आदि ने कटु आलोचना की और नवीन धार्मिक विचारों का प्रतिपादन किया।

इस पृष्ठभूमि में ब्राह्मण धर्म के पुराने देवताओं जैसे-इन्द्र, प्रजापति, वरूण, यम, अग्नि आदि का महत्व विलुप्त हो गया और उनकी स्थिति दिक्पालों की भाँति हो गई और उनके स्थान पर देवकी के पुत्र वासुदेव कृष्ण जैसे मानवीय नायकों तथा कुछ पौराणिक देवताओं जैसे शिव (रूद्र-शिव), यक्षों एवं नागों (जैसे मणिभद्र, पूर्णभद्र, दीर्घकर्ण, तक्षक आदि) और उमा, हैमवत्ती, अम्बिका, दुर्गा, पार्वती, विंध्यवासिनी आदि जैसी देवियों की पूजा की जाने लगी। इन विभिन्न देवी-देवताओं के सृजन के साथ ब्राह्मण धर्म में एक व्यक्तिगत देवता या देवी के प्रति दृढ़ भक्ति की भावना के आधार पर विभिन्न धार्मिक संप्रदायों का उदय हुआ। प्रत्येक संप्रदाय किसी देवी-देवता विशेष के प्रति उनकी उपासना या भक्ति का द्योतक था। इस प्रक्रिया के अंतर्गत ब्राह्मण धर्म के अनेक संप्रदायों जैसे - भागवत, वैष्णव, शाक्त, पाशुपत, लकुलीश, कापालिक आदि का उदय हुआ।

इसलिए सर्वत्र सहानुभूति के साथ समीक्षण आवश्यक है। ऐसा यदि ना किया जायें तो रहस्य का उद्घाटन ही नहीं हो सकेगा। जो पुरूष श्रृद्धा के साथ सत्य के निकट उपस्थित नहीं होता, उसके समक्ष सत्य अपना स्वरूप ही प्रकट नहीं करता। यही भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति के एक्य निगुढ़ तत्व है। ''अविभक्तं विभक्तेशु'' यह गीता का वचन भी इसी अर्थ का परिचायक है।

अतएव विभिन्न दृष्टिकोण से विचारणा चाहिए, परंतु परमार्थ रूप में जो सत्ता दृष्टिगोचर होती है, वह एक ही है इसी दृष्टि से देखने पर बौद्ध, जैन आदि प्रस्थानों का न्याय आदि षड्दर्शनों का तथा वैष्णव, शैव, शाक्त प्रभृति दृष्टियों का वैशिष्टय अखण्ड सत्ता की पृष्ठभूमि में परिस्फुट रूप से प्रकट होगा।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

Puranas - A Historical Perspective

Dr. Geeta Choudhary*
Shri Atal Bihari Vajpayee**

The Puranas are ancient Hindu text describing various cities primarily the divine Trimurti God through divine stories. Hindu religion texts alongside some Jain and Buddhist religious texts not only consist of narratives of history of the universe from creation to destruction, genelogy of kings, heroes, sages and demigods describing of Hindu cosmology, physiology and geography.

The Puranas are frequently classified according to the Trimurti. The Padma Puran classifies them in according with the three gunas or qualities such as satvas, Rajas and Tamas Puranas usually give prominence to a particular diety employing abundance of religion and physiological concept. They are usually written in the form of stories related by one person to another. The Puranas available in vernacular translation and disseminated by Brahmans scholars who read from them and tell their stories usually in Katha session.

An illustration of Varaha avatar based on the Bhagwat Puran, Vyas the narrator of Mahabharat is traditionally considered as the compiler of Puranas. The date of the production of the written text does not define the date of origin of the Puranas. On

* Professor of History
** Govt. Arts & Commerce College, Indore

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

one hand they existed in some oral form before being written while at the same time they have incrementally modified well into the 16th century. An early occurrence of the term Puranas is found in the Chandoya Upanishad translated by Patrick Ollivelle at the corpus of histories and ancient tales. The Brhadaranyaka Upanishad refers to Puran as the 5th Ved reflecting the early religious importance of these facts which over the time have been forgotten and presumably then in purely oral form. Importantly the most famous form of Itihaspuran is the Mahabharat. The term also appears in the Atharva Veda. It is more important to bear in mind that a 1000 years separates the occurrence of this term. In these Upanishads from the Puranas understood as a unified set of texts and it is therefore by no means certain that the term as it occurs in the Upanishads has any direct relation to what today in identified as the Puranas. As Ollivelle points out in the notes to his translation the term Puranas is set within a list of other categories of knowledge including the science of government, mathematics and the science of demonic being conceived as serpents. Of the many texts designed the most important are the Mahapurans. There are always set to be 18 in number divided into three groups of six though in fact they are not always counted in the same way.

Reference

1. Nair, Santha N. - Ecohes of Ancient Indian Wisdom.
2. Bhargava P.L. - India in the Vedic Age.
3. Majumdar R.C. - The History and Culture of Indian People.

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

Buddhism in Nilamatpurna

Mohammad Yaqoob

The history of Buddhism in Kashmir has not been much different than its history in the rest of the county. When did actually the spread of Buddhism start in Kashmir ? Historians have various theories and ideas. But general belief is that it entered in Kashmir in the 3rd century B.C. According Mahavamsa, the credit for introducing it here goes to Majjhantika or Madhyantika who introduced Buddhsim in the valley.1 It is said that a Naga king named Aravala then ruled over Kashmir and Madhyantika converted him to Buddhism, this event was followed by the conversion of the king and his followrs.2 This very Buddhist preacher is supposed to have introduced the forming and also the cultivation of world famous Saffron in the valley.3

Kalhana also tells us that Ashoka built the city of Srinagari and established there Stupas and other sacred buildings in the valley.4 The emperor built in the valley numerous stupas, some of which were existing as late as the time of the Chinese pilgrim Hiuen Tsang's visit. The great emperor, who was zealous always in preaching and disseminating the religion of Buddha throughout the length and breadth of his kingdom and even beyond, seems to have tried his best to spread it in the secluded vale of Kashmir too.5 Historically speaking Asoka inaugurated the Buddhism in Kashmir when he brought 5,000 Buddhist monks and settled them in Kashmir to popularize the Hinayana Buddhism in Kashmir and

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

adjacent territories. He built several Maths, as he thought Kashmir was an ideal place for pursuing higher studies and spiritual practices.

It was Ashoka behind the introduction of Buddhism in Kashmir, but his son Jalauka was anti-Buddhist and destroyer of monasteries.6 He is said to have revive the Naga and Siva cults.7 What happened to the state of Buddhism in Kashmir, after the death of Asoka, we do not know. Probably in the 1st century B.C., Kashmir came under the occupation of the Greek king Menander. He was first a lay devotee of Buddha but afterwards left his throne, joined the Sangha and at lat became an arhant. He created a vihara for his co-religionists which came to be known as Milindavihara, after the name of its founder.

In fact the history of Buddhism in Kashmir is not clear after downfall of Maurya dynasty. But it seems that Buddhism continued its progress here. Here one needs to refer to the main character 'Menandra' of famour book, 'Milindapanha'. Greek Menendar (Minander) was the King of Gandhar and his capital was Siyalkot. It is said thatat a place Twelve Yojanas from Kashmir there was discussion on Buddhism between Milind or Menender and Nagsen following, which Milind embraced Buddhism and he became an 'Arhata.' Milind is supposed to have lived in Second Century B.C.8

King Kanishka is the person who gave a firm footing to Buddhism in Kashmir. Before him there is a mention, of Kashmiri king Singh or 'Sudershana'. It is said that it is only with the contact of this king, Kanishka embraced Buddhism as a faith. Kanishka is remembered in the history of Buddhism like the great king Ashoka. He is supposed to be responsible to have organized the fourth and last Buddhist council at Kundal Vanvihara. Some of the scholars feel that this place is what is known at present day as Jullundur. But most of the scholars are of the view that Kundal Vanvrhara is the present day 'Harwan' in Kashmir.9 The chief aim of this council was to collect, collate and finalize the fundamental Buddhist principles and get a commentary written on them in accordance with the 'Sarvastivadi' Buddhist thought10. Where else could this council have taken place other than in Kashmir - the fountain head of Sarvastivadi philosophy - this council was chaired by Vasumitra and its Vice Chairman was the famous Sanskrit poet Ashvaghosha. The three main treastises of Sarvastivadi were written here. Of

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

these 'Maha Vibhasha Shastra' is still in existence today in Chinese. After the council was over, King Kanishka patronized such activities and even made a gift of Kashmir to the sangha. It had further been given by the Chinese sources that the final descisions of the council were engraved on copper plates and deposited in a stupa, under orders of the king.11 Excavations done at Harwan, Ushkur and Ahan have revealed existence of Buddhist relics but no traces of these copper plates have been found and this problem engages attention of scholars throughout the word. 12 Kanishka made many 'Viharas' and raised 'Stupas' here. He raised a city 'Kanishkapur' which is today known as 'Kanispur' , which falls in the district Baramulla.13 Kalhana mentions that three Turuska, i.e. , Kusana kings, Huska, Juska and Kaniska ruled over Kashmir and founded three towns called Kuskapura (mod. Huskur), Juskapura (mod. juskar) and Kaniskapura (mod. Kanespur)14. These Kusana kings were given to acts of piety and built many viharas, mathas, caityas and similar other strucures. During their powerful rule, the land of Kashmir was, to a great extent, under the possession of the Budhas, who, by practicing the law of religious mendicancy, had acquired great renown.

Many great Buddhist scholoars resided in Kashmir during the reign of the Kushans. Of these, Kalhana mentions the name of nagarjuna. Who resided T Sadarhadvana, i.e., Harwan.15 According to Chineaseevidence Asvaghosa, Vasuvandhu, Vasumitra, Dharmatrata, Sanghabhadra, Jinatrata and many other scholars lived in Kashmir from the time of Kaniska onwards.16 The first organized crusade throughout the Buddhism in Kashmir was started by Raja, Nara, who started the process which resulted in the extinction of Buddhism from Kashmir. He got burnt the Buddhist Viharas of Kashmir and uprooted the Buddhist population by confiscating their lands and bestowing them to the Brahmins.17 It is said that he harassed and terrorized Buddhist to such an extent that famous Buddhist scholar nagarjuna had to run away from Kashmir to South.18 But even under such terrorism Buddhism in Kashmir remained alive. In fact the famous Chinese traveler Huang Suang (631-633 A.D.) stayed as a state guest. While staying here, he studied the 'Sturas', 'Shastra's and other Buddhist scriptures. Raja Durlabhvardhana provided him with twenty clerks who copied the religious scriptures for him. The chief Buddhist scholar of that time declared Huang Suang as a

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

great intellect and said, Huang Sung is one of the greatest Buddhist scholars in the tradition of great Acharya Vasubandhu.19 But in seventh-eight century A.D. Buddhism had official protection in the time of great Kashmir King Lalitadiya Muktapeeda. Lalitaditya served both Hindus as well as Buddists in Kashmir founded one Rajavihara with a large quandrangele and a large Caitya at Parihasapura. At Huskapura, Lalitaditya built another large Vihara with a Stupa.20

Archaeological excavations carried on at Parihasapura, the city founded by Lalitaditya, have brought to light Buddhist structures-a stupa, a monastery and a caitya.21 The Stupa, has been indentified as the Stupa of Cankuna, the monastery with the Rajavihara built by Latitaditya and the Caitya with a large Caitya said to have been founded by the same monarch. Among the sculptures discovered at Parihasapura, there were two images of Budhisattva and one of Buddha.22

After the Karkota rule, however, Buddhism seems to have suffered a decline owing to the ascendency of the Saiva and Vaisnu faiths under the Utapalas. But the latter kings did not altogether cease to patronize buddhism, they continued to denote lands to the old Viharas and also to built new ones. Even in the time of king Ksemagupta, ho destroyed a monastery and confiscated thirty-two village attached to it, the festival of Buddha Poornima was observed with great enthusasm. Kesemendra composed the Buddhist work called Bodhisattva-Avadana-Kalpalata in 1051.23

After this Buddhism seems to have been overshadowed by the growing Vaisnava and Siva faiths which became predominant the valley in the centuries following the Karkota period. The dynasty of Utpala supplanted the Karkotas about the middle of the 9th century A.D. The rulers of this dynasty were staunch flowers of Siva and Visnu. Kshemagupta (950-958 A.D.) was a famous Shavivaite and he raised the Jaindera Vihara to ground and with its stones he built a massive temple to lord Shiva.24 Queen Didha and the kings who followed her did very littlee to promote Buddhism in Kashmir. Buddhist Viharas had already started decaying morally. During the reign of Lohara dynasty in Kashmir, there was a brief attempt to revive Buddhism in Kashmir. But by the time of King Harshvardhan the Buddhist sun in Kashmir had set.

King Jayasmha (1128 A.D.) built many Buddhist Viharas and also completed the construction of a Vihar which was started

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

by his Uncle, Uccala. After the end of his rule Buddhism practically disappeared from the Valley. The reasons of its disappearance have, yet to be investigated properly. A recent study shows that is was the Trantric from Buddhism which became popular in Kashmir. It was through Kashmir that Buddhism spread to Kabul and Kandhar, and from there to Central Asia and China. Even the Tibetan Buddhism was also inspired from Kashmir.

Reference

1. S.C. Ray, Early History and Culture of Kashmir, New Delhi, 1969, p. 158
2. Ibid.,
3. Yaun chwang,s travels in india, Trans. T, Waters, Vol. -I, p. 262
4. M.A. Stein, Rajatarangini, Vol-I, Srinagr, 1900, p. 19
5. S.C. Ray, Op.Cit., p. 159
6. P.N.K. Bamzai, Culture and Political History of Kashmir, New Delhi, 1994, p. 74
7. Rajtarangini, Op.Cit., p. 21
8. Milindapanda, Trans. Trenckner, pp. 82-83
9. V.A. Smith Early History, London, 1908, p. 283
10. F.M. Hassnain, Buddhist kashmir, New Delhil, 1973, p. 22
11. Ibid.,
12. Excavations at Harwan were done by R.C. Kak, at Ushkkur by Daya Sahni and at Ahan by F.M. Hassnain.
13. Rajatrarangini, I, pp. 30-31
14. Ibid.,
15. Ibid,
16. Yaun Chwang,s, Op.Cit. pp. 272-83
17. Rajtrangini, I Op.Cit. p. 34
18. F.M. Hassnain, Op.Cit. p. 23
19. Yaun Chwang, S. Po.Cit. p. 258
20. Rajtrangini, I Op.Cit. p. 139-140
21. S.C. Ray, Op.Cit. p. 164
22. R.C. Kak, Ancient Monuments of kashmir, Sringar, 2005, pp. 146-147
23. M.L. Kapour, Kingdom of Kashmir, Jammu, 1983, pp. 279
24. Ibid., VI, pp. 248-49

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

Nilamata Purana and Shaivism

John Mohammad Paul*

Kalhana says that while writing the Rajatarangini, he received considerable information's regarding the earlier periods from a work entitled the Nilamatpurana.[1] The date of Nilamatapurana is uncertain. But Kalhana,s reference to it as a work of high antiquity may suggest a date earlier than the accession of the Karkotas. The mention of Buddha in the work as an incarnation of Vashnu has led some scholars to assign the book not much earlier than the 7th century A.D.[2] The Nilamata is a Kashmiri Purana referred by Kalhana as one of the source of the ancient history of Kashmir. Buhler, whom goes the credit of saving its manuscripts, states on page 41 of his report, its great value lies there in that it is a real mine of information regarding the sacred places of Kashmir and their legends which were required to explain the Rajatarangini and that it shows how Kalhana has used his source. Though the text was published by Kanji Lal and Zadoo in 1924 and entitled by Vreese in 1936.

R.G. Bhandarkar describes Nilamata as a Mhatmaya. He described it on the basis of its mention as Kashmira Mahatmaya in a single manuscript.[3]

Ramlal Kanji Lal and Pandit Jagddhar Zadoo also mentions that the Nilamata does not come under the category of the Purana. In its present from it is very difficult to rank it with the 18

* Ph.D. Research Scholar

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

puranas it may be afely be called a portion of a Puranam from its similarity o the Nagarakhanda and other important Mahatmaya works which do not put forth any important Mahatmaya works which do no put fort any pretension to the distinctive title of Puranam but are considred complementary to them.[4]

The most important thing about the Nilmata is that the legendry historian of Kashmir Kalhana has mentioned in work Rajatrangini about it as a Purana not Mahatmaya.[5]

According to Ved Kumari it is proper to regard the Nilamata as a Purana when it has been claimed the title for more than seven hundred years.[6]

Nilamata Purana describes at great length how Kasmir was created out of water and left to the care of the Nagas of whom Nila was the chief. It also deals with the rituals and ceremonies of worship and the deities to which they are to be offered. It gives us information regarding the Naga Worship, Vaishnavism, Shaivism, and Buddhism. It also gives us information regarding the festivals and other religious practices; here I have discussed Shaivism in Nilamata Purana.

According to Nilamata Purana, Saivism was prevalent here even before the coming of the Aryans. Kashimir was once was a deep lake called Satidesa, named of Parvati, the divine consort of Siva. Further, the Lord is said to have already been one of the Gods who came to help Kashyap against Jalodbhava and later established their abodes here. The Nilmata Purana also says that , besides building his own Shrine at a place, Vishnu also 'got erected such establishment of Sambhu and the Goddess (parvati).[7]

The Nilamata Purana refers to Siva as a member of the Traid of deities and describes his three forms creating, protecting and destroying the world.[8] The picture of Shaivism which the Nilmata Purana gives is that of a simple cult of Siva and Uma having much about it to indicate its hilly character. The form of Shaivism which appeared in Kashmir in the beginning of 9th century A.D. has not much, except the name Siva, is common with the Shaivism of the Nilamata. No Siva sect has been mentioned by name in the Nilamata Purana, but it refers to some treatises entitled Sivadharmas which evidently, must have contained religious duties regarding the cult of Siva.[9]

The Mahabarata states specifically that Siva and Uma10 may be propitiated in Kashmir at the lake Vatikasanda. The

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

Nilamata Purana speaks so highly as to give her a position higher than that of Siva. The land of Kashmir is described as her material manifestation and she is further stated to have taken the form of Kashmir most famous river Vitasta. A reference to her marriage is also made and her association with Siva, it is said, has made her purer.[11]

An account of the Siva shrines raised during the period by the kings of Kashmir, some of which have been brought to light by archaeological exploration, can be gleaned from the Rajatarangini.

References

1. Rajatarangini, I, 14
2. Buhler, Report of a Tour in search of Sanskrit Manuscript made in Kashmir, J.B.B.R.A.S., 1877, p. 141
3. R.G. Bhandarkar, Report of the year 1883-84, p. 44
4. Ved Kumari, Nilamata Purana, Sringar, Vol-I, 1968, p. 2
5. Rajatrangini, I, 178, 183
6. Ved Kumari, Op. Cit. , p. 5
7. Ved Kumari, The Nilamata Purana, Vol. I, Sringar, 1968, p. 158-160
8. Ibid,
9. Ibid, p. 161
10. Ibid, p. 163
11. Ibid.

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

The Puranic role in the formulation of Pandurang Sampradaya

Prof. M.R. Joshi*

The aim and purpose of my paper is to show how Skand and Bhagwat, the two major purans, play a vital role in formulating the Pandurang-Vitthal Sampradaya popularly knwon as Warkari movement. Pandurang is the principle seat and pilgrim centre where devotees throng to se and visit God Vitthal. He is known as Pandurang also. So there is a harmonious blending of Saiva and Vaishnava here right from the beginning. The early history of Pandurang can be found in Skand puran. Onece upon a time Pandharpur was known as Lohadandkshetra enlightening the role of Skand purna. In course of time the text of Skand puran was enlarged with Uttar Khand were we find Pandurang and vibrant with pictorial presentation of the religious activities and 833 verses. The Mahatmya is vivid, colourful and vibrant with pictorial presentation of the religious activities and events which furnishes the early phase of Warkari movement. In addition to Pandurang Mahatmya there are inscriptions and copper plates which are useful for tracing the historicity of Warkari movement. The Pandurangastak composed by the great Shankaracharya and Bhagwat puran are useful in formulating the latter phase of Vitthal Sampradaya. Here we come across Vitthal Panchaytan - (i) Vitthal (ii) Radha (iii) Rukhmani (iv) Garuda (v) Hanumant. Thus we see

* Plot No. 10, Jaiprakash Nagar, Narkesari Layout (West), Nagpur

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

Lord Krishna emerged as Vitthal Pandurang keeping all Saiva and Vaishnava characterstics of Bhagwat tradition.

Orisa region especially the Ganjan District saw the emergence of the early Vitthal cult. There were Brahmins who were the ardent devotees of Shri Vitthal. So they used to address their own sons with the name Vitthal. Fortunately we heave three copper plates mentioning a list of such Brahmins. These copper plates are as follows.

The puri copper plate of Madhava Varman - 619 - 620 A.D.

The takkal copper plate of Ganga Sawant - 358 i.e. Saka 667

Ganga Indravarman's copper plate - Saka 902

All these three copper plates are useful as they clearly mention the name of a person as Vitthal. Originally these Brahmins were the residents of Karnataka. In course of time they came down and settled in present Orissa state. As their name 'Vitthal' is significant and shows close proximity to the worship of Lord Vitthal. We may presume that Vitthal was worshipped and praised in Orissa state also in the year Saka 542. Therefore on the strength of these copper plates evidence we are in a position to say that Vitthal worship was prevalent when the Pasupat was in full swing across the length and breadth of the country.

Pandharur is widely known as Pandhurangpur. There are five inscriptions giving valuable data and historical account of the Vitthal worship and Warkari movement. All these inscriptions explicitily mention Pandharpur as Pandurangpur. The inscriptional record and copper plates are also vocal in mentioning Pandurangpur's historicity from early rule of Manpur Rashtrakuta. This Rashtrakuta of Manpur is contemporary to Vakataka - Guptas. The Manpur ruler Avidheya issued and granted a village to Saiva ascetic named as Pandhurgpalli. This Pandhurinpalli was a Pasupat sect which was a religious movement as that time. The historicity of Pasupat is well known right from Mahabharata where we came across several events related to the worship of Siva performed by Krishna. It is said that Lord Krishna was initiated in Pasupat fold by sage Upamannya. However there are inscriptional records which show that Kusika has originated a line of teachers belonging to Pasupat doctrine. He himself was the pupil of Lakuli Saiva. Dr. Bhandarkar has conclusively shown that Lakuli flourshed in the first quarter of the second century A.D. i.e. 150-

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

130 A.D. He has also given a graphic picture of Lakuli sage. Whenever found in human form, he is shown with two hands with characteristics signs namely a Lakula or staff in his left hand and a citron in his right hand. Lakuli was an influential monk and Vayu puran held him as the last incarnation of Lord Siva. So he was worshipped as very incarnate of Siva amongst his disciples and Pasupat line. Fortunately the inscriptional record in rich in furnishing the various Pasupat branches with detailed account of the Pasupat decendants. So my hypothesis is that in course of time a Pasupat ascetic belonging to the Lakula School came down and settled on the bank of the river Bhimrathi. This place is well known as a place of Yoga science since long ago. The monk of Lakuli School preached Pasupat doctine and its tenets. So this pace became well known as Lohadanksheta. Here Lohadant stands for Lakute i.e. Trishula signifying its proximity to Lakuli Pasupat.

Moreover the various inscriptions and copper plates also tell us vulnerable information about a Command in Chief of Vengi Chalukya ruler Vijayaditya III whose name was Pandurang. His name also occurs on the copper plates of Ammaraja II who was rulling in the year 949 A.D. Here we find the name of Durgaraja who was the great grandson of Pandurang. So Pandurang and his great grandson name of Durgaraja were closely associated with Vegin rulers for over 100 years. This Commander in Chief of Vengi ruler was residing in the vicinity of Shree Shaila Siva Kshetra which was great seat of Pasupat sect. Morevover he was known as Mahesh Pandurang. Here Mahesh seems to be his epithet mostly signifying his close affinity to Pasupatas. It is also interesting to see that both Vengi Chalukya ruler Vijyaditya III and Mahesh Pandurang were junior contemporary to great Shankaracharya who composed Pandurangastak praising Vitthal Krishna as Pandurang.

Here the great acharya presents a clear and striking picture forming a mental a mental image of Pandurang. This type of vivid description of Lord Vitthal is picturesque, implying beauty and devotion with immediate effects. So he praised Krishna in the form of Pandurang who appeared before Pandlik on the bank of river Bhimrathi and made it his permanent abode.

Here Pandurang Krishna popularly known as Vitthal appeared in a standing posture, his two hands being in an akimbo position. In his left hand there is a sea-conch and his right hand is

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

having a lotus stalk or is in a Varda mudra. His legs are straight. His feet are on the same level. He appeared to be standing on a sacrifice brick. He is surrounded by cows and their calves. He wore shepherd's attire and appeared like a shepherd of Vruindavan. He was plying his flute having taken peculiar posture. He is the very life force of Rukhmani. Krishna in the form of Pandurang is exceptionally rare one in the whole order of Pasupat. Usually Siva either takes a Linga form or an mage form. But here Vitthal Krishna is praised as a Pandurang. This is the heavenly celestial divine from of Pandurang.

Shankaracharya has immortalized this great event in his hymn known as Pandurank stotra and mentioned this Kshetra as a great seat of Yoga (Mahayoga peeth). So we have Lohadand Kshetra Mahayoga peeth Pandurangpur which suggests the Historicity and the account of the relation of this place towards Skand Puran and Bhagwat. The Skand Puran is helpful in enlightening a vexed question also. The well known Pandharpur inscription, dated 1195 Saka year, mentioned Pandharpur as Faginpur. So the identification of Faginpur is a challenge to all epigraphist and ideologist. Fortunately the Vishnu Shastra Namavali in Avantika Khand of Saknd Puran is suitable for inscriptional textual meaning. The Vishnu Shastra Namavali clearly mentions that 'Falgun' is the name of Vishnu. So Faginpur means the residential abode of Vishnu.

Thus Pandurang Vithal is the titular deity of Warkari Sampradaya. Fortunately we have three copper plates which enable us to trace the historicity of Pandurang Vitthal worship. Out of these three copper plates, th puria plate of Madhava Varman Sainbhit is noteworthy. The date of this copper plate is 619-620 A.D. and is issued during the rule of Madhava Varman. This copper late clearly mentions a Brahmin whose name is Bhatt Vitthaldeo. These Brahmins bearing the name of Vitthal were originally the residents of Karnaataka regin. They were devotees of Lord Vitthal and as a token of affection they use to call and address their sons with the name of Vitthal . These three copper plates from Orissa state are useful for the study and development of Warkari movement. So these copper plates and the text of Skand Puran goes hand in hand in tracing the early phases of Warkari movement. It is well known that the Skand Puran is the biggest Mahapuran having near about 81000 verses. Skand is the eldest one of Lord Siva and is

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

also the commander of Gods. This puran is available into two forms. One is knwon as Samhita (collection of verses) while the second form is known as Khandas. There are seven parts of Khand. They are as follows -

1. Maheshvari Khanda
2. Vaishanava Khanda
3. Brahma Khanda
4. Sasi Khanda
5. Prabhas Khanda
6. Avanti Khanda
7. Naagar Khanda

All these Khandas are available in printed from. Besides these printed editions there are Mahatya types of compositions which are listed in the manuscript catalogues of Thanjavur (Tanjore) library, Tamil Nadu. These Mahatmya compositions are large in number and are still unpublished. Therefore the redactors belongings to Skand Puran textual traditions have clubbed and classified all these Mahatmya compositions as the major bulk of Uttar and Sahyadri Khand of Skand Puran. It has 12 chapters and 833 verses; mainly devoted to the account of holy places and the life story of Pundlik. So it furnishes the graphic account of Warkari movement and its early phase. So the Pandurang Mahatmya and Skand Puran acknowledge th historical value of Pundlik. It is to be borne in mind that Pundlik is not a mythical person. He was a great devotee of Lord Vitthal and was the progenitor of Warkari movement. Thus all the Mahatmya compositions are the fountain source of religious-cultural activates. They are vivid colorful and vibrant with pictorial presentations of religious events and life - stories of devotees. Pundlik belongs to this galaxy of devotees.

Thus the Pandurang Mahatmya and Skand Puran furnishes us a faithful account of Pandurang, Vitthal and Pundlik covering the period from Skand compositional work to great Shakarachrya i.e. from 730 A.D. up to 750 A.D.

It is interesting to see that Bhagwat Puran like Skand Puran has also played a major role in formulating Warkari movement. The Vengi Chalukya ruler Vishnuvardhan is also known as Vishnuvittrasa. The Karnataka copper plate issued by the Chalukya emperor Vikramaditya also mentioned a Brahmin with a name Vishnuvitta. So Vitta is Vishnu. It is to be remembered that Vitta is not the incarnation of Vishnu but Vishnu appearing in the

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

from of Vitthal. Shankaracharya has mentioned Pandurang and Krishna in his Pandurangastak. Hence later we find Krishna as Vitthal. Therefore under the influence of Bhagwat there is a Vitthal Panchyatn - (i) Vitthal (2) Radha (iii) Rukhmani (iv) Garuda (v) Hanumant.

Therefore we can safely conclude that from the times of Shankaracharya / Skand Puran was replaced by Bhagwat and Krishna emerged as Vitthal Pandurang keeping up all Saiva-Vaishnava characteristics of Bhagwat. So my hypothesis is that right from the beginning there was a strong tradition which used to propagate Vishnu-Krishna as the devotees and worshippers of Siva. Pandurang Vitthal represents this tradition where Vishnu in the form of Vitthal is used to worship God Siva and Pundlik is the first and foremost in keeping up this tradition.

But it seems to me that Pandurang Vitthal ia a great puzzle confronting the indological scholars. So instead of studying the puranic text in proper perspective they indulge themselves into propounding various hypothetical presumptions arguing that once upon a time Pandharpur was a Saiva centre but in course of times the Vaishnava crusader demolished the Saiva seat and converted it as a Vaishnava pilgrim centre. But this theory is weak and poor and does not water as it is not substantiated with solid epigraphical evidence. There are neither copper plates nor epigraphical record in supporting this type of theory. The ideologists holding this theory failed in showing the documentary proofs.

However a proper reading of puranic text with the help of copper plates and epigraphical records enlightens the crux of the problem and lead us towards proper solutions. It is to be remembered that not only Skand and Bhagwat but almost all the puranic compositions have preserved and nourished the concept of Theerth, Ksheta, Devata and Bhakta (devotee) to such an extent that they proved to be the fountain source off cultural and religious activities thereby clearly showing the emergence, growth and historicity of all the Sampradaya. This will also help to contradict the wrong and false theories of westernized indologists.

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

खण्ड द्वितीय

स्थापत्य कला

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भारतीय स्थापत्य में प्रसाद

डॉ० महेन्द्र मणि द्विवेदी*

हिन्दू प्रसाद भारतीय वास्तु-शास्त्र एवं भारतीय वास्तु-कला का मुकुटमणि ही नहीं, सर्वस्व है। भारतीय स्थापत्य की मूर्तिमती विभूति हिन्दू प्रसाद है यहाँ का स्थापत्य यज्ञवेदी से प्रारंभ होता है और मंदिर की शिखर-शिखा पर समाप्त होता है। प्रासाद शब्दों "प्रकर्षेण सादनम् (चयनम्)" की हो तो परम्परा है, जो सर्वप्रथम वैदिक चिति के कलेवर निर्माण में प्रयुक्त हुई और वही कालान्तर में हिन्दू मंदिरों के निर्माण की पृष्ठभूमि बनी। मानव-सभ्यता के विकास की आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं बौद्धिक, मानसिक तथा काल्पनिक आदि विभिन्न सांस्कृतिक प्रगतियों में वास्तु-कलात्मक कृतियाँ एक प्रकार से सर्वातिशायिनी स्मृतियाँ है। ये कृतियाँ इष्टका-पाषाण आदि चिरस्थायी द्रव्यों से आबद्ध होकर युग-युग तक सांस्कृतिक विकास का परम निदर्शन ही नहीं प्रस्तुत करती हैं वरन् प्राचीन सांस्कृतिक वैभव का प्रत्यक्ष इतिहास भी उपस्थित करती है। प्रत्येक देश एवं जाति की वास्तु-कृतियों में तत्कालीन जाति एव देश की विशेषताओं की छाप रहती है। भारतीय वास्तुकला की सर्वप्रमुख विशेषता उसकी अध्यात्म निष्ठा है। यहाँ पर वास्तु-कला (जो विशेष कर मंदिर निर्माण में पनपी वृद्धिगत हुई और मंदिर के उत्तुंग शिखर के समान ऊँची उठी) का आधारभूत अध्यवसाय-प्रयोजन भारतीय जन-समाज की धार्मिक चेतना एवं विश्वास को मूर्त स्वरूप प्रदान करके उनके प्रतीकत्व का कल्पना ही नहीं है, वरन् इस

---

* प्राध्यापक इतिहास, शासकीय महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

देश के दर्शन एवं पुराण में प्रतिष्ठापित तत्वों के रहस्यों का विजृम्भण भी है। यहाँ के मंदिरों के निर्माण में जन-समाज की धार्मिक उपचेतना की महती निष्ठा में देवमिलन की भावना ही सर्वप्रधान है। मंदिर का पीठ, उसका कलेवर एवं उसका आकार एवं विस्तार तथा उपसंहार सभी इस भावना के प्रतीक है। प्रासाद-वास्तु के विकास में हम देखेगें कि जिस पूजा-भावना से हमारे पूर्वजों ने पाषाण-पट्टिकाओं से तथा आरण्यक वनस्पतियों की वन्दनवार एवं मण्डपों से अलंकृत पूजा-गृहों की निर्माण-परम्परा का प्रचार किया था, वही भावना सर्वदा जागरूक रही अथवा वृद्धिंगत होती रही।

मानव-देव-मिलन की कथा एकांगी नहीं है। मानव देव से मिलने के लिए ऊपर उठता है तो उठते हुए मानव को देव ने सदैव चार पग आगे आकर छाती से लगाया है। प्रसाद-वास्तु की रूप-रेखा में दोनों तत्व चित्रित हैं। प्रसाद के उत्तुंग शिखर में देवत्व की खोज मानव के प्रयास की प्रतीक है और जहाँ पर यह प्रासाद-शिखर बिंदु में अवसान प्राप्त करता है वहीं मानव-देव- मिलन है अथवा मानवता का देवत्व में विकास है या मानवता एवं देवत्व की एकता स्थापित होती है। हिन्दू-स्थापत्य के सर्वस्व हिन्दू प्रासाद के इस सर्वागीण दृष्टिकोण के अतिरिक्त एक धार्मिक-व्यावहारिक दृष्टिकोण भी है, जो जन-धर्म की आस्था का परिचायक है और जिसकी परम्परा पुराणों की पुण्य-भूमि पर पल्लवित हुई है। मंदिर-निर्माण वापी, कूप एवं तड़ागादि-निर्माण के समान पूर्त-धर्म की संस्था है। व्यावहारिक रूप से परोपकारार्थ भी यह धर्मार्थ समझा गया। प्रायः सभी धर्माचार्यों ने परोपकारार्थ-निर्मित प्रपा (प्याऊ) एवं तड़ागादि की महिमा गयी है। सूत्र-ग्रंथों में तो इस संस्था का बड़ा ही गुणगान है। हिन्दू-धर्मशास्त्रों में वर्णित प्रतिष्ठा और उत्सर्ग का माहात्म्य इस पुरातन संस्था का पक्का प्रमाण प्रस्तुत करता है।

प्रस्तुत प्रासाद-वास्तु को पूर्ण रूप से समझने के लिए हमें सर्वप्रथम उसकी पृष्ठभूमि के उन प्राचीन गर्तो एवं आवर्तों का अन्वेषण करना है जिनके सुदृढ़ एवं सनातन, दिव्य एवं ओजस्वी, कान्त एवं शान्त स्कन्धों पर हिन्दू-प्रासाद की बृहती शिलाओं का न्यास हुआ है। हिन्दू प्रासाद, हिन्दू संस्कृति, धर्म एवं दर्शन, प्रार्थना, मंत्र एवं तंत्र, यज्ञ एवं चिन्तन, पुराण एवं काव्य, आगम एवं निगम का पूंजीभूत मूर्त रूप है। भारतीय प्रासाद-रचना लौकिक कला पर आधारित नहीं है। सत्य तो यह है कि प्रासाद स्वयं लौकिक नहीं, वह अलौकिक एवं अध्यात्मिक तत्व की मूर्तिमती व्याख्या है। यह मूर्तिमान् आकार ऐसे ही नहीं उदय हो गया। शताब्दियों की सांस्कृतिक प्रगतियों के संघर्ष से जो अन्त में उपसंहार प्राप्त हुआ वही हिन्दू-प्रासाद है। इसकी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पृष्ठभूमि के प्रविवेचन में सम्मानीय लेखक ने अलग से एक ग्रंथ का निर्माण किया है, जिसमें भारतीय संस्कृति के विकास की नाना परम्पराओं-श्रोत, स्मार्त, पौराणिक, आगमिक तथा दार्शनिक आदि की देन का मूल्यांकन करते हुए श्रुति-स्मृति-पुराण-प्रतिपादित भारतीय धर्म की आत्मा से उद्‌भावित एवं भारतीय दर्शन की महाज्योति से उद्‌दीपित हिन्दू प्रासाद की व्याख्या में जिन नाना पृष्ठभूमियों के दर्शन किये है, उनमें वैदिकी, पौराणिकी, राजाश्रया एवं लोकघर्मिणी का विशेष उल्लेख है। इस पृष्ठभूमि के मूल्यांकन में कलात्मक, दार्शनिक एवं धार्मिक तीनों दृष्टियों के उन्मेष से लेखक का यह उपोद्‌घात एतद्विषयक प्रथम अनुसंधान है। यह सब हमारे हिन्दू-प्रासाद (चतुर्मुखी पृष्ठभूमि) में द्रष्टव्य है। भारतीय स्थापत्य का मुकुटमणि किंवा उसकी सर्वातिशायिनी कला अथवा उसका मूर्तिमान स्वरूप (शरीर एवं प्राण) हिन्दू-प्रासाद है। हिन्दू संस्कृति की लोकव्यापिनी यह प्रोज्जल पताका है। हिन्दू-प्रसाद मानव-कौशल की पराकाष्ठा ही नहीं, देवत्व की प्रतिष्ठा का भी परम सोपान है। सागर एवं बिन्दु, जड़ एवं चेतन, आत्मा एवं परमात्मा के पारस्परिक सम्बंध की व्याख्या में हिन्दू शास्त्रकारों ने कलम तोड़ रखी है। हिन्दू स्थपतियों ने भी अपनी छेनी और वसूली आदि सूत्रष्टक से वही कमाल दिखाया है। क्रान्त-दर्शी मनीषी कवियों (ऋषियों) ने अपनी वाणी से जिस अध्यात्म-तत्व के निष्यन्द में छन्द-बन्ध एवं वर्ण-विन्यास के द्वारा जिस लोकोत्तर भावाभिव्यंजन का सूत्रपात किया है, वही परिणाम प्रख्यात स्थपतियाँ की इन महाविभूतियों में भी पाया गया है। इष्टका एवं पाषाण की इस रचना में धर्म एवं दर्शन ने प्राण-संचार किया है। अतः इस मौलिक आधार के मूल्यांकन बिना हिन्दू-प्रासाद की वास्तु-शास्त्रीय अथवा वास्तु-कलात्मक व्याख्या अथवा विवेचना अधूरी है।

भारतीय जीवन सदैव अध्यात्म से अनुप्राणित रहा। जीवन की सफलता में लौकिक अभ्युदय की अपेक्षा पारलौकिक निःश्रेयस ही सर्वप्रधान लक्ष्य रहा। पारलौकिक निःश्रेयस की प्राप्ति में नाना मार्गों का निर्देश है। प्रार्थना, मंत्रोच्चारण, यज्ञ, चिन्तन-ध्यान, योग-वैराग्य, जप-तप, पूजा-पाठ, तीर्थयात्रा, देव-दर्शन, देवालय निर्माण-एक शब्द में इष्ट और पूर्त (इष्टापूर्त) की विभिन्न संस्थाओं एवं परम्पराओं ने सनातन काल से इस साधना-पथ पर पाथेय का काम किया है। मानव-सभ्यता की कहानी में मानव की धर्म-पिपासा एवं अध्यात्म-जिज्ञासा ने उसे पशुता से अपने को आत्मसात् करने से बचाया है। प्रत्येक मानव का बौद्धिक स्तर एक-सा नहीं, उसका मानसिक क्षितिज भी एक-सा विस्तृत नहीं। उसकी रागात्मिका प्रवृत्ति भी एक सही

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

नहीं। उसका आध्यात्मिक उन्मेष भी सर्व-समान नहीं। अतः मानवों की विभिन्न कोटियों के अनुरूप, साध्य पारलौकिक निःश्रेयस की प्राप्ति में नाना साधना-पथों का निर्माण हुआ। मार्ग अनेक अवश्य है, लक्ष्य तो एक ही है। यह लक्ष्य है देवत्व प्राप्ति। संसार मानवता एव देवत्व के पार्थक्य का कोलाहल है। इस कोलाहल का शब्द उस दिव्य स्वर्ग में नही सुनाई देता जहाँ मानव-देव मिलन है। संसार-यात्रा एवं मानव का ऐहिक जीवन दोनों ही उस परम् लक्ष्य की प्राप्ति की प्रयोगशाला है। देश-काल की सीमाओं ने यद्यपि इस लक्ष्य की ओर जाने के लिए अगणित मार्गों का निर्माण किया है, परन्तु विकासवाद की दृष्टि से देव-पूजा, देव-प्रतिष्ठा एवं देवालय-निर्माण भारत की सर्वाधिक प्रशस्त, व्यापक एवं सर्व-लोकोपकारी संस्था साबित हुई है। तपोधन महर्षियों एवं ज्ञान-धन ज्ञानियों से लेकर साधारण से साधारण विद्या बुद्धि वाले प्राकृत जनों-सभी का यह मनोरम एवं सरल साधनापथ है।

इसी मौलिक उन्मेष में हिन्दू-प्रासाद की चतुर्मुखी पृष्ठभूमि की उद्भावना की गई। इसमें 'वैदिकी' का तात्पर्य हिन्दू-प्रासाद की मौलिक भित्ति, वैदिकचिति के महत्व का मूल्यांकन है। प्रासाद की समीक्षा के लिए तीन दृष्टियों-कलात्मक, दार्शनिक एवं धार्मिक पर ऊपर संकेत किया गया है। वैदिकी में हमें प्रासाद की कलात्मक प्रकृति का कुछ आभास प्राप्त हो सकता है। परन्तु धार्मिक दृष्टिकोण से पुनः दो अवान्तर शाखाएँ प्रस्फुटित होती है, एक तो पौराणिक-धर्म में प्रतिपादित पूर्त व्यवस्था-देवालाय, कूप, तड़ाग, बापी आदि के निर्माण की परोपकारार्थ (धर्मार्थ) परम्परा तथा दूसरी इसका जनसमाज, विशेष कर राजाओं, समृद्ध एवं सम्पन्न व्यक्तियों पर प्रभाव तथा उनके आश्रय से इस संस्था का दैनन्दिन विपुल प्रसार और उसके द्वारा प्रासाद निर्माण का लोकोत्तर उत्थान।

अस्तु, अन्त में प्रासाद की पृष्ठभूमि के इस औपोद्घातिक निर्देश के उपरान्त प्रकरण की अवधारणा में इतना ही सूच्य है कि यद्यपि प्रासाद-कला की समीक्षा में अर्वाचीन समय में बहुत से ग्रंथ लिखे गये है, परन्तु उनमें शास्त्रीय दृष्टिकोण का अभाव है। इस ग्रंथ में शास्त्रीय दृष्टिकोण से ही प्रासाद की कलात्मक मीमांसा अभिप्रेत है। तद्नुरूप प्रासाद-वास्तु के जन्म एवं विकास के साथ-साथ प्रासाद की नाना शैलियों एवं उसके निवेश के सिद्धान्तों एवं प्रासाद-निवेश के अन्य सहायक निवेशों-मण्डप, जगती आदि पर भी नयी-नयी उद्भावनाएँ की गयी हैं और अन्त में भारतीय प्रासाद-कला का केन्द्रानुरूप अथवा राजाश्रयानुरूप एक विहगंम दर्शन भी किया गया है और अन्त में यह भी प्रयास किया गया है कि शास्त्रों में

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रतिपादित प्रसाद-स्थापत्य के सिद्धान्त और कला-कृतियों में कहाँ तक समन्वय की प्रतिष्ठा हो सकी है।

'प्रासाद-रचना' वास्तु-कला(स्थापत्य) का एक महत्वपूर्ण अंग है। 'प्रासाद' शब्द वैसे तो जन-साधारण में राजाओं के महलों के लिए प्रायः प्रयुक्त होता है, परन्तु वास्तु-शास्त्रीय परिभाषा में तो प्रासाद का तात्पर्य विशुद्ध स्वरूप में देवमंदिर से है। प्रासाद में 'राज' शब्द के जोड़ने से वह राजमहल का बोधक बन जाता है। अतः संक्षेप में 'प्रासाद' शब्द परम्परा के देव मंदिरों एवं राजमहलों-दोनों के लिए प्रयुक्त हुआ है अमरकोश में'हर्म्यादि धनिनां वासः प्रासादों देवभूभुजाम्' जो उल्लेख है वह उपर्युक्त कथन की पुष्टि करता है।

डॉ. आचार्य महोदय ने अपनी Encyclopaedia of Hindu Architecture (cf.p.364) में प्रासाद शब्द पर विस्तृत विवेचना किया है तथा विभिन्न उदाहरणों एवं अवतरणों का समुद्धरण कर अन्त में प्रासाद शब्द से निम्नलिखित भिन्न-भिन्न भवनों एवं रचनाओं का अर्थ लिया है।

''उपर्युक्त उद्धारणों से यह प्रकट है कि 'प्रासाद' शब्द का तात्पर्य आवास-भवनों एवं देव मंदिरों दोनों से है। प्रासाद शब्द-विशाल देवालयों एवं क्षुद्रमण्डपों, जहाँ पर किसी देव अथवा देवाधिदेव महादेव के लिंग की स्थापना होती है-दोनों के लिए प्रयुक्त होता है। इस शब्द के अर्थ में उत्तुंग राजभवन एव साधारण गृह दोनों सम्मिलित है। भवन की परम्परा में प्रासाद का अर्थ है बहुभौमिक भवन, बुर्ज, तथा उत्तुंग दर्शक-पीठ, एक ऐसा भवन जो ऊँची जगती पर निर्मित किया गया हो और जिस पर पहुँचने के लिए सोपान -पंक्ति का सहारा लिया जाय, वह भवन जो किसी देव-निमित्त अभिषिक्त है अथवा जिसमें राजा रहता है, अर्थात् देवमंदिर तथा राजभवन, अथवा परिषद् प्रकोष्ठ या बौद्ध-दीक्षा-शाला।'' 'प्रासाद' पर प्रकाश डालने के लिए जिन-जिन अर्थों का इस अवतरण में समावेश किया गया है वे लौकिक विशेष है वैज्ञानिक कम। वास्तुशास्त्रीय वैज्ञानिक विवेचना में शब्दशक्ति एवं परम्परागत विभिन्न साहित्य-संदर्भो से द्योतित एवं प्रचलित शब्दों का सर्वांश में समाहार नहीं होना चाहिए। पारिभाषिक शब्द तो एक ही दो वस्तु के नियामक होने चाहिए-अन्यथा विज्ञान तथा साहित्य में फिर अन्तर ही क्या रहा ? इसमें संदेह नही कि डाक्टर साहब ने अपने विस्तृत अनुसंधान एवं प्रगल्भ-गवेषण से जो इस शब्द की छान-बीन की है वह परम स्तुत्य है परन्तु वास्तुशास्त्रीय वैज्ञानिक विवेचन में पारिभाषिक शब्द के एक नियत अर्थ की खोज आवश्यक है। पुराणों एवं आगमों

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

तथा रामायण, महाभारत आदि के विभिन्न सदंर्भो में जो 'प्रासाद' शब्द के बहुल प्रयोग प्राप्त होते है, उनसे निसन्देह उसका विभिन्न अर्थो में प्रयोग स्पष्ट है। परन्तु प्रासाद शब्द का विशुद्ध एवं एकांगी प्रयोग देवमंदिर के लिए ही पुराणों में हुआ है। मानसार में तथा कामिकागम आदि दाक्षिणात्य ग्रंथों में मंदिरों के लिए विमान शब्द का विशेष प्रयोग हुआ है। समरांगणसूत्रधार में तो प्रासाद शब्द का एकमात्र अर्थ देवमंदिर है। विभिन्न प्रकार के देवालयों के वर्णन में असन्दिग्ध रूप से प्रासाद शब्द का ही अविकल प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त चतुर्विध स्थापत्य के आठ अंगों में ''प्रासाद'' एक विशिष्ट अंग है। प्रासाद-रचना, राज-भवन- निर्मिति तथा साधारण भवन प्रकल्पना इन तीनों के अपने पृथक- पृथक कला सिद्धान्त है। समरांगण का यह वैज्ञनिक वर्गीकरण भारतीय स्थापत्य में एक विशेष देन है।

अतः इस अवतरण से स्पष्ट है कि प्रासाद रचना (Temple-architecture) राज-भवन (नृपतेर्वेश्म) तथा साधारण- भवन इन दोनों से अपनी पृथक सत्ता रखता है। इसी दृष्टिकोण में समरांगण में देवमंदिरों के लिए 'प्रासाद' शब्द का प्रयोग किया गया है। वैसे तो देवमंदिर के लिए विभिन्न वास्तु शास्त्रीय ग्रंथों में विभिन्न पर्याय प्रस्तुत किये गये है अथवा देवमंदिर के लिए प्रासाद शब्द के अतिरिक्त विमान शब्द का भी प्रचुर प्रयोग देखा गया है, परन्तु उत्तरापथीय परम्परा में देवमंदिर के लिए प्रायः सभी ग्रथों में प्रासाद शब्द का ही विशेष प्रयोग पाया जाता है।

समरांगणसूत्रधार ग्यारहवीं शताब्दी का ग्रंथ है। प्रासाद-वास्तु का विकास एवं चरमोत्कर्ष उस समय तक पूर्ण रूप से सम्पन्न हो चुका था-यह विज्ञ विद्धानों से अविदित नहीं है। ग्यारहवीं शताब्दी का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रंथ 'ईशानशिवगुरूदेवपद्धति' है। इस ग्रंथ में जहाँ देवपूजा आदि के सम्बंध में विस्तृत विवेचन है वहाँ प्रासाद-वास्तु, प्रतिमा-निवेश आदि पर भी पड़ा ही प्रोज्जवल प्रकाश डाला गया है। तृतीय भाग के बारहवें अध्याय के सोलहवें श्लोक में 'प्रासाद' शब्द का बड़ा ही सुन्दर एवं विशद अर्थ अवलोकनीय है, जिससे प्रासादवास्तु का मर्म अविकल अवतरित हो गया है। उसका सार है कि देवमंदिर-प्रासाद का स्वरूप शिव तथा शक्ति की उभयात्मक सत्ता का द्योतक है। अथवा इसके स्वरूप में प्रारंभिक तत्व, जैसे बसुधा (धरा) आदि से देकर शक्ति तक सभी तत्वों का समावेश है। इस प्रकार प्रासाद रूपी यह देवमंदिर शैवी मूर्ति के नाम से चरितार्थ होता है। अतः यह प्रासाद ध्यान एवं पूजा दोनों के लिए योग्य है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रासाद की यह परिभाषा 'प्रासाद' शब्द के धत्वर्थ में भी छिपी हुई है। यह शब्द (प्रासाद) उस अर्थ अथवा अभिधेयार्थ का द्योतक है जिसमें हम उस निराकार अव्यक्त पुरूष की सादन- क्रिया करते है। अतः सादित पीठ एवं साद्य देव दोनों ही प्रासाद में प्रकट है। वाजसनेयीसंहिता के सादनमंत्र (12.53) का यही मर्म है। उपर्युक्त प्रासाद परिभाषा में शिव एवं शक्ति का निर्देश है - यह शैव-परम्परा है। वैष्णव शिव के स्थान पर विष्णु तथा शक्ति के स्थान पर लक्ष्मी समझ लें, इसी प्रकार अन्य देवों के प्रासादों के सम्बंध में भी यही चरितार्थ्य है। इस परिभाषा एवं उद्धरण का एकमात्र आशय यह है कि 'प्रासाद' एक प्रकार का निराकार एवं अव्यक्त पुरूष का साकार एवं प्रकट स्वरूप है। अग्निपुराण में लिखा है -

प्रासादं पुरूषं मत्वा पूजयेद् मन्त्रवित्तमः।
एवमेव हरिः साक्षात् प्रासादत्वेन संस्थितः स्त्र

अर्थात् 'प्रासाद' पुरूष-स्वरूप समझना चाहिए तथा मन्त्रवेत्ता के लिए प्रासाद भी पूज्य है। अथवा प्रासाद साक्षात् हरि स्वरूप है। इस प्रकार प्रासाद-वास्तु का तात्पर्य स्थापत्य कौशल में उस भवन-विशेष से ही नहीं है, जिसे हम पूजा-वास्तु कहते है अपितु भारतीय वास्तु-परम्परा में प्रासाद अथवा देवमंदिर पूजा-गृह के साथ ही पूज्य भी है। वह पार्थिव ही नहीं अपार्थिव भी है। प्रासाद से हमारा अभिप्राय है अप्रत्यक्ष पुरूष (ब्रह्म) का प्रत्यक्ष मूर्तस्वरूप, जिसमें सर्वव्यापक अप्रत्यक्ष पुरूष की प्रतीकस्वरूप प्रतिमा की स्थापना होती है। इसी परम्परा के अनुसार आज भी जहाँ देवालय की प्रतिमा का दर्शन एवं पूजन होता है वहा देवालय की प्रदक्षिणा भी नितान्त आवश्यक समझी जाती है।

संदर्भ

1. डॉ. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, भारतीय स्थापत्य।
2. गोपीनाथ-एलीमेन्टस आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी।
3. जितेन्द्रनाथ बनर्जी-डेवलपमेन्ट आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी।
4. तारापद भट्टाचार्य-ए स्टडी आफ वास्तु विद्या आर कैनन्स आफ आर्कीटेक्चर।
5. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल-भरतीय वास्तुशास्त्र।
6. पर्सी ब्राउन-इण्डियन 'आर्कीटेक्चर'।
7. पी.के. आचार्य-मानसार (अनुवाद)।
8. स्टेला क्रैमरिस-हिन्दू टेम्पुल।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

विष्णुपुराण में वर्णित शिल्प उद्योग : एक ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ० रामकुमार अहिरवार*

भारतीय परम्परा में पुराणों की प्रतिस्थापना, पाँचवे वेद के रूप में की गई है, जो पुराणों के महत्व को प्रगट करती है। मूलतः धार्मिक प्रवृत्ति के होने के बाद भी पुराणों के विशाल कलेवर में भारतीय सभ्यता और संस्कृति से सम्बन्धित अनेक तत्व समाहित हैं जो भारतीय संस्कृति के मान्य तत्वों का अनेक स्थलों पर परिवर्द्धन करते हैं तो ठीक उसी प्रकार अनेक स्थलों पर संवर्द्धन करते हुए कभी-कभी नवीन तथ्यों की प्रतिस्थापना करते हैं। समस्त पुराणों में विष्णुपुराण का अपना एक अलग वैशिष्ट्य है, जिसमें पाँचवी शताब्दी से लेकर नौवी शताब्दी तक के वैष्णव धर्म की प्रतिस्थापना, कथाओं एवं आख्यानों का जहाँ वर्णन तो है ही, वही तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक स्थिति का वर्णन भी प्रतिस्थापित है। अतएव प्रस्तुत शोध पत्र में विष्णुपुराण में वर्णित आर्थिक जीवन के अन्तर्गत शिल्प उद्योग का वर्णन ही अभिप्रेत है।

विष्णुपुराण कालीन भारतीय ग्राम आर्थिक रूप से आत्म निर्भर थे, आर्थिक निर्भरता का आधार था कृषि एवं शिल्प उद्योग। इस काल में छोटे राज्यों एवं सामंतों के उदय से, राज्य और शिल्पी काफी करीब आ गए।[1] विलासिता के सामान, युद्धोपयोगी अस्त्र-शस्त्र एवं दस्तकारी आदि के सीधे खरीददार थे तथा इन लघु उद्योगों को सामन्त वर्ग अप्रत्यक्ष रूप से प्रोत्साहित करता था।[2] विष्णुपुराण में वर्णित है कि शिल्प का सम्बन्ध हाथों से है। वायुपुराण में इसकी पुनरावृत्ति प्राप्त होती है।[3] जो शिल्प के बढ़े हुए

* विभागाध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन (म.प्र.)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

महत्व को प्रदर्शित करती है।[4] शिल्पी वर्ग, शिल्पादि कर्मों के द्वारा समुचित मात्रा में धन प्राप्त करता था।

शिल्पियों के लिए अलग से व्यवहृत होने वाला शब्द 'कारू' था। मनुस्मृति में इस वर्ग के लिए कारू तथा कारूकर दोनों ही शब्द प्राप्त होते हैं।[5] विष्णु पुराण में देवताओं के शिल्पी विश्वकर्मा को सहस्त्रों शिल्पों का कर्त्ता माना गया है।[6] विश्वकर्मा को समस्त शिल्पियों में श्रेष्ठ तथा उनके द्वारा अविष्कृत शिल्प विद्या को बहुत से व्यक्तियों के जीवन निर्वहन का आधार वर्णित किया है।[7] पुराण का शिल्पियों से विश्वकर्मा को सम्बन्धित करना तथा शिल्प को बहुत से व्यक्तियों के जीवन निर्वहन का आधार वर्णित करना, शिल्प के विकास को ही प्रदर्शित करता है। वायुपुराण में भी शिल्प तथा शिल्पी को विश्वकर्मा से सम्बन्धित करते हुए, उसे मनुष्यों की जीविका का आधार वर्णित किया गया है।[8]

ऐसा प्रतीत होता है कि शिल्पियों को राजा की ओर से सम्मान प्राप्त था। हरिवंश के विष्णुपर्व में कृष्ण बलराम के साथ चाणूर और मुष्टिक के युद्ध के प्रसंग में वर्णित है कि रंगशाला में, वहां एक शिल्प में जीवन निर्वाह करने वाले कारीगरों की श्रेणियों को आमंत्रित किया गया था तथा उसके लिए पृथक-पृथक मंचों की व्यवस्था की गई थी। इसके अतिरिक्त उनके मंचों पर जो पताकाएँ फहराई गयी थी, उनमें उन कारीगरों के उपकरण-द्रव्य के चिन्ह अंकित थे। पुराण में वर्णित है कि उन पताकाओं में वे मन्च पर्वतों के समान शोभा पाते थे।[9] एक अन्य स्थल पर शृंगाल वध के उपरान्त, बलराम और श्रीकृष्ण के प्रत्यागमन पर राजा के साथ शिल्पियों का, यदुवीरों के साथ उल्लेख प्राप्त होता है। पुराण के अनुसार अनेक प्रकार के शिल्पों द्वारा जीवन निर्वाह करने वाले नाना प्रकार के श्रेणी लोग, प्रजा वर्ग, मंत्री तथा बालकों व वृद्धों सहित सारी मथुरापुरी उनके स्वागत में जुड़ी थी।[10] यहाँ पर उल्लेखनीय है, उपर्युक्त वर्णन में श्रेणियों को प्रजा तथा मंत्रीवर्ग को पहले रखा गया है।

विष्णु पुराण में उद्योग धन्धों से विषद् अथवा विस्तृत विवरण प्राप्त नहीं होता है। ऐसा वर्णन प्रायः प्रासंगिक तथा विकीर्ण रूप में प्राप्त होता हैं, विष्णुपुराण में जो शिल्प प्राप्त होते है उनका वर्णन इस प्रकार है-

वस्त्र उद्योग- विष्णुपुराणकालीन भारतीय समाज में वस्त्रोद्योग उन्नति पर था। साधारण तीन प्रकार के वस्त्र समाज में प्रचलित थे, पहला मृगचर्म तथा वल्कल जो गरीबों एवं श्रमिकों द्वारा प्रयुक्त होता था, दूसरा सूती वस्त्र जिसका प्रयोग सामान्य जन करते थे तथा तीसरा क्षौम अथवा रेशम था जो राजाओं तथा सामन्तों द्वारा प्रयुक्त होता था। विष्णु पुराण में वर्णित है कि यज्ञानुष्ठान पर केशिध्वज ने मृग चर्म धारण किया

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

था।[11] कलियुग के सन्दर्भ में विष्णुपुराण वल्कल-बहुल वस्त्रों का उल्लेख करता है।[12] एक अन्य स्थल पर विहित है कि वानप्रस्थी को अपना परिधान और उत्तरीय वन-सुलभ, चर्म, कुश और काश में बनाना चाहिए।[13] ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ रुढ़िवादी और परम्परावादी व्यक्तियों द्वारा मृगचर्म आदि से बने वस्त्रों का प्रयोग किया जाता रहा होगा, परन्तु इस सम्भावना से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि ठंडे प्रदेशों में, बंगारी वाले मजदूर, निम्नवर्ग तथा आदिवासियों द्वारा इनका प्रयोग किया जाता रहा होगा। इत्सिंग काश्मीर से लेकर मध्य एशिया तक के लोगों के ऊन एवं चमड़े से बने वस्त्रों वाला वर्णित करता है।[14] विष्णुपुराण में श्रीकृष्ण को पीताम्बर धारण किए हुए वर्णित किया गया है।[15] इसी प्रकार बलराम के प्रसंग में उन्हें नीले वस्त्रों को धारण करने वाला वर्णित किया गया है।[16] यद्यपि विष्णुपुराण में रेशम का उल्लेख नहीं प्राप्त होता है। तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि वस्त्र रेशम के बनते थे।[17] पुराण में एक स्थल पर पीताम्बर को उज्जवल वर्णित किया गया है तथा दूसरे स्थल पर निर्मल।[18] निश्चित रूप से यह रेशम से बना होगा क्योंकि जिस चमक और निर्मलता का विवरण प्रस्तुत किया गया है, वह रेशम का परिचायक है।

रंगराजी उद्योग- वस्त्रोद्योग से ही जुड़ा हुआ एक और उद्योग था रंगराजी का। विष्णुपुराण में कंस के धोबी के लिए विशेषण बोधक शब्द रंगकारक प्रयुक्त है। ऐसा निरूपित होता है कि उसके पास सुन्दर एवं मनोज्ञ वस्त्र थे, जिनमें बलराम और कृष्ण को मनोकूल नील और पीत वस्त्र मिले थे।[19] एक अन्य स्थल पर वर्णन आता है कि कृष्ण और बलराम के वस्त्रों को क्रमशः सुवर्ण और अंजन के चूर्ण से रंगा गया था।[20] कनिष्क के शासन के पच्चीसवें वर्ष के कंकाली टीला के जैन मूर्ति अभिलेख में रंगसाजी से सम्बन्धित उल्लेख प्राप्त होता है।[21] जयभट्ट नामक रंगरेज की पत्नी के द्वारा एक मूर्ति दान देने का उल्लेख अभिलेख में प्राप्त होता है।[22] रंगरेज और धोबी, दोनों एक ही व्यक्ति होते थे जो रंग बनाने वाला रंगकार से पृथक होता था।[23] छोटे-छोटे राज्यों और सामन्तों के संरक्षण के कारण यह उद्योग भी फला फूला, ऐसा प्रतीत होता है।

आभूषण उद्योग- विष्णुपुराण में एक स्थल पर विष्णु के विविध स्वरूपों एवं रूपों की व्याख्या करते हुए विदित है कि जिस प्रकार सुवर्णभेद रहित और एक होकर भी कटक, मुकुट तथा कर्णिका आदि के भेद रूप प्रतीत होता है, उसी प्रकार एक ही हरि देवता, मनुष्य और पशु आदि नानाविधि कलाओं से निरूपित किया जाता है।[24] पुराण का यह कथन आभूषण निर्माण उद्योग की ओर संकेत करता है। एक अन्य स्थल पर विष्णुपुराण में सुवर्ण, मणि रत्नादि अलंकारार्थ प्रयोजनीय उपकरणों के अभाव में, मात्र

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

केश प्रसाधन कलियुगीन हीन अवस्था का लक्षण घोषित है।[25] ऐसा प्रतीत होता है कि आभूषणों का भी सभी वर्गों के प्रयोग के कारण, इस शिल्प का विकास हुआ। पुराणों में वर्णित है कि लक्ष्मी जब समुद्र से बाहर निकली तब विश्वकर्मा ने उनको दिव्य आभूषण प्रदान किए।[26] विष्णुपुराण में मुकुट[27], आपीड़[28] , कुण्डल[29], कौस्तुभ मणि[30], वलय[31] , कटक[32], केयूर[33], मुद्रिका[34] आदि आभूषणों का उल्लेख मिलता है। किरीट देवता या चक्रवर्ती सम्राट सिर पर धारण करते थे। मुकुट राजा और सामंत धारण करते थे। स्त्री और पुरूष दोनों का कर्ण भेद संस्कार होता था। कुण्डल सभी वर्णों के लोग धारण करते थे।[35]

विष्णुपुराण में, विष्णु के आभूषणों में सबसे अधिक प्रमुखता से ''वैजयन्ती'' का वर्णन किया गया है। यह गले में पहनने वाला आभूषण था जो नीलम, मुक्ता, कौस्तुभ, वैदूर्य तथा पुष्पराग आदि पंचरत्नों का बना होता था। टी. गोपीनाथ राव ने विष्णुपुराण के आधार पर इन रत्नों को पंच तत्वों का प्रतीक माना है- नीलम (नीलमणि) पार्थिव तत्व, भौतिक, मुक्ता जलीय तत्व, कौस्तुभ तेजस तत्व, वैदूर्य वायव्य तत्व एवं पुष्पराग आकाशीय तत्व के प्रंतीक हैं।[36]

स्वर्ण उद्योग- स्वर्णकारों तथा आभूषण बनाने वालों का सर्वप्रथम उल्लेख वाजसनेय संहिता में प्राप्त होता है।[37] जो इस उद्योग की प्राचीनता का परिचायक है। विष्णुपुराण में भी स्वर्णाभूषणों का उल्लेख आया है। विष्णुपुराण में स्वर्ण चोरी के प्रति कठोर रूख अपनाया गया है।[38] पुराण के अनुसार स्वर्ण की चोरी करने वाला सूकर नरक में जाता है। इसकी व्याख्या सुवर्ण में आयी कमी के आलोक में की जा सकती है।

मणि उद्योग- पुराणों में आभूषण उद्योग के समान एक और उद्योग जुड़ा हुआ था वह था कीमती पत्थरों का, जिनका वर्णन पुराणों में मणियों के रूप में हुआ है। विष्णुपुराण में आभूषणों की अक्षीणता हेतु लक्ष्मी से प्रार्थना की गई है।[39] पुराण में एक अन्य स्थल पर सुवर्ण, मणि तथा रत्न का उल्लेख है।[40] इसके अतिरिक्त विष्णु को कौस्तुभ[41] तथा स्यमन्तक[42] नामक मणि को धारण किया हुआ वर्णित किया गया है। महगें और साधारण किस्म के रत्नों का प्रयोग रत्नजड़ित आभूषणों तथा वर्तनों के निर्माण में किया जाता था। दण्डी ने उल्लेख किया है कि भूसी से रत्नों को चमकाने का काम किया जाता था।[43] आलोचित काल के ग्रन्थों में माणिक्य, नीलम, हीरा, वैदूर्य, पन्ना, फिरोजा तथा स्फटिक का उल्लेख प्राप्त होता है।[45]

लौह उद्योग- विष्णुपुराण में बाण बनाने वालों, कर्णी बाण बनाने वालों तथा खड्गादि शस्त्र बनाने वालों का उल्लेख प्राप्त होता है।[46] जो लौह उद्योग की ओर संकेत

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

करता है। आलोचित काल में इस उद्योग की समृद्धि तथा उन्नति का परिज्ञान विष्णुपुराण में वर्णित हथियारों के वर्णन से लगाया जा सकता है। पुराण में असि, कायणात्रम, कार्मुक (धनुष), कौमदकी गदा, खड्ग, गदा, गाण्डीव धनुष, चक्र, तोमर, त्रिशूल, दण्ड, निर्स्त्रिश, पन्नग, परशु, परिघ, मूसल, यष्टि, लांगल, वज्र, शरसंघ, शांग, शूल, सायक आदि अस्त्र-शस्त्रों का उल्लेख प्राप्त होता है।[47] खेती, बागवानी तथा दैनिक उपयोग की वस्तुओं के अतिरिक्त एक बड़े पैमाने पर हथियारों के उपयोग ने इस उद्योग को प्रोत्साहन प्रदान किया। पुरातात्विक और साहित्यिक साक्ष्य दोनों प्रकार के साक्ष्य लौह उद्योग की उन्नति को प्रगट करते हैं।

कुंभकारी व मृदभाण्ड उद्योग– यह उद्योग प्राचीन भारत के अनेक लघु उद्योगों में से एक प्रमुख उद्योग था, इस बात के प्रमाण उत्खननों में प्राप्त साक्ष्य तथा साहित्यिक साक्ष्य हैं जो इस उद्योग की समृद्धि की ओर संकेत करते हैं। विष्णु पुराण में कच्चे घडों तथा ईटों को पकाने वालों का उल्लेख प्राप्त होता है।[48] कुम्भकारी से दो वस्तुएं जुड़ी हुई थी पहला दैनिक जीवन में प्रयोग होने वाले बर्तन इत्यादि तथा दूसरा मृदमूर्तियाँ। जहां तक पहले वर्ग का प्रश्न है, वह उद्योग आलोचित युग में समृद्ध प्रतीत होता है। जैसा कि पुरातात्विक उत्खननों से प्राप्त मृद्भाण्ड़ों से ज्ञात होता है। यह उद्योग मुख्यतः आर्थिक रूप से निम्न वर्ग से सम्बन्धित था, अतः शहरों तथा व्यापार के पतन से इस पर उतना असर नहीं पड़ा, जितना कि विद्वानों ने अवधारणा व्यक्त की। मृदमूर्तियों तथा बर्तन उद्योग अपनी सहज उपलब्धता तथा सस्तेपन के कारण सामान्य जन में बहुत अधिक लोक प्रिय था।

तेल उद्योग– विष्णुपुराण में एक स्थल पर प्राप्त विवरण में तेल निर्माण उद्योग के बारे में पता चलता है। एक प्रसंग में उल्लेख है कि जिल में तेल स्वाभाविक करता है फिर वायु रूपी रश्मियाँ उसे घुमाती रहती है। यह क्रिया तेल संपीडन के समान होती है जिसके लिए स्वयं घूमता हुआ भी चक्का घुमाया जाता है।[49] तेल उद्योग काफी उन्नतिशील था। काली और सफेद सरसों[50], तिल[51] और इंगुदी[52] का तेल निकाला जाता था। इंगुद का तेल दीपक जलाने के अतिरिक्त फुंसी फोड़ों[53] की चिकित्सा में काम लाया जाता था। तेलियों की अपनी श्रेणियाँ थी। तेलियों की श्रेणियों के पास व्यक्ति, अपनी धनराशी को जमा कर देता था और जमा की गई धन राशी के ब्याज की आय से श्रेणी मंदिर में दीपक जलाने का कार्य करती थी।[54] दीप जलाने के इस महत्वपूर्ण कार्य को तेलियों की श्रेणियाँ ही करती थी। तेलिक श्रेणियाँ कर का भुगतान 'तेल' के रूप में करती थीं।[55]

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पुष्प उद्योग- विष्णुपुराण में फूलों के व्यवसाय से सम्बन्धित 'माली' का उल्लेख प्राप्त होता है। जिसने अनेकों (कृष्ण और बलराम को) भिन्न-भिन्न प्रकार के सुन्दर फूल प्रदान किए थे। फूलों की माला बनाना भी एक महत्वपूर्ण व्यवसाय था, जो अन्य उद्योगों की भांति था।[56] दण्डिराज नामक एक मौर्यशासक ने, मालाकारों की इस श्रेणी के पास एक अच्छी धनराशि को अक्षयनीधि के रूप में जमा किया था, जिससे कि मालाकारों की श्रेणी प्रतिदिन भगवान शैरि (विष्णु) को फूल एवं माला प्रदान करे।[57]

उपर्युक्त वर्णित व्यवसायों के अतिरिक्त विष्णुपुराण में यत्र-तत्र जो विवरण प्राप्त होते हैं, उससे छोटे-छोटे उन व्यवसायों का पता चलता है जो किसी जाति से सम्बन्धित था अथवा अपनी वृत्ति के कारण क्रमशः अलग से एक जाति बना रहा था। इस प्रकार के व्यवसायों में अश्व विक्रेता, वेद पढ़ाने वाले, ज्योतिषी, लाख, मांस, रस, तिल तथा लवण वेचने वाले, बिलाव, कुक्कुट, छाग, अश्व, शूकर तथा पक्षियों आदि को जीविकार्य पालने वाले, नट तथा मल्ल वृत्ति में रहने वाले, कैवर्त (मछुवारे), धन के लोभ रहित कार्य करने वाले पुरोहित, शकुन बताने वाले एवं ग्राम पुरोहित, मदिरा बेचने वाले, मेषोपजीवी (गरेड़िया) एवं बहेलियाँ आदि का उल्लेख प्राप्त होता है।[58]

इस प्रकार विष्णुपुराण में आर्थिक जीवन के अन्तर्गत शिल्प उद्योगों का वर्णन प्राप्त होता है। इससे स्पष्ट होता है कि ये पुराण न केवल धार्मिक ग्रन्थ हैं अपितु भारतीय संस्कृति के तत्कालीन विविध पक्षों के सांस्कृतिक जीवन के भण्डार हैं। जो इतिहास के अंधयुगीन पृष्ठों को आलौकित करते हैं।

संदर्भ

1. अरविन्द विक्रमसिंह, विष्णुपुराण एक अध्ययन, इलाहाबाद 1996 पृ. 243-247 उद्दृत
2. विष्णु पुराण 1.2.49 गीता प्रेस गोरखपुर
3. विष्णुपुराण 4.56 श्रीधरस्वामी व्याख्याकृत, दिल्ली 1987
4. विष्णुपुराण 1.15.119, गीता प्रेस गोरखपुर
5. मनुस्मृति 4.2.49 सम्पादित जे. के. दवे, बंबई 1982,
6. विष्णुपुराण 1.15.119 गीता प्रेस गोरखपुर
7. विष्णुपुराण 1.15.120
8. विष्णुपुराण 66.28-30
9. हरिवंश विष्णु पर्व 29.5 बंगवासी प्रेस द्वारा प्रकाशित कलकत्ता वि.सं. 1312
10. हरिवंश विष्णु पर्व 45.4
11. विष्णु पुराण 6.6.13-20
12. विष्णु पुराण 4.24.96
13. विष्णु पुराण 3.9.20

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

14. विष्णु पुराण 3.9.68
15. विष्णु पुराण 5.17.21
16. विष्णु पुराण 5.18.38
17. विष्णुपुराण एक अध्ययन, इलाहाबाद, 1996, पृ. 245
18. विष्णु पुराण 4.15.13, 6.7.83
19 विष्णु पुराण 5.19.14-17
20. विष्णु पुराण 5.9.5
21. इण्डियन एंटीक्वेरी भाग 10, पृष्ठ 111
22. विष्णुपुराण एक अध्ययन, इलाहाबाद 1996, पृ. 245
23. इण्डियन एंन्टिक्वेरी भाग 10, पृष्ठ 111
24. विष्णुपुराण 3.7.16
25. विष्णुपुराण 6.1.17
26. विष्णुपुराण 1.9.104
27. विष्णुपुराण 5.9.19
28. विष्णुपुराण 5.6.32
29. विष्णुपुराण 5.18.41
30. विष्णुपुराण 1.22.68
31. विष्णुपुराण 5.13.51, 5.18.13
32. विष्णुपुराण 4.15.13
33. विष्णुपुराण 4.15.13
34. विष्णुपुराण 6.7.85
35. विष्णुपुराण एक अध्ययन, इलाहाबाद1996 पृ. 244
36. गोपीनाथ राव, हिन्दू आइकोनोग्राफी, दिल्ली 1969 भाग 1 जिल्द 1, पृष्ठ 26
37. वजिसनेयी संहिता 30.7.17
38. विष्णुपुराण 2.6.8
39. विष्णुपुराण 1.9.128
40. विष्णुपुराण 6..1.17
41. विष्णुपुराण 1.22.68
42. विष्णुपुराण 4.13.19
43. कादम्बरी, मथुरानाथ शास्त्री, निर्णय सागर प्रेस बम्बई 1948 पृष्ठ 242
44. विष्णुपुराण एक अध्ययन, इलाहाबाद 1996 पृ. 245
45. विष्णुपुराण एक अध्ययन, इलाहाबाद 1996 पृ. 245
46. विष्णु पुराण 2.6.16, 2.6.17
47. विष्णु पुराण 1.12.45 , 5.38.45

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

48. विष्णु पुराण 2.6.27
49. विष्णु पुराण 2.12.26-27
50. अमरकोश 9,10 वी झलकीकर, बम्बई 1907
51. अमरकोश 3.189
52. अमरकोश 9.20
53. अरविन्द विक्रमसिंह, विष्णुपुराण एक अध्ययन, इलाहाबाद, 1996, पृ. 244
54. स्कन्दगुप्त का इन्दौर ताम्रपत्र,श्रीराम गोयल, गुप्तकालीन अभिलेख, पृ.261
55. इण्डियन एंन्टिक्वेरी भाग 01, पृ. 160
56. विष्णुपुराण 15.19.22-23
57. विष्णुपुराण एक अध्ययन, इलाहाबाद 1996, पृ. 246
58. विष्णुपुराण 2.6.11, 2.6.13

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

शिवलिंग स्थापत्य : अग्निपुराण के विशेष संदर्भ में

डॉ० रत्नेश कुमार त्रिपाठी*

भारतीय ज्ञान परम्परा का विस्तार पुराणों के माध्यम से प्रवाहित होता रहा है जो कहीं न कहीं अवरूद्ध होता दिखायी देता है। वस्तुतः पश्चिमी अवलोकन पद्धति को अपनाकर इतिहास की जिस विद्या का वर्तमान में हमने सृजन किया है वह भारत के वास्तविक ज्ञान दर्शन के रूप को प्रकट नहीं करता जिसके परिणामस्वरूप हमारे इतिहास लेखन की पुराणपरम्परा का ह्रास हुआ और हम पाश्चात्य विचार-दर्शन के कारण इतिहास के मूल विद्या से दूर हो गये। ऐसे में भारतीय जीवन-पद्धति के मूल सोपानों को पाश्चात्यशोधी तथाकथित विद्वानों नें आधुनिकता की अल्पविकसित तर्क प्रक्रिया के आधार पर कपोल कल्पित घोषित करने का कुत्सित प्रयास किया। पुराण भी उसी की भेंट चढ़ गये जबकि जिस हिस्ट्री विद्या को आधुनिक विद्वान पूर्णरूप मानकर चलते हैं वह पुराणों का ही अंश मात्र है। पुराणविद्या भारतीय चिति के हर रूप का विस्तृत वर्णन करता है। जीवन क्षेत्र के हर रूप को प्रकट करने वाले पुराणों में अग्निपुराण का विशेष महत्व है। स्थापत्यकला का विशद ज्ञान हमें अग्निपुराण में देखने को मिलता है, जिसमें भगवान की मूर्ति बनाने की विद्या से लेकर स्थापना तक कि विधि का वर्णन किया गया है। इसी के अन्तर्गत शिवलिङ्ग की स्थापत्यकला का वर्णन प्रस्तुत शोधप्रत्र का प्रकाट्य विषय है।

---

* असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, सत्यवती कॉलेज (प्रातः) दिल्ली विश्वविद्यालय

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

शिवलिंग

'शब्दब्रह्मतनुं साक्षाच्छब्रह्मप्रकाशकम्।'[1] लिंगमहापुराण के प्रथम अध्याय में शिव के स्वरूप का वर्णन करते हुए 'शब्द ब्रह्म' कहा गया है। उनके गुणों के अप्रकट व प्रकट दोनों का वर्णन करते हुए कहा है कि जो ओउम् अक्षरों से बनता है, जो स्थूल भी है और सूक्ष्म भी है।[2] शिव को ओंकार हैं उनका मुख ऋग्वेद है, जिह्वा सामवेद, कण्ठ यजुर्वेद और हृदय अथर्ववेद है।[3] आकार में सात, सोलह और अंत में छब्बीस रूपों की जानकारी लिंगमहापुराण में मिलती है।[4] ब्रह्मा का मूल स्रोत लिंग को बताते हुए सृष्टि के सृजन, पालन और संहार के रूप में दर्शाया गया है।[5] अग्निमहापुराण में लिंगरूप के साथ साथ शिव के अन्य देवताओं की भाँति शारीरिक रूप का वर्णन मिलता है ।

न्यसेत्सिंहासने देवं शुक्लं पंचमुखं विभुम् ।
दशबाहुं च खण्डेन्दुं दधानं दक्षिणैः करेः ॥
शक्त्यृष्टिशूलखट्वाङ्गवरदं वामकैः करैः।
डमरुं बीजपूरं च नीलाब्जंसूत्रमुत्पलम् ॥[6]

अग्निमहापुराण अध्याय 74 के अनुसार शिव पंचमुखी हैं, उनकी दश भुजाएँ हैं तथा वे खण्डेन्दु को धारण करते हैं। वे अपनी दाहिनी भुजाओं में शक्ति, सृष्टि, त्रिशूल, खट्वाङ्ग तथा वरद मुद्रा धारण करते हैं तथा बाऐं हाथों में डमरू, बीजपूर, नीलकमल तथा उत्पलसूत्र धारण करते हैं। यहाँ शिव की मूर्ति के बत्तीस लक्षणों का संकेत मिलता है। चूंकि शोधपत्र का प्रतिपाद्य विषय लिंगस्थापत्य है अतः अग्निमहापुराण में वर्णित शिव के लिंगरूप का विषद वर्णन निम्नवत् है।

लक्षण

अग्निपुराण अध्याय 54 में शिवलिंग के कई प्रकार के लक्षणों का वर्णन प्राप्त होता है। इसमें क्रमशः घृतजन्य लिंग, मिट्टी का शिवलिंग, लकड़ी का शिवलिंग, पत्थर का शिवलिंग, मोती, चाँदी, ताँबा, पीतल, पारद (रांगा और रस) तथा लोहे से बनने वाले शिवलिंग उनके लक्षण और विशेषता का वर्णन प्राप्त होता है।

वक्ष्याम्यन्यप्रकारेण लिङ्गमानादिकं शृणु।
वक्ष्ये लवणजं लि० घृतजं बुद्धिवर्धनम् ॥[7]
भूतये वस्त्रलिङ्ग तु लिङ्ग तात्कालिकं विदुः।
पक्वापक्वं मृण्मयं स्यादपक्वात्पक्वजं परम् ॥[8]

शिवलिंग के लक्षण को बताते हुए इन श्लोकों में कहा गया है कि तत्काल नमक और घी से बना हुआ शिवलिङ्ग बुद्धिवर्धक तथा वस्त्र से बनाया गया लिंङ्ग समृद्धिकारक होता है। मिट्टी का बनाया हुआ लिङ्ग दो प्रकार को होता है। पक्व तथा अपक्व। अपक्व की अपेक्षा पक्व मिट्टी का लिङ्ग श्रेष्ठ होता है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ततो दारुमयं पुण्यं दारुजाच्छैलजं वरम्।
शैलाद्वरं तु मुक्ताजं ततो लौहं सुवर्णजम् ।।[9]
राजतं कीर्तितं ताम्रं पैत्तलं भुक्तिमुक्तिदम् ।
रत्नजं रसलिङ्ग च भुक्तिमुक्तिप्रदं वरम् ।।[10]

पूर्वोक्त तत्कालिक लिंगो के लक्षण और उसके उद्देश्य का वर्णन दिया गया है। उसके पश्चात् दीर्घकालिक शिवलिङ्ग लक्षणों का वर्णन प्राप्त होता है। जिसमें मिट्टी से श्रेष्ठ काष्ठलिङ्ग अधिक पुण्यप्रद होता है। काष्ठलिङ्ग से प्रस्तरलिङ्ग, प्रस्तलिङ्ग से मौक्तिकलिङ्ग (मोती का शिवलिङ्ग), लौहलिङ्ग अधिक श्रेष्ठ होता है। किन्तु स्वर्णलिङ्ग लौहलिङ्ग से अधिक कल्याणकारी बताया गया है। इनके बनावट के प्रमाण भी अलग-अलग हैं। काष्ठ और पत्थर के शिवलिङ्ग की ऊँचाई एक हाथ की बताई गयी है।[11] घर में स्थापित चलशिवलिङ्ग का परिमाण एक अंगुल से लेकर पंद्रह अंगुल तक बतायी गयी है।[12]

लिङ्ग स्थापत्य

अग्निमहापुराण में शिवलिङ्ग की स्थापत्य कला का वर्णन बड़े ही सरल रूप में हुआ है। अग्निमहापुराण के अनुसार पहले एक चौकोर-प्रस्तर खण्ड को लेकर उसे लम्बाई से दो भागों में विभक्त कर देना चाहिए। उसमें से नीचे वाले भाग के आठ बराबर भाग कर देने चाहिए। इसके तीन भागों को छोड़कर शेष पाँच भागों में से चौकोर विष्कम्भ का निर्माण करके फिर लम्बाई के छह भाग करके उसको एक, दो और तीन के क्रम में अलग रखना चाहिये।[13] इन तीनों भागों को क्रमशः ब्रह्मभाग, विष्णुभाग और शिवभाग कहा है।[14] यह शिवभाग दो शेष भागों से बड़ा होता है जो वर्धमान कहलाता है। इसके पश्चात् उसकी बत्तीस और चौंसठ भुजाएँ बनाकर गोलाकार स्वरूप प्रदान करना चाहिए तदन्तर शिल्पी को लिङ्ग को सिर काटना चाहिए और लिङ्ग के विस्तार आठ भागों में विभक्त करके उसके सिर को छत्राकार बना लेना चाहिए।[15] जिसकी लम्बाई-चौड़ाई तीन भागों में समान हो वह समभाग वाला लिङ्ग सभी कामनाओं को प्रदान करने वाला बताया गया है।[16] अग्निपुराण के अनुसार इस लिङ्ग का विष्कम्भ पूरी लिङ्ग की लम्बाई का चतुर्थांश होता है और देवोपासना में इसी प्रमाण को स्वीकार किया जाता है।[17]

सभी लिङ्गों के सामान्य लक्षण का वर्णन हमें अग्निपुराण में मिलता है। इसमें कहा गया है कि बुद्धिमान व्यक्ति को सोलह अङ्गुल लिङ्ग को छह भागों में इस प्रकार विभक्त करना चाहिए कि मध्यसूत्र ब्रह्म और रुद्र भागों से होता हुआ जाय। इस प्रकार के सूत्रों से बने हुए भागों में पहले दो भागों का विस्तार आठ यव होता है और उसके बाद

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रत्येक वर्ग अपने पूर्व वर्ग की अपेक्षा एक यव कम होता है। उसके ऊपर के भाग को छोड़कर नीचे के भाग को तीन भागों में विभक्त कर देना चाहिए और शेष दो भागों को आठ खण्डों में विभक्त करके ऊपर के तीन भागों को अलग कर देना चाहिए। पाँचवें भाग के ऊपर घूमती हुयी एक लम्बी रेखा बनावे और एक भाग को छोड़कर बीच के उन दो रेखाओं का संगम करावें।[18]

अग्निमहापुराण में शिवलिङ्ग के विस्तृत लक्षण और उसकी पूजा-पद्धति का विषद वर्णन मिलता है। शिवलिङ्ग का सामान्य वर्णन ही कितना विषद है यह उपरोक्त विवेचन से ही स्पष्ट होता है जबकि शिवलिङ्ग के लक्षणों का विस्तृत वर्णन अग्निमहापुराण में मिलता है। इतना ही नहीं तो देवी-देवताओं का मूर्तिस्थापत्य, गृह-निर्माण, नगर-निर्माण, देवालय निर्माण इत्यादि विषय अग्निपुराण के महत्वपूर्ण अंग है। पुराण स्वयं में जानकारी के बड़े स्रोत हैं। इन्हें कपोल-कल्पित कहकर ज्ञान-परम्परा से दूर रखने की अपेक्षा इनपर शोध करके भारत की मूल ज्ञानपरम्परा का प्रवाह पुनर्जीवित करने का प्रयास विद्वतापरक होगा।

सन्दर्भ

1. लिंगमहापुराण 1/19
2. 'अकारोकारमकारं स्थूलं सूक्ष्मं परात्परम्।' लिंगमहापुराण 1/20
3. ओंकाररूपमृग्वक्त्रं सामजिह्वासमन्वितम्।। यजुर्वेदमहाग्रीवमथर्वहृदयं विभुम्। लिंगमहापुराण 1/20-21
4. प्रधानावयवं व्याप्य सप्तधाधिष्ठितं क्रमात्। पुनः षोडशधा चैव षड्विंशकमाजोद्भवम्।। लिंगमहापुराण 1/23
5. लिंगमहापुराण 1/24
6. अग्निमहापुराण 74/50-51
7. वही, 54/1
8. वही, 54/2
9. वही, 54/3
10. वही, 54/4
11. 'हस्तोत्तरोच्छ्रितं शैलं दारुजं तद्वदेव हि।' अग्निमहापुराण, 54/7
12. 'अङ्.गुलाद्गृहलिंङ्गं स्याद्यावत्पञ्चदशाङ्.गुलम्॥' अग्निमहापुराण, 54/8
13. अग्निमहापुराण, 53/1-2
14. 'ब्रह्मविष्णुशिवांशेषु वर्धमानोऽयमुच्यते।' अग्निमहापुराण, 53/3
15. अग्निमहापुराण, 53/3-6
16. त्रिषु भागेषु सदृश आयामे यस्य विस्तरः। तद्विभागसमं लिङ्ग सर्वकामफलप्रदम्॥ अग्निमहापुराण, 53/7
17. अग्निमहापुराण, 53/8
18. वही, 53/9-12

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

धेनुकासुर वध आख्यान और उसका शिल्पांकन

डॉ० चन्द्रशेखर गुप्त*

पुराणों में अवतारों अथवा महापुरुषों द्वारा कई आततायियों और असुरों का वध करने के प्रसंग प्रायः वर्णित हैं। असुरों के संहार आख्यान शिल्प में भी प्रायः अंकित मिलते हैं और चित्रों में भी। यह उल्लेखनीय तथ्य है कि आद्य वैदिक काल में असुर यह विशेषण अच्छे रूप में इन्द्र, वरूण आदि देवों के लिए प्रयोग में लाया जाता था। कालान्तर में देवों को अच्छा तथा असुरों को बुरा माना गया। इसकी सबसे बड़ी परीणिति देवासुर संग्राम के रूप में दृष्टिगत होती है। यह आर्ष संस्कृति के विभाजन तथा अग्नि-पूजक पशु जन (परवर्तीकालीन पारसिकों) की नव-स्थापना का परिचायक है। पुराणवर्णित कुछ असुर यक्ष परम्परा से सम्बन्धित दिखायी देते हैं जिनमें धेनुकासुर बकासुर आदि का समावेश किया जा सकता है। यहाँ धेनुकासुर वध आख्यान, उसकी पृष्ठभूमि एवं उसके शिल्पांकन की चर्चा संकलित है।

धेनुकासुर वृन्दावन के समीपस्थ तालवन में अपने बंधु-बांधवों के साथ रहता था। वह गदहे के रूप में रहता और जो भी उस तालवन में प्रविष्ट होता या ताड़ फल खाने का यत्न करता वह उसे दुलत्तियाँ मारकर मार डालता था। कृष्ण, बलराम तथा सुदामा आदि गोपों के साथ वहाँ जाते हैं और फल तोड़ते हैं। धेनुकासुर के आने और दुलत्तियाँ झाड़ने पर बलराम उसके पिछले पैर पकड़ कर उसे हवा में घुमाते हैं और ताड़ के पेड़ों पर उसे दें मारते हैं। धेनुकासुर के मारे जाने पर उसके जाति बांधव दौड़ आते हैं पर सारे उसी की गति को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार बलराम ने उस गर्दभ-रूपी धेनुकासुर को मार कर तालवन को मुक्त किया। यह आख्यान विष्णु तथा भागवत पुराणों में वर्णित मिलता है।

---

* नागपुर

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बौद्ध परम्परा में गर्दभ यक्ष के रूप में यही आख्यान प्राप्त होता है। बुद्धचरित के अनुसार बुद्ध ने अपने मथुरा वर्षावास के दौरान एक यक्ष का जो अत्यन्त भयंकर था और अपने तालवन में आने वालों और ताड़ फलों को तोड़ने वालों को दुलत्तियाँ झाड़ मार डालता था का शमन किया था। इस तरह दोनों कथाओं में कर्त्तव्य एक ही है मात्र बुद्ध और बलराम धेनुकासुर मारने वाले के रूप में भागवत और बौद्ध संदर्भों में अलग-अलग वर्णित हैं।

भास के बालचरित नामक नाटक में धेनुकासुर वध का श्रेय बलराम के स्थान पर कृष्ण को दिया गया है। यह कवि की अपनी संकल्पना है। भागवत परम्परा में कृष्ण के अतिरिक्त बलराम को भी कई असुरों (यथा - प्रलम्बासुर) को मारने वाला बताया गया है; किन्तु चूँकि कृष्ण भागवत के नायक और वृष्णि-वीरों में परम हैं, अतः सहज रूप में भास द्वारा इस आख्यान के नायक के रूप में वर्णित किये गये हैं।

इस धेनुकासुर वध आख्यान का अंकन शिल्प तथा चित्र दोनों विधाओं में दृष्टिगत होता है। सबसे प्राचीन शिल्पांकन वाकाटककालीन है। यह ईस्वी चौथी-पाँचवीं शताब्दी की रचना है और नागपुर जिले के माण्ढल नामक स्थान से 1975-76 में हुए उत्खनन के दौरान प्राप्त हुई थी। आरम्भिक वाकाटक काल की कई मूर्तियाँ (यथा - ब्रह्मा, शिव के महेश्वर, अष्टमूर्ति, कपर्दिक, सदाशिव, लकुलिश, विशाख आदि रूप, दुर्गा, सूर्य, वासुदेव, संकर्षण, पार्वती आदि), ताम्रपट्ट, मन्दिर वास्तु आदि यहाँ मिले थे। बलराम की मूर्ति खण्डित है पर सिर रहित इस मूर्ति के पृष्ठभाग पर बनी सर्प कुण्डली और दायें हाथ में उल्टा लटकता गर्दभ, इसके धेनुकासुर वध मूर्ति होने में कोई सन्देह नहीं रखता।

इसी भाँति इसी काल की (किन्तु कुछ परवर्तीकालीन अथवा ईस्वी पाँचवी-छठवी शताब्दियों की) एक रचना मूर्ति पवनार (प्राचीन प्रवरपुर) जिला वर्धा से प्राप्त हुई है। इस शिल्पपट्ट पर कृष्ण, सुदामा, बलराम, मानव-रूप में धेनुकासुर और पृष्ठभूमि में आवक्ष गदर्भ जड़े ताड़ वृक्षों का अंकन है। धेनुकासुर जमीन पर पैर सिकोड़े पड़ा उठने का प्रयत्न करता हुआ बायाँ हाथ टेके और दायाँ हाथ सिर के पास उठाये अंकित है। उसके समाने प्रत्यालीढ मुद्रा में बलराम, दायें हाथ में गदहे के पिछले पैर पकड़ उल्टा लटकाये हुए और उनके पीछे दो मानवाकृतियाँ (कृष्ण तथा सुदामा) खड़ी अंकित है। यह पूरा अंकन पूरे आख्यान का सफल प्रदर्शन कराता है। तालवन में कृष्णादि का प्रवेश, धेनुकासुर का गर्दभ रूप में आकर आक्रमण और बलराम का उसकी पिछली टाँग पकड़ना, हवा में घुमाकर ताड़ वृक्ष पर पटकना और मरते समय उस असुर का मानवाकार रूप में आना इस गत्यात्मक प्रसंग के प्रमुख अवसरों को शिल्पी ने उपयुक्त

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

चयन कर शिल्पांकित किया है, जो अत्यन्त सराहनीय है।

पवनार के ये शिल्पावशेष अन्य वास्तु आदि अवशेषों के धाम नदी के पार वाले स्थान से प्राप्त हुए थे। यह स्थान जमनालाल बजाज द्वारा विनोबा भावेजी को दिया गया था। आश्रम के लिए खुदाई करते समय इनकी प्राप्ति हुई थी। म.म.वा.वि. मिराशी ने इन शिल्पाकृति में से कुछ की रामायण कथा से पहचान सुझाते हुए चर्चित शिल्पपट्ट को राम द्वारा बाली-वध प्रसंग से जोड़ा गया था। प्रस्तुत पट्ट की सही पहचान आ. जामखेड़कर द्वारा सुझाई गयी थी। इस तथा अन्य शिल्पपट्टों को भागवत कथा से जोड़ने का कार्य इन पंक्तियों के लेखक ने भी किया है।

यह धेनुकासुर बौद्ध परम्परा में वर्णित गदर्भ यक्ष का भागवती संस्करण सिद्ध होता है। अश्वघोष के बुद्धचरित तथा अन्य साधनों से ज्ञात होता है कि एक यक्ष मथुरा के समीप स्थित तालवन में गदहे के रूप में रहता था। वह तालवन में जाने वालों को खा जाता था। भगवान बुद्ध ने उसका दमन कर उसका आतंक दूर किया।

इस गर्दभ यक्ष का अंकन पवनी, जिला भंडारा से प्राप्त स्तूप की वेदिका स्तम्भ पर प्राप्त हुआ है। ईसा पूर्व तीसरी-दूसरी शताब्दी के इस अंकन में मात्र गर्दभमुखी (खण्डित) मानवाकार यक्ष बायीं ओर हाथ जोड़े खड़ा है। यह शिल्पांकन पूरे प्रसंग को नहीं दर्शाता पर गर्दभ (खर) रूप के कारण गदर्भ यक्ष ही है इसमें कोई सन्देह नहीं।

तालवृक्ष इस प्रसंग के कारण बलराम का अंक बन गया। संकर्षण (बलराम) के मन्दिर के सामने स्थापित ध्वज स्तंभ के शीर्ष पर ताड़ वृक्ष का शीर्षक अंकित किया गया मिलता है। ऐसे कई शीर्षक विदिशा के बेसनगर-खांब बाबा आदि कई स्थानों से मिले हैं। ग्वालियर के गूजरी-महल संग्रहालय में संग्रहीत विदिशा के एक सुन्दर शीर्षक पर तो गर्दभ का भी अंकन है, जो इस प्रसंग का प्रतीकात्मक अभियोजन प्रस्तुत करता है।

सन्दर्भ

1. विष्णु पुराण, विल्सन का अंग्रेजी अनुवाद, पृ. 413-14
2. भागवत पुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर सं. 2060, दशम स्कन्ध, अध्याय 15
3. वा.वि. मिराशी, प्रपोतदार सम्मान ग्रंथ, 1950; संशोधन मुक्तावलि सर 1, पृ. 177-86; Sarupa Bharat, p. 271-88; Studies in Indology vol. II pp. 272-84; Corpur Inseription Indicaram V, CII. V Inscriptions of the Vakatakas, Dotaomund 1963, Intro.
4. अ.प्र. जामखेड़कर, पवनारयेथील तथाकथित बालिवध मूर्ति, विदर्भ संशोधन मण्डल वार्षिक 1974, नागपुर, 1975, पृ. 145-55
5. चन्द्रशेखर गुप्त Parmar Under the Vakatakas, Age of the Vakatakas, Ed. A.M. Shastri, Harman Publishing House, Delhi, 1992
6. S.B. Deo & J.P. Joshi, Pani Excavation 1969-70, Nagpur, 1972

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मंदिर स्थापत्य एवं वास्तुकला का इतिहास

मायापति मिश्र*

विश्रान्तिर्यस्य सम्भोगे सा कला न कला मता।
लीयते परमानन्दे ययात्मा सा परा कला ॥

कला की यह पौराणिक व्याख्या उस कला को कला मानती ही नहीं जो स्वार्थ एवं भोगविलास के निमित सृजित की जाती है और जो भोग सम्भोग तक सीमित होकर वहीं समाप्त हो जाती है। कला तो वह है जो मनुष्य को परमानन्द में तल्लीन कर दे जिसकी अनुभूति और अभिव्यक्ति सुखद एवं लोक कल्याणकारी हो वही वास्तविक कला है। कला के प्रारम्भिक व्याख्याता आचार्य भरतमुनि ने कला को दो रूपों में निरूपित किया है एक मुख्य कला एवं दूसरी गौंण कला। प्राचीन ग्रंथों में 'कला-विलास', शुक्रनीति, प्रबंध कोष, कादम्बरी, कालिका पुराण तथा बौद्ध एवं जैन ग्रंथों में भरी कलाओं के संबंध में चर्चा की गयी है। वास्तव में कला का अर्थ है मानवीय संरचना । सभ्यता के प्रारंभकाल से ही मानव ने सृष्टि में बिखरे दृश्य एवं अनुभूतिमय अदृश्य तथ्यों को गुफाओं की दिवारों पर उकेरना प्रारंभ कर दिया था । आगे चलकर सभ्यता के साथ-साथ कला के क्षेत्र का भी विकास हुआ । विकसित कला के दो रूप सामने आये -

01. उपयोगी कला-जिसमें दैनिक जीवन से संबंधित भौतिक तत्व समाहित हैं।
02. ललितकला - जिसमें वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीतकला एवं काव्य कला समाहित हैं, जिसका निमित्त रस रंग एवं आनन्द की अनुभूति है। पौराणिक व्याख्या इसे ही परमान्द तक ले जाने एवं उसमें तत्कालीन कर देने का माध्यम मानती है-

* 384 सिनियर एम.आई.जी., कटारा हिल्स, भोपाल (म.प्र.)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

'लीयते परमानन्दे ययात्मा सा परा कला'

भारतीय वास्तु शास्त्र की अवधारणा बहुत ही व्यापक है। सृष्टि की समस्त वस्तुएँ वास्तु में समाहित होती है। वास्तु शब्द की उत्पत्ति भी वस्तु शब्द से मानी जाती है। अतः सृष्टि के सारे पदार्थ वस्तु रूप में वास्तुशास्त्र के विषय के अन्तर्गत आते हैं। वास्तुकला का विषय अत्यन्त व्यापक है। उसकी विराटता के दायरें में संपूर्ण ब्रह्माण्ड आता है। भारतीय स्थापत्य कला वास्तुशास्त्र एवं वास्तु कला का अभिन्न अंग है। संसार के प्राचीनतम ग्रन्थों में से एक अथर्ववेद स्थापत्यवेद के नाम से भी जाना जाता है। विश्वकर्मा को देवताओं का वास्तुशास्त्री एवं स्थापत्य का प्रणेता माना जाता है। इसी प्रकार महिदानव (मय) को असुरों का स्थापत्यकार माना गया है। विश्वकर्मा सृष्टि के प्रथम शिल्पी हैं। अतः कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति एवं जीवन दृष्टि स्थापत्य के शास्त्रीय पद्धति की प्रथम व्याख्याता है । इस विषय में मत्स्य पुराण का यह कथन पुष्ट प्रमाण है कि

भृगुरत्रिवाशिष्टश्च विश्वकर्मा मयस्तथा,
नारदो नग्नाजिच्चैवः विशालाक्ष पुरन्दरः ॥
ब्रह्मा कुमारी नन्दीशः शौनको भर्ग एव च ।
वासुदेवोऽनिरूद्धश्च तथा शुक्रबृहस्पति ॥
अष्टादशैते विख्याताः शिल्पशास्त्रेपदेशकाः ।

ये अट्ठारह आचार्य वास्तुशास्त्र एवं शिल्पकला के पारंगत एवं स्थापित विद्वान एवं मर्मज्ञ थे। भारतीय स्थापत्य कला जितनी प्राचीन है उतनी ही व्यापक एवं शास्त्रसम्मत है ।

धर्म भारत का प्राणतत्व है। अतः भारतीय संस्कृति भी धर्मप्रवण बन पड़ी है। भारतीय संस्कृति पर आधारित भारतीय कलासंरचना पूर्णतः अध्यात्म पर आधारित है। प्राचीन भारतीय कलाकारों ने भारतीय संस्कृति के अध्यात्मिक उपादानों को लेकर कला के वृहत्त स्वरूप का सृजन किया है। इस सृजन में भारतीय कलाकारों की अन्तः प्रेरणा एवं दैवी आस्था ने पौराणिक, धार्मिक प्रसंगों एवं अध्यात्मिक विचारों को पाषाणों में उकेर कर सजीव कर दिया है । इसके विपरित जहाँ बाह्य सौन्दर्य से प्रेरित होकर कला की अभिव्यक्ति की गयी वहाँ प्रकृति की विराटता ने उसे तब तक भाव शून्य नहीं होने दिया है जब तक कि कलाकार लोक कल्याणकारी भाव से विमुख नहीं हुआ है। जबकि दुनिया में आज की कला में यह देखने को मिलता है -

आज की कला किसे संदेह ?
ह्यास युग की निर्जीव प्रतीक,

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

न स्वर में संगति, सौष्ठव सार
मात्र अपरूप अमूर्त अलीक।
गलस्तन, गगन-कुसुम, शश श्रृंग
न जन-भू जीवन हित उपयोग,
भाव रस की न रूप से पुष्टि
रेख रंग रूचि का रिक्त प्रयोग
न वह सौन्दर्य जिसमें सत्य,
ज्योति छाया का माया जाल,
न वह सत्य ही न जो शिव रूप
बाल की भले निकले खाल।
अचेतन उपचेतन के चित्र।
मात्र अति वैयक्तिक उच्छवास
रेंगती कला पंक कृमि तुल्य
अधोमुख कुत्सित बुद्धि विलास-पंत/ लोकायतन/163

ऐसी कला को भारतीय मनीषा पहले ही यह कहकर नकार चुका है कि-
विश्रान्ति सम्भोगे सा कला न कला मता

संदर्भ

1. मन्दिर स्थापत्यकला का इतिहास - डॉ. सच्चिदानंद सहाय ।
2. विश्व हिन्दूकोश - सं. डॉ. राजबलि पाण्डेय ।
3. लोकायतन - सुमित्रानंदन पंत ।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

स्कन्दपुराण के अन्तर्गत उज्जयिनी के नगरीय सन्दर्भ

डॉ० अंजना सिंह गौर*

स्कन्दपुराण के अवन्तिखण्ड में उज्जयिनी के नगरीय प्रतिमान स्पष्टतः नहीं दिखाई देते परन्तु उन सभी पौराणिक सन्दर्भों, पुरातात्त्विक साक्ष्यों के द्वारा उज्जयिनी के नगरी होने का महत्वपूर्ण प्रयास इस शोध पत्र के माध्यम से किया गया है।

जल और जीवन के अटूट सम्बन्ध के कारण पृथ्वी पर प्राणी मात्र की उपस्थिति एक शाश्वत सत्य है और इसी सत्य के चलते प्राचीन काल से संस्कृतियों के उदय होने के प्रमाण जलस्रोतों के आसपास ही हमें प्राप्त होते हैं। उज्जयिनी नगरी के नगरीय सन्दर्भों की साक्षी शिप्रा नदी के अनेक उल्लेख स्कन्दपुराण में प्राप्त होते हैं -

गंगा सिंधु सरस्वती च यमुना गोदावरी नर्मदा।
कावेरी सरयूः महेन्द्रतनया चर्मण्वती वेदिका।।
शिप्रा वेत्रवती महासुरनदी रण्याना च या गण्डकी
पुण्यः पुण्यजलेः समुद्र सहिता उ कुर्वन्तु न मंगलम्।।

अर्थात् पुण्यसलिलाओं में चम्बल (चर्मण्वती), शिप्रा(ख्याता) एवं बेतवा (वेत्रवती) इसी अंचल को पवित्र एवं जलपूरित बनाती है। इनमें पुण्यसलिला शिप्रा का स्थान सर्वाधिक पूज्य एवं लोकप्रिय हुआ है। पुण्यदा सरिता के तट पर इतिहास, संस्कृति, धर्म, एवम् अध्यात्म के अनेक युगयुगीन परिदृश्य मूर्त हुए हैं क्योंकि कोई भी नदी घाटी संस्कृति ही युग के इतिहास की साक्षी होती है। नदियों के आसपास ही

---

* प्रा.भा.इति.सं. एवं पुरातत्त्व अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

संस्कृतियाँ फलती-फूलती है तथा कृषि, पशुपालन, आदि उत्पादन तथा बाजार तन्त्र व उद्योग किसी भी नगर के प्रतिमान होते हैं।

इसी सन्दर्भ में शिप्रा नदी के आसपास उज्जयिनी 6ठीं शताब्दी ई.पू. में अस्तित्व में आई। पुरातात्त्विक प्रमाणों से यह जानकारी प्राप्त होती है कि प्रद्योत नन्द युगीन नगर नियोजन विकसित अवस्था में था। उत्खनन से ज्ञात होता है कि नगर में लगभग 700-450 ई.पू.के मध्य महाप्राकार का अस्तित्व था। प्रद्योत के शासन काल में राज्य की राजधानी होने से उज्जयिनी का व्यवस्थित नगरीकरण हुआ।

महाप्राकार शिप्रा नदी के जल से नगर को बचाने के लिये बनाई गई थी। उत्तर एवं पश्चिम की ओर शिप्रा नदी प्रवाहित होती थी व पूर्व तथा दक्षिण में एक गहरी परिखा थी। इस परिखायुक्त महाप्राकार से उज्जयिनी का नगर नियोजन नगर दुर्ग के रूप में कहा जा सकता है। इसके निर्माण में अच्छ गुथी हुई काली मिट्टी का प्रयोग किया गया था। शिप्रा नदी की बाढ़ से यह महाप्राकार क्षतिग्रस्त होता रहता था, जिसे समय-समय पर मरम्मत किया जाता था।

प्रमाणों से ज्ञात होता है कि महाप्राकार को नदी की ओर की प्राचीर तीन बार मरम्मत की गई।

परिखा में प्रवाहित होने वाली नदी के जल से महाप्राकार के कटाव को रोकने के लिए परिखा और महाप्राकार के मध्य ईंटों से निर्मित चबूतरा बनाया गया था। बाद में इस प्राकार को सुरक्षित रखने के लिए लकड़ी के पाटों का प्रयोग किया गया।

इस प्रकार शिप्रा नदी संस्कृति उज्जयिनी की नगरीय प्रक्रिया को उद्भासित करती हुई प्रतीत होती है। इसके तटीय क्षेत्रों में अनेक पुरातात्त्विक सामग्रियों का संकलन किया गया है, जो इसके नगरीय प्रतिमानों को स्पष्ट कर रहा होता है। कायथा, महिदपुर, सोडंग, रूनिजा आदि शिप्रा नदी आसपास स्थित पुरातात्त्विक स्थल है जो उज्जयिनी के नगरीय सन्दर्भो पर प्रकाश डालते हैं।

शिप्रा तटों से प्राप्त मुद्राएँ भी अत्यन्त दुर्लभ है। गढ़कालिका क्षेत्र से अनेक मुद्राएँ प्राप्त हुई है। जैसे आहत मुद्राएँ, काकणी मुद्राएँ, महाकाल प्रकार के सिक्के, दण्डधारी मुद्राएँ, वृषभ प्रकार के सिक्के, गजसवार युक्त मुद्राएँ, मेंढ़क प्रकार, कच्छप प्रकार, उज्जयिनी प्रकार के सिक्के, स्वास्तिक प्रकार, कमलाकृति के एरन प्रकार, गज त्रिकूट प्रकार, सातवाहन प्रकार, नाग मुद्राएँ, वल्लभी मुद्राएँ, गुप्त मुद्राएँ, कलचुरी गांगेय देव की स्वर्ण मुद्राएँ, शाकम्भरी चाहमान शासकों की रजत मुद्राएँ आदि मुद्राओं के अध्ययन से उज्जयिनी के नगरीय इतिहास पर प्रकाश डाल सकते हैं।

उज्जयिन्यां महाकालं यो वै पश्यति मानवः।
उज्जयिन्यां परं लोक यत्र गत्वा न शोचति॥

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

इस नगरी में शिव उपस्थिति का परिसर महाकाल वन था, जहाँ श्मशान, ऊसर, पीठ क्षेत्र व वन ये पाँचों तत्व समाहित है, जो अन्यत्र एक साथ उपलब्ध नहीं होते।

श्मशानमूषरर क्षेत्रपीठ तु वनमेव च।
क्षीयते पातकं यत्र तेनेदं क्षेत्रमुच्यते।
यस्मात्स्थानं च मानृणां पीढ़ं तैनेव तत्समृतम्।
मृतः पुनर्न जायते तेनेदमूपारं स्मृतम्।
गुह्ययमेतत प्रियं नित्यं क्षेत्रं शभोर्महात्मनः।
यस्मादिष्ट हि भूतानां श्मशानमतिवल्लभम्।
महाकालवनं यच्च तथा चैव विमुक्तिकम्।

शिप्रा के किनारे जहाँ पाप क्षय होता है, पीठ जहाँ मातृकाओं का निवास होता है, ऊषर जहाँ पुनर्जन्म नहीं होता है, वन जहाँ नित्य शिव का वास है तथा श्मशान जहाँ भूतों का वास है। इसलिये शिप्रा तट का यह स्थान 'गुह्यवन' कहा गया है। इसीलिये उज्जयिनी की गणना भारत की प्राचीनतम सात नगरियों में मानी गई है।

अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैवः सप्तैता मोक्षदायिका।।

शिप्रा नदी के बहाव क्षेत्र में एक ओर महत्वपूर्ण स्थल है, महिदपुर जहाँ शिप्रा अपने जल से भूमि को पावन करती है।

महिदपुर तहसील में धन्वन्तरि एक छोटा सा ग्राम है जहाँ शिव मन्दिर के अवशेष हैं, जो परमारकालीन है परन्तु इनका जीर्णोद्धार मराठायुग में हुआ। यहाँ भूमिज शैली का गणेश मन्दिर भी प्राप्त हुआ है।

झारडा एक ओर अन्य उपनगर है जो महिदपुर से 14 कि.मी. दूर है, यहाँ भी एक शिव मन्दिर है। इसी सन्दर्भ में एक ओर स्थल 'मरूला' है जो झारडा से 5 कि.मी. दूर है। यहाँ शिव मन्दिर श्री महाकालेश्वर मन्दिर के रूप में प्रसिद्ध है। यह उत्तर परमारकाल का है।

तराना रोड़ पर एक ओर मध्यपाषाणिक संस्कृति का पुरातात्त्विक स्थल 'कायथा' अवस्थित है। जिसका उत्खनन इतिहासवेत्ता पद्मश्री विष्णु श्रीधर वाकणकर ने किया था। यहाँ से अनेक ऐसे पुरावशेष प्राप्त हुए हैं जो उज्जयिनी के नगरीय विस्तार के साक्ष्य है।

उपरोक्त सभी स्थलों की नगरीय पुष्टि एवं पुरातात्त्विक प्रमाणों के साथ पुण्यसलिला शिप्रा अपने प्रवाह के साथ चम्बल में विसर्जित होती है एवम् उज्जयिनी के नगरीय प्रतिमानों को उद्भासित करती हुई प्रतीत होती है, जिसकी गाथा पुराण कर रहे

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

होते हैं।

सन्दर्भ

1. स्कन्द पुराण, अवन्ति खण्ड
2. ए.घोष, द सिटी इन अरबन हिस्ट्री
3. कोरात्सकाया, भारत के नगर
4. इण्डियन, आर्कियोलॉजी रिव्यू, 1955-56
5. अरली इण्डिया एण्ड पाकिस्तान,
6. पद्य प्राक्षमकम
7. पद्य प्राक्षमकम स्कन्द पुराण
8. द विक्रम, जनरल ऑफ विक्रम यूनिवर्सिटी, 1987
9. पादताड़ितकम, बम्बई, 1959
10. कानूनगो शोभा, उज्जयिनी का सांस्कृतिक इतिहास, 1972 इन्दौर
11. कायथा उत्खनन रिपोर्ट, व्ही.एस.वाकणकर
12. महिदपुर उत्खनन रिपोर्ट, डॉ.रहमान अली
13. गौर अंजना सिंह, उज्जयिनी का नगरीकरण, 2005 नईदिल्ली
14. गौर अंजना सिंह, उज्जयिनी के मराठाकालीन निर्माण, यूनिवर्सिटी प्रकाशन, नई दिल्ली
15. कादम्बरी
16. रमेश निर्मल, अनादि उज्जयिनी, बम्बई
17. विक्रम स्मृति ग्रंथ ग्वालियर
18. इण्डियन आर्कियालॉजी रिव्यू, 1957-58

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

गरुड़पुराण में वर्णित मंदिर वास्तुशास्त्र

डॉ.ध्रुवेन्द्र सिंह जोधा

गरुड़पुराण की कथा यह है कि गरुड़ ने एक बार विष्णु की पूजा की और उसे वरदान मिला कि वह पुराण संहिता का रचियता बनेगा। कालान्तर में गरुड़ ने यह पुराण कश्यप ऋषि को, फिर विष्णु द्वारा वह रूद्र व ब्रह्मा तथा अन्य देवताओं को सुनाया गया। पश्चात् ब्रह्मा ने व्यास तथा अन्य को तथा व्यास के द्वारा सूत को और सूत से शौनक तथा अन्य को नैमिषारण्य में सुनाया गया।

इस पुराण के दो खण्ड हैं। पूर्व व उत्तर-यह बृहत्कोष के समान है, जिसमें सभी विषय हैं। पूर्व खण्ड में पुराणों के पंचलक्षण, ज्योतिष, खगोल विद्या, रत्नविद्या, रत्न शुभाशुभ, हस्त-सामुद्रिक विद्या, औषधि, व्याकरण, नीति, स्मृति विषय, विभिन्न देवताओं सम्बन्धित पूजा, व्रत, तीर्थ रामायण, महाभारत, हरिवंश की कथा आदि है।

उत्तर खण्ड बृहत् कोष है व अव्यवस्थित है तथा मृत्युशास्त्र के बारे में मृत्यु के बाद आत्मा की परिस्थिति, कर्म, पुनर्जन्म, संसार, यम प्रेत आदि की जानकारी इसमें निहित है। गरुड़पुराण बृहतकोष के रूप में याज्ञवल्क्य स्मृति, मनुस्मृति, बृहसंहिता, अष्टांग हृदय संहिता, पाराशर स्मृति, चाणक्य राजनीति शास्त्र आदि को समाहित करता है। गरुड़पुराण कृष्ण अथवा विष्णु द्वारा सुनाई गई थी उसमें गरुड़ की उत्पत्ति गारुड़ कल्प में विश्वाण्ड से हुई। वर्तमान गरूड़पुराण विष्णु द्वारा उद्धृत है और उसमें गारुड़ कल्प सम्मिलित नहीं है।

गरुड़पुराण के सम्बन्ध में प्रसिद्ध विद्वान हाजरा अनेक ग्रंथों का उद्धरण देते हैं, जैसे रूपगोस्वामी का 'हरिभक्तिरसामृतसिन्धु' जिसमें गरुड़पुराण का उद्धरण है। उनके

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अनुसार गरुड़ पुराण 1400 ई के बहुत पूर्व की होना चाहिये। पुनः बल्लालसेन की 'दानसागर' का उद्धरण देते हैं जिसमें गरुड़पुराण का वर्णन है। इस आधार पर उनका कहना है कि गरुड़पुराण 1100 ई. के पूर्व की होना चाहिये। पुनः उनका कथन है कि गरुड़ पुराण को विश्वरूप व विज्ञानेश्वर के मध्य रख सकते हैं क्योंकि गरुड़पुराण में वागभट्ट द्वितीय की 'अष्टाङ्ग हृदय संहिता' के अंश दिखते हैं जिसको कई विद्वान 9वीं शताब्दी ई. का बताते हैं। अंत में हाज़रा इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गरुड़पुराण की तिथि 850 ई. से 1000 ई. के मध्य रखी जा सकती है और अधिक संभावना 10वीं शताब्दी ई. की कहते हैं।

इक्यासी पद वास्तु वर्णन

वास्तु का वर्णन 1.46 (पहला भाग 46 अध्याय) में किया गया है। इसमें वास्तु पुरुष का वर्णन है, जिसका सिर उत्तर-पूर्व में पैर दक्षिण-पश्चिम में हाथ दक्षिण-पूर्व में तथा उत्तर-पश्चिम में है। अस्थाई स्थापत्य नगर, ग्राम, बाजार, प्रासाद, उद्यान, किले, मंदिर मठ और इनमें 32 देवता निर्माण स्थल के बहार तथा 13 अंदर की ओर हो जिनकी पूजा करना चाहिए।

वास्तु पुरूष मण्डल में वर्क बाह्य भाग तथा आन्तरिक भाग के पदों में जिन देवताओं का वर्णन हैं वे है-इश, पुर्जन्य, जयन्त, कलीषायुद्ध(इन्द्र), सूर्य, सत्य भृगु, आकाश, वायु, पुषण(पूषा), वितथ, गृहश्रेत्र, दो यम, गन्धर्व, भृगुराज, मृग, पतृगठा, दौवारिक आदि कई देवता हैं।

चौंसठ पद वास्तु

गरुड़ पुराण में इक्यासी पद वास्तु पश्चात् 64 पद वास्तु का वर्णन किया गया है। किसी भी प्रासाद आदि निर्माण के पहले इसके देवों की पूजा की जाना चाहिये, जिसके मध्य में चतुष्यपद में ब्रह्मा, द्विवद में आर्यमा होना चाहिये तथा कोनों में शिखी आदि देवताओं को प्रतिष्ठित करना चाहिये।

शिखिपर्जन्य जयेन्तेन्द्र सूर्य सत्या भृशोऽन्तरिक्षश्च
एशान्यादि क्रमशो दक्षिणपूर्वऽनिलः कोणे

इस प्रकार पूरे 64 पदों में उपुर्यक्त देवता रहते हैं चारो कोनों में जैसे उत्तर-पूर्व में चरकी, विदारिका, पूतना, पापराक्षसी क्रमशः निवास करते हैं बाहर की ओर देवता हेतूक, त्रिपुरांत, अग्नि, बेतालक, यम, अग्निहृिव, कालक, कराल, एकपाद, भीमरूप(उत्तरपूर्व में) प्रेतनायक (पाताल में) गन्धमाली (आकाश में) और क्षेत्रपालों का आह्वान कर पूजा की जाय इसके पश्चात् वास्तु का विस्तार किया जाना चाहिये। चौसठ पद वास्तु को अधिक प्रशस्त माना गया है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मण्डप सम्बन्धी वास्तु

गरुड़ पुराण में अध्याय 48 में मण्डपों के कई अनेक प्रकार बताये गये हैं, जैसे त्रिभुज मण्डप, पद्माकार मण्डप, चन्द्राकार, चतुर्भुजाकार, द्विअष्कोण मण्डप।

त्रिकोणं, पधार्मेद्धन्दुक्षतुष्कोण द्विरष्टकम।

यत्र विधातव्यं संस्थानं मण्डपस्यतु।

इन मण्डपों के निर्माण के शुभाशुभ फल की भी बात कही गई है, वहीं मंदिरों के बाहर छोटे मण्डप के विधार को भी स्पष्ट बताया गया है। साथ ही मठ निर्माण सम्बन्धी विधान की भी व्याख्या की गई है।

मंदिर स्थापत्य

गरुड़ पुराण में पाँच प्रकार के मंदिर बताये गये हैं।

प्रासादानान्नच वक्ष्यामिमानं योनि्चमानतः

वैराजः पुष्पकारव्यक्ष कैलासो मालिकाह्वयः

त्रिपिष्टपे्च पे्चैते प्रासादः सर्वयोनमः।

अर्थात (1) वैराज (2) पुष्पक (3) कैलास (4)मालिक(माणिक) (5) त्रिपिष्टप- ये पाँच प्रकार के मदिर के लिए प्रतिरूप हैं।

(1) **वैराज** - यह चौकोर या वर्गाकार है तथा इसके 9 प्रकार है-मेरु, मन्दार, विमान, भद्रक, सर्वतोभद्र, रूचक, नन्दन(नन्दिक) नन्दिवर्धन और श्रीवत्स

(2) **पुष्पक**- यह मन्दिर आयताकार है यह भी 9 प्रकार के हैं यथा-वल्लभी, गृहराज, शालागृह, मंदिर, वामन, बझमन्दिर, भवन, उत्तम्भ और शिविका *

(3) **कैलास** - कैलाश प्रकार का मन्दिर वृत्ताकार होते हैं, इसके भी 9 प्रकार है यथा वलय, दुन्दुभि, पध, महापध, मुकुली,** उष्णीषी, शंख, कलश और गुवावृक्ष।

(4) **मालिक (माणिक)** - यह अण्डाकार रूप में होता है तथा इसके भी 9 प्रकार हैं जो इस प्रकार है-गज, वृषभ, हंस, गरुड़, सिंह, भूमुख, भूधर, श्रीजय और पृथ्वीधर है इन प्रासादों में पशु-पक्षी व पर्वतों का नाम दृष्टव्य होता है।

(5) **त्रिपिष्टप**- पाँचवा और अन्तिम मन्दिर का प्रकार अष्टकोणी प्रकार का है। यह भी 9 प्रकार के हैं जिनके नाम इस प्रकार है-वज्र, चक्र, मुष्टिक, वभ्रु, वक्र, स्वस्तिक, भंग, गढ़ा, श्रीवृक्ष और विजय।

---

* अग्नि पुराण में विभान, भवन और उत्तम्भ के स्थानों पर विशाल, भुवन और प्रभव नाम मिलते हैं (अग्नि पु. 104.14-15)

** अग्नि पुराण में मुकुली व गुवावृक्ष के स्थानों पर क्रम से वर्द्धनी और खवृक्ष नाम मिलते हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मन्दिर पर सदैव पताका स्थापित करना चाहिये। द्वार आदि पर भी पताका को स्थापित किया जा सकता है तथा इसे गर्भगृह के ऊपर स्थापित किया जाना चाहिये। जे. एल. शास्त्री के अनुसार गर्भगृह प्रवेश में होना चाहिये जो कि सही नहीं है क्योंकि गर्भगृह में कभी भी प्रवेश द्वार नहीं होता।

मूर्त्तियों के अनुसार मंदिर भी भिन्न प्रकार के होते हैं-अभिशेष की भिन्नता के अनुसार एवं संरचना के भेद के अनुसार।

देवताओं की विशिष्टता के भेदानुसार भी विभिन्न प्रकार के मंदिर होते हैं। जैसे जिसमें स्वयंभू प्रतिमा होती है उसके लिए मंदिर संरचना के कोई नियम निहित नहीं होते हैं। गरुड़ पुराण में कहा गया है कि-

प्रासादे नियमो नास्ति देवतानां स्वयम्भुवाम।
तानेव देवतानाश्च पूव्रमानने कारयेत्।

प्रतिमाओं को मंदिरों के लिए विभिन्न निश्चित अनुपात में निर्माण किया जाना चाहिये जैसे आयताकार, चतुर्भुजाकार आदि। मंदिरों में चन्द्रशाला का निर्माण होना चाहिये। मंदिर के मुख्य द्वार के पास नाट्यशाला बनाई जाती है, इस सम्बन्ध में उद्धृत है-

नाट्यशालां च कर्त्तव्या द्वारदेश समाश्रय।

मंदिर के सामने लघु मण्डप का निर्माण होना चाहिये। देवताओं को मन्दिर में स्थापित किया जाना चाहिये। जल से युक्त फल और पुष्प मंदिर की जगती (बहारी हिस्से में) में लगाना चाहिये। भक्तों को मंदिर में स्थापित देवताओं का पूजन करना चाहिये। वासुदेव सबके देव हैं जो इनका मंदिर बनाता है वह सब सुखों का भोग करता है।***

षोड़शभागिक वास्तु- चौसठ पद वास्तु के अतिरिक्त गरुड पुराण में षोड़शभागिक वास्तु के प्रासाद लक्षण का वर्णन करता है। सोलह बराबर भागों के वास्तु को बनाकर उसके मध्य पहले चार भागों पर गर्भगृह को बनायें और फिर बारह भागों पर भित्ति का निर्माण करें। प्रमाण के अनुरूप भित्तियों की ऊँचाई चार भागों की लम्बाई के बराबर हो। शिखर की ऊँचाई भित्तियों की ऊँचाई से दुगनी हो। चारों ओर प्रदक्षिणा शिखर की ऊँचाई का चौथियांश हो। गर्भमान को पाँच भागों में विभक्त कर एक भाग निर्गम बनाये। गर्भसूत्र के समान ही आगे की ओर मुखमंडप बनाये।

*** बृहत्संहिता के अनुसार देवालय में सदा पूर्वोक्त चौसठ पद का वास्तु बनाना चाहिये तथा मध्यम द्वार दिशाओं के मध्य में हो तो श्रेष्ठ होता है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

लिंगमान प्रासाद- इस प्रकार के प्रासाद का विस्तार लिंग अथवा प्रतिमा के मान के अनुरूप होता है-

मानेन प्रतिमाया वा प्रासादमपरं श्रृणु।

इसमें लिंग अथवा प्रतिमा के बराबर पीठ होता है। गर्भ उसका दुगना होता है। भित्तियाँ गर्भगृह के बराबर होती है। जंघा उसकी आधी होती है। शिखर जंघा का दुगना होता है और शुकांघ्रिका पीठ गर्भ के बराबर हो तथा निर्गम पहले की भाँति ही हो।

द्वारमान प्रासाद- इस प्रकार के प्रासाद का मान विस्तार और ऊँचाई इत्यादि द्वार की ऊँचाई के अनुरूप होती है। इसमें चार हाथ चौड़ा द्वार बनायें जो आठ भागों में विभक्त हो। इसकी ऊँचाई चौड़ाई से दुगनी हो, द्वार के समान ही पीठ का मध्य भाग जालीदार हो तथा भित्ति का शेष चौथाई भाग आधे द्वार में होता है। उसी द्वार के समान जंघा होती है और शिखर उसका दुगना ऊँचा होता है। शुकांघ्रि और निर्गम पूर्वोक्त प्रकार के ही समान होते हैं।

कराग्रंवेदवत्कृत्वा द्वार भागाष्टमं भवेत् तथा

द्वारवल्पीठमधये तु शेषं शषिरकं भवेत्।

परन्तु ये दो पक्तियों की भिन्न व्याख्या की है- डॉ. सुस्मिता पाण्डे के अनुसार द्वार की ऊँचाई कराग्र (वेदवित अच्रोत) जो 4 अंगुल है का आठ गुना होगा तथा द्वार के पाटों के बीच की दूरी को सुशिरकम कहा है क्योंकि द्वार में छेद होना व्यावहारिक नहीं है।

संभवतः द्वारमान को ही मण्डपमान भी कहते थे। यहाँ शंचिरकं (द्वार) जालीदार द्वार पर विशेषतः ध्यान देने की आवश्यकता बताई है।

त्रैवेदं क्षेत्र- गरुड़ पुराण एक अन्य प्रकार के प्रासाद का वर्णन करता है। इस स्वरूप में त्रैवेदं (तीन वेदी वाला) क्षेत्र होता है। जहाँ देवता स्थिर रहते हैं। इस मंदिर का अनुपात जिस स्थान में प्रतिमा स्थापित है उस के मान के अनुसार होता है। प्रतिमा द्वारा अधिष्ठित क्षेत्र 12 से गुणा करके बाहर का अनुपात देता है। अन्दर की नेमि (प्रासाद के अन्दर स्थान का व्यास) क्षेत्रफल के 1/4 के बराबर होती है। गर्भगृह नेमि के क्षेत्रफल से दुगना होता है। दीवार की ऊँचाई भी इतनी होगी तथा शिखर उसका दुगना होगा।

इस प्रकार गरुड़ पुराण में मंदिर सम्बन्धी वास्तु शास्त्र का वर्णन हमें विस्तृत रूप से प्राप्त होता है साथ ही इसमें अन्य पुराणों की गृह निर्माण तथा स्थापत्य वास्तु सम्बन्धी परम्परा को भी इसमें समाहित पाते हैं।

सन्दर्भ

1. हाजरा,आर.सी. स्टडीज़ इन द पुराणिक रिकार्ड्स ऑफ हिन्दू राईट्स एण्ड कस्टम्ज, पृ. 142

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

2. हाजरा,आर.सी. स्टडीज़ इन द पुराणिक रिकार्ड्स ऑफ हिन्दू राईट्स एण्ड कस्टम्ज,पृ. 144
3. गरूड़ पुराण, 1.47.28
4. गरूड़ पुराण, 1.47.19
5. गरूड़ पुराण, 1.47.22-23
6. गरूड़ पुराण, 1.47.27
7. गरुड़ पुराण, जे. एल. शास्त्री, पृ. 152
8. गरूड़ पुराण, 1.47.38
9. गरूड़ पुराण, 1.47.6-10
10. गरूड़ पुराण, 1.47.11
11. गरूड़ पुराण, 1.47.13(2)-16
12. डॉ. सुस्मिता पाण्डे, भक्ति डाक्ट्रीन आर्ट एण्ड कल्चर, एस इन विष्णु पुराण, पृ. 285
13. गरूड़ पुराण, 1.47.18-20

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भारतीय मूर्तिकला में द्विबाहु विष्णु एक पौराणिक अध्ययन

डॉ. सहदेवसिंह चौहान*

वैष्णव पुराणों में विष्णु के विविध रूपों का वर्णन हुआ है। कहीं पर वे दो भुजा वाले, कहीं पर चार भुजा वाले तथा कहीं आठ भुजा वाले चित्रित किये गये हैं। वैष्णव पुराणों में वर्णित विष्णु के विभिन्न रूपों का आधार उनकी भुजाएँ हैं। भुजाओं की संख्या के आधार पर विष्णु का रूप तीन प्रकार का कहा जा सकता है - द्विभुजा रूप, चतुर्भुज रूप तथा अष्टभुज रूप।

विष्णुपुराण में उनकी दो भुजा वाली मूर्ति का चित्रण हुआ है किन्तु भिन्न-भिन्न रूप में। कहीं पर एक हाथ में चक्र तो दूसरे में गदा रहती है।[1] कभी एक हाथ में गदा रहती है तो दूसरा अभय मुद्रा में रहता है।[2] कहीं पर उनका बायाँ हाथ गरूड़ के स्कन्ध पर रखा है तो दूसरे हाथ में वे कमल लिए हैं -

वल्गुप्रकोष्ठवलयं विनतासुतांसे
विन्यस्तहस्तीमितरेण घुनानमब्जम॥[3]

विष्णु के दो भुजा वाले उनके ऐसे भी रूप का वर्णन हुआ है। जिसमें उनके शरीर पर न कोई आभूषण रहता है न कोई आयुध। अपनी दोनों भुजाओं में से वे एक में स्फटिक मणि निर्मित अक्षमाला धारण करते हैं। स्कन्ध पर उनके यज्ञोपवीत पड़ा रहता है। सिर पर मुकुट आदि नहीं रहता -

ततः शंखगदाचक्रशार्गदिरहितं बुधाः।
चिन्तयेद् भगवतद्रयं प्रशान्तं साक्षसूत्रकम्॥

---

* सहायक शोध अधिकारी, श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ, मंदसौर (म.प्र.)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

....

किरीट केयूर मूखैर्भूषणैः रहितं स्मरेत्।।[4]

मत्स्यपुराण के अनुसार विष्णु के महावराह रूप में गदा और पद्य हो -

'महावराई वक्ष्यामि पद्यहस्तं गदाधारम'[5]

इसी प्रकार अग्निपुराण में भी नरवराह का विवरण उपलब्ध होता है कि दाहिने हाथ में शंख और बाएँ हाथ में पद्य अथवा कुहनी पर लक्ष्मी स्थित हों।[6] विष्णुधर्मोत्तर पुराण में तृतीय खण्ड के 60 वें अध्याय के श्लोक 2 में द्विबाहु विष्णु के स्वरूप का स्पष्ट उल्लेख हुआ है-

'एकवस्त्रो द्विबाहु गदाचक्रधारः प्रभुः'

अर्थात् द्विबाहु विष्णु के हाथों में गदा व चक्र होना चाहिए।[7] विष्णुधर्मोत्तर पुराण को अधिकांश विद्वानों ने गुप्तयुगीन माना है। बाद के ग्रन्थ वृहत्संहिता में भी विष्णु की भुजाओं के विषय में कहा गया है -

'कार्योऽष्टभुजो भगवांश्चतुर्भुजो द्विभुज एव वा विष्णुः।[8]

अर्थात् उन्हें दो भुजा, चार भुजा अथवा आठ भुजा वाला बनाया जा सकता है। विष्णु का दो भुजा वाला रूप सर्वसाधारण है। दो भुजाओं वाले रूप को बृहत्संहिता में निम्नप्रकार से बनाने का आदेश दिया है-

द्विभुजस्य तु शान्तिकरो दक्षिणहस्तोऽपरश्च शंखधारः।
एवं विष्णोः प्रतिमाकर्त्तव्या भुतिमिच्छदिभः।।[9]

अर्थात् दाहिना हाथ शान्तिकर मुद्रा में रहता है और बाएँ हाथ में वे शंख धारण करते हैं।

पुराणों के इन उल्लेखों का भारतीय मूर्तिकला में विष्णु के द्विबाहु होने के कई संकेत मिलते हैं जो भारतीय मूर्ति कला की अनोखी सामग्री है। मथुरा की कुषाण एवं गुप्त युग की कला में विष्णु का तर्थव अंकन किया गया है। मथुरा संग्रहालय के न. 45 की संख्या प्रस्तर फलक पर स्थानक विष्णु का एक हाथ अभय मुद्रा में उठा है और बाएँ हाथ में अमृतघट धारण कर रखा है। यहाँ केवल दो हाथ स्पष्ट हैं, परन्तु पीछे दोनों ओर गदा (दाहिने हाथ के पीछे) व शंख (बाई ओर ऊपर) की विद्यमानता द्वारा दो अतिरिक्त हाथों की विद्यमानता का आभास होता है।[10] अजमेर पुष्कर क्षेत्र में नांद(नन्दग्राम) के बाहर खेत में लगभग 6 फिट ऊँचा चतुर्मुख शिवलिंग प्राप्त हुआ जो भारतीय मूर्तिकला की अनुपम निधि है। इसमें नीचे एक और मुकुटधारी द्विबाहु विष्णु की आकृति उत्कीर्ण है जिसमें एक हाथ में चक्र और दूसरे में नालसहित अविकसित कमल धारण कर रखा है। विष्णु के सिर पर मुकुट कुषाण कालीन शैली का है।[11] यह शिवलिंग तीसरी शती का

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

है।

कार्लाइल को भरतपुर(राजस्थान) के अन्तर्गत रूपवास नामक स्थान पर एक प्रस्तर विष्णु की खड़ी प्रतिमा मिली थी। जिसमें विष्णु के केवल दो ही हाथ प्रदर्शित थे। दाहिने हाथ में शंख और बाएँ हाथ में चक्र।[12] गंगधार झालावाड़ के 5वीं शती के शिलालेख में चक्रगदाधारी विष्णु का उल्लेख मिलता है -

विक्ख्यानुपरि चक्रगदा धारस्य[13]

यह कहना कठिन है कि यहाँ केवल द्विबाहु विष्णु का आव्हान किया गया है। प्रस्तुत लेख में विष्णु के चक्र व गदा का तो स्पष्ट उल्लेख है। उत्तरप्रदेश के कानपुर के पास भीतरगाँव में गुप्तकालीन मन्दिर के बाहरी भाग में पकाई गई मिट्टी का एक लघुफलक जड़ा हुआ मिला था जो अब कलकत्ता म्युजियम में सुरक्षित है। इस फलक पर द्विबाहु विष्णु शेषनाग के ऊपर आधे लेटे से दिखाये गये हैं। यहाँ पर विष्णु के आयुध दिखाई नहीं देते हैं।[14] वास्तव में यह अनोखा वैष्णव फलक है। ऐसी प्रतिमाएँ असाधारण ही है। फलक ईसा की 5वीं शती का प्रतीत होता है।

कन्नौज से पूर्व मध्ययुगीन प्राप्त शिव पार्वती विवाह विषयक फलक में शिव पार्वती के मध्य व दर्पण के ठीक ऊपर गरूड़ारूढ़ विष्णु के पुरूष मुख के बाई ओर सिंह मुख जुड़ा प्रतीत होता है जो महाविष्णु का सूचक प्रतीत होता है। दाहिनी ओर पशु मुख अदृश्य सा है। अतः यह अंकन विशेष अति महत्वपूर्ण व विवेच्य है। यहाँ महाविष्णु के हाथों की संख्या में वृद्धि न होकर केवल दो हैं।[15] इस प्रतिहार युगीन फलक में ऊपर अश्वारूढ़ वायु व मयुरारूढ़ कार्तिकेय की कृतियाँ भी महत्वपूर्ण हैं। वायु का वाहन मृग न होकर अश्व दिखाया गया है और मयूरारूढ़ कार्तिकेय के हाथ में 'पाश' का प्रदर्शन भी असाधारण है। इसके अतिरिक्त विष्णु की वराह प्रतिमाओं में उदयगिरि[16] और बड़ोह[17] (विदिशा) में तथा कामा(भरतपुर) व कैलाश मन्दिर[18], एलौरा तथा भुवनेश्वर म्युजियम में 8वीं 9वीं शताब्दी की ऐसी कई प्रतिमाएँ मिली हैं जिनमें विष्णु की दो भुजाओं का ही अंकन मिलता है। इसके अतिरिक्त विष्णु की द्विभुजी मूर्तियाँ दक्षिण में महावलीपुरम, श्रीरंगम तथा अहलोल आदि में प्राप्त हुई हैं।[19]

इतिहास में उत्खनन के बाद मुद्रा का स्थान आता है। सिक्कों के वैज्ञानिक अध्ययन से अनेक महत्वपूर्ण प्रश्नों पर प्रकाश पड़ता है इनसे न केवल राजनैतिक व आर्थिक स्थिति का ही पता चलता है, वरन इनसे धार्मिक तथा कलात्मक स्थिति का भी बोध होता है। इन सिक्कों पर कई प्रकार के चिन्ह होते हैं, जिनसे सिक्के चलाने वाले समुदाय या व्यक्ति की कई अज्ञात बातें सामने आती हैं।

गुर्जर-प्रतिहार कालीन सिक्के जिन्हें 'आदि बराह द्रम्म' भी कहा गया है,

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

राजस्थान में पाये गये हैं। इनके प्रचलन का श्रेय मिहिर भोज(836-885ई.) व विनायकपाल देव को है, जो कन्नौज के सम्राट थे। इनकी चाँदी की एक मुद्रा मिली है। अलाउद्दीन खिलजी की दिल्ली टकसाल के अधिकारी ठक्कर फेरू ने अपनी 'द्रव्य परीक्षा' नामक पुस्तक में इन शासकों के सिक्कों को 'वराही द्रम्म' और 'विनायक द्रम्म' कहा है। इन सिक्कों पर 'श्रीमदादिवराह' का लेख तथा नरवराह की मूर्ति अंकित है, जिसमें विष्णु के केवल दो हाथ दिखाये गये हैं, जिनमें एक जाँघ पर ओर दूसरा घुटने पर रखा हुआ है।[20]

विष्णु की स्थानक प्रतिमाओं का निर्माण कब हुआ यह कहना अनिश्चित सा ही है। सम्भवतः विष्णु की सर्वप्रथम स्थानक प्रतिमा पाँचाल नरेश विष्णु मित्र की मुद्रा पर मिली है। प्रो. एलन ने बताया कि इस पर विष्णु के केवल दो हाथ दिखये गये हैं, किन्तु आनन्द कुमार स्वामी और कनिघम के अनुसार इसमें चार हाथ हैं। चूकि यह मूर्ति इतनी छोटी है कि स्पष्ट रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।[21]

अन्त में केवल इतना ही कि विष्णु के दो हाथ वाली स्वतंत्र प्रतिमाओं की तो चिर प्रतीक्षा बनी रहेगी।

सन्दर्भ

1. विष्णुपुराण 3.11.13, गीता प्रेस, गोरखपुर
2. विष्णुपुराण 8.12.21
3. श्रीमद्भागवत्पुराण, 3.15.40,गीता प्रेस, गोरखपुर
4. विष्णुपुराण, 6.7.88-89
5. मत्स्यपुराण, 260.28-30, गुरूमण्डल सिरीज, कलकत्ता, 1954
6. अग्निपुराण, 42.2-3, आनन्दाश्रम संस्कृत सिरीज, पूना, 1900
7. विष्णुधर्मोत्तरपुराण, भाग, 1 पृ.183, प्रियबाला शाह द्वारा सम्पादित, बडोदा, 1958
8. वृहत्संहिता, 58.31, वराहमिहिर कृत
9. वृहत्संहिता, 58.35
10. J.P.Voget Catalogue of the archaeological Museum at Mathura, p.200,Allahabad, 1910, Journal, U.P. Historical Society, Ancient Ed. 24-25, p.121, Lucknow, 1951-52
11. Ratanchandra agarwal, Journal of Indian History Travendram, August, 1964 No. 42(2), p 538, PI.1
12. Alexander Cunningham, Archaeological survey of india, Vol. 6, p.20, Varanasi, 1966, J.N. Benerjee, The Development of Hindu Iconography, p-400, (II ed), Calcutta, 1956
13. D.C.Sircar select Inscriptions bearing on Indian History and Civilization, p.384, Calcutta, 1956
14. Archaeological survey of india vol 11, pp. 40-46, pl. 17, Varanasi, 1968, B. Raulend, Art and Architecture of India, pp 136-37, PI.78

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

15. K.M.Munshi, Saga of Indian Sculpture, p.21 PI.68, Bombay, 1957
16. purana (पुराणम) half yearly Bulletion, Vol.V.No 2, July, 1963, pp.233-35 PI.III, Varanasi, Shanti lal nagar, Varaha in Indian Art, Culture and Literature, p.80, PI.15 Delhi, 1993
17. Shanti lal Nagar, Varaha in Indian Art, Culture and Literature, p.86, PI.22
18. Shanti lal Nagar, Varaha in Indian Art, Culture and Literature, p.85, PI.21
19. T.A. Gopinath Rao, Elements of Hindu Iconography, I,IP.114, PI XXIX, Feg.2 pp 109-10, PI.XXXI, Delhi 1968
20. purana (पुराणम) half yearly Bulletion, Vol.V.No 2, July, 1963, pp.235 PI.VIII, Varanasi, Shanti lal nagar, Varaha in Indian Art, Culture and Literature, p.74,86,142 fig.7
21. Elements of Hindu inconography, I,I pp. 78-80.

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पुराणों में कला व स्थापत्य के देवता विश्वकर्मा और उनका मत

डॉ० श्रीकृष्ण जुगनू*

पुराण वाङ्मय का महत्व उनके लक्षणों के अनुसार सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वंतर और वंशानुकीर्तन के लिए तो है ही, मानवीय सभ्यता और संस्कृति के विकासक्रम और विशेषकर कला, संस्कृति के ज्ञान की दृष्टि से भी परम और चरम महत्व रखता है। महापुराण हो, पुराण हो, उपपुराण या औपपुराण अथवा स्थलपुराण हो, उनमें कलाओं के विविध पक्षों की जानकारी भी संग्रहित मिलती है। ये कलायें चाहे दैनिक जीवन उपयोगी हो, वस्तुओं के परिचय की हो, उनके निर्माण की विधियों की हो अथवा उपयोग विधान की हो, ये कलायें शृंगार-प्रसाधन से जुड़ी हो सकती है। प्रतिमा, स्थापत्य की भी हो सकती है अथवा अन्य किसी कलारूप की भी सम्भव है।

कला के देवता विश्वकर्मा

पुराणों में कलाओं के देवता के रूप में विश्वकर्मा का नाम प्रमुखता से लिया गया है। यों तो वैदिककाल से ही विश्वकर्मा एक प्रमुख देवरूप में स्मरण किये गये हैं। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में विश्वकर्मा और विश्वकर्म के सम्बन्ध में मंत्र मिलते हैं। विश्वकर्मा भौवन ऋषि के रूप में भी स्मरण किये गये हैं किन्तु शतपथ आदि ब्राह्मण ग्रन्थों में विश्वकर्मा को सर्वस्वकर्ता के रूप में परिभाषित किया गया है।

पुराणकाल तक वे शिल्प के देवता के रूप में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाते प्रतीत होते हैं और पुराणों में समकालीन नाट्यशास्त्र में उनके मतों को आदर दिया गया है। मत्स्यपुराण में शिल्प और कला के अठारह आचार्यों में विश्वकर्मा प्रथमतः स्मरणीय

---

* फैलो इन्डोलॉजी, राजस्थान

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

है। किन्तु नाट्यशास्त्र में नाट्यशाला के निर्माण और अन्य रंगमंचीय कलाओं के नियामक के रूप में उनके मत उद्धृत किये गये हैं। विशेषकर मान प्रमाण, तल और वर्णों के अनुसार भूमि विभाजन और उसकी ग्राह्यता, भूमि शोधन, सूत्रपात, उसका मुर्हूत, सूत्र निर्माण की विधि, सूत्र छेदन के फला फल, इस अवसर पर स्वस्ति वाचन, भूमि विभक्तीकरण, शुभ नक्षत्र में नींव की स्थापना, शिलान्यास के अवसर पर योग्य व्यक्ति, दिक्पालों वा वास्तुदेवताओं को बलि निवेदन, मुहूर्त-करण देखकर दीवार को ऊपर उठाना, स्तम्भ निवेश और वर्णानुसार उसके मूल में दाप्य द्रव्य, विप्रादि का सम्मान और दान स्तम्भ के लिए प्रार्थनापाट, रंगपीठ, मत्तवारिणी आदि का निवेश, भरण योग्य मृतिका का शोधन-संशोधन, ऊह-प्रत्यूह, व्यालाकृतियों का संजवन, निर्यूह एवं कुहर, वेदी सज्जा, जाल-गवाक्ष, धारणी, शालभंजिका, कपोतालियों की रचना आदि मुख्य हैं। ये वे विषय हैं जिनको लगभग सभी पुराणों में संदर्भों के अनुसार विवेचित किया है।

विश्वकर्मीय मत व पुराण

उक्त प्रसंग में जो शब्दावली है, वह विश्वकर्मा मतों की विशेषता के रूप में उभरकर सामने आते हैं। मत्स्य, वायु, विष्णु आदि पुराणों में विश्वकर्मा को अमरबर्द्धकी या देवताओं के बढ़ई कहा गया है किन्तु स्कन्द आदि पुराणों में वे शिल्प के प्रमुख देवता के रूप में महत्वपूर्ण पद पर आसीन हैं। यूँ कला और स्थापत्य विषयक विश्वकर्मा मत निम्नपुराणों में मिलते हैं -

1. विष्णु धर्मोत्तर पुराण - विश्वकोशीय इस पुराण में चित्रसूत, नृत्तसूत्र, प्रतिमा निर्माण, भवन और प्रासाद निर्माण का प्रचुर वर्णन मिलता है। इस पुराण का तृतीय खण्ड कला और स्थापत्य के अध्ययन की दृष्टि से बहुत महत्व का है।

2. देवी पुराण - इस शाक्तपुराण में वास्तु के विषयों में, दुर्ग निर्माण और नगर निवेश का विस्तृत वर्णन मिलता है। यह मनु और बृहस्पति शिल्प का उदाहरण है।

3. मत्स्यपुराण - इस महापुराण में स्थापत्य के विभिन्न अंगों पर पर्याप्त विवरण मिलता है, मुख्य रूप से दुर्ग निवेश, प्रासाद निवेश, गृह निवेश आदि का विवरण पर्याप्त महत्व का है।

4. शिवपुराण - इसमें विवाह की वेदि और प्रासाद लक्षणों का वर्णन है।

5. लिंगपुराण - इसमें मेरू आदि विभिन्न प्रासाद शैलियों का वर्णन समरांगण सूत्रधार और बृहत्संहिता, काश्यप संहिता के समान ही प्राप्त होता है।

6. ब्रह्मवैवर्तपुराण - इसमें पत्तन जैसे नगर निवेश का मनोहारी वर्णन है जो विशेषकर समुद्रतटीय बस्तियों का परिचायक है और पुराणकार ने द्वारकापुरी के प्रसंग में प्रतिपादित किया है। लगभग ऐसा ही वर्णन महाभारत के खिल कहे गए हरिवंश में भी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

आता है। इसमें वासुदेव को स्थापत्य शास्त्र का प्रवर्तक कहा गया है।

7. गरुड़पुराण - इस पुराण में भवन स्थापत्य का विशेष विवरण है।

8. विश्वधर्म एवं शिव धर्मोत्तर पुराण - इन दो उपपुराणों में शिवालयों, शिवपूजोपयोगी सामग्रियों के निर्माण के साथ ही महावेदिका, अध्ययनशाला, गौशाला, रोगी सेवासदन, आयुर्वेदशाला आदि के निर्माण की विधियाँ मिलती हैं।

इसी प्रकार नारदपुराण में स्थापत्य का विस्तृत अध्याय मिलता है। पद्मपुराण, महाभागवत में भी स्थापत्य का विवरण मिलता है तथापि वायुपुराण के सहदेवाधिकार में स्थापत्य शास्त्र की आवश्यकता व विकास को कथारूप में लिखा गया है जो समरांगण सूत्रधारकार के लिए भी मुख्य स्रोत के रूप में उपयोगी रहा है।

स्कन्दपुराण में विश्वकर्मीय कलाएँ

स्कन्दपुराण में विश्वकर्मीय कलाओं का विशेष विवरण मिलता है। इस पुराण में पुर्नसंपादनकाल तक देशभर में सर्वाधिक प्रासाद स्थापत्य का सिलसिला देखने को मिलता है। परमारों, चालुक्यों, चौहानों, होयसल, गुहिल आदि राजवंशों ने स्थापत्य की कई धाराओं का प्रवाह किया। यह सब विश्वकर्मीय समुदाय का ही अवदान है, यह स्वीकारा जाना चाहिए। सर्वाधिक ग्रन्थों की रचना भी इसी काल के दौरान हुई। शिल्पकारों को विश्वकर्मा जैसा सम्मान दिया जाने लगा था, हालाँकि इसकी परम्परा जातक काल में भी देखने को आती है।

स्कन्दपुराण में विश्वकर्मा की परम्परा की कई कलाओं का स्मरण किया गया है। प्रभास क्षेत्रस्थ सोमनाथ और काशीस्थ विश्वकर्मेश्वर की कृपा से निर्माण कला ही नहीं, श्रृंगार, आभूषण, रसोई के संस्कार सभी प्रकार के शिल्पकर्म, नृत्त, गीत और वाद्य विषयक वस्तुएँ बनाने की कलाओं का स्मरण आता है। यह सिद्ध करता है कि इस काल तक विश्वकर्मा समुदाय की कलाओं का विस्तार हुआ और वे अनेक शिलें के कर्ता व वियामक होकर समाज में अपना महत्व सिद्ध करने में जुट गए थे।

स्कन्दपुराण सिद्ध करता है कि वे देवताओं ही नहीं, सर्व सामान्य के लिए भी उपयोगी उपस्कारक, संसाधन निर्माण करने में जुटे हुए थे और दूसरे विश्वकर्मा की तरह पहचाने गए। राजाओं ही नहीं, उनके सामंतों ने भी उनको महत्व दिया वे राजधानी से लेकर प्रमुख नगरों, पुरों और गावों तक फैले। उन्होंने अनेक प्रकार के आयुधों के निर्माण में अपना योगदान दिया। जलाशयों के कार्य को प्राथमिकता से पूरा करवाया। नदियों के प्रवाह क्षेत्र में जलस्रोतों के निर्माण कार्य हुए।

स्कन्दपुराण में बढ़ते हुए राज्यांतर्गत गांवों की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि दिखाई देती है। राज्यों में सामंतों और उनके स्वतंत्र होते जाने से किलों की संख्या बढ़ी।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

शिल्पकार, सूत्रधार, गजधर के सम्मान के साथ विश्वकर्मा समुदाय के शिल्पी उत्तमोत्तम दुर्गों के निर्माण में सहायक सिद्ध हुए। इन्द्रजाल सहित कौतुकी कार्यों में कुशल होकर महत्व पाने लगे। सब बुद्धियों की श्रेष्ठता सिद्ध करने लगे और सब मनोवृत्तियों का ज्ञान होने से वे विश्व में अखिल कर्मों का ज्ञाता होकर विश्वकर्मा नाम को सार्थक करने लगे।

ब्रह्मवैवर्तपुराण, जिसका कुछ अंश दक्षिण में संपादित हुआ है ये पत्तनों के रूप में नगरों के विकास का अच्छा विवरण मिलता है। श्रीकृष्णजन्मकाण्ड के 14वें अध्याय में वैष्णवीय आगमों की परम्परा के अनुसार समुद्रतट पर योग्य दुर्गों और नगर-पत्तनों के निर्माण की विधि दी गई है। यद्यपि यह विवरण द्वारका के प्रसंग में है तथापि उसमें कक्ष, भवन, कक्षयाओं, आंगन-अजिर, शालाओं, निर्यूह, गवाक्षों में क्रियामूलक पक्ष का वर्णन रोचक और अनुकरणीय है। शिविर का वर्णन भी जीवन्त है। शिविर अर्थशास्त्र, कायन्दकीय नीतिसार आदि में सामान्यतया स्कन्धाकार कहे गए हैं किन्तु मथमतं, मानसारं आदि में शिविर बस्तियों के पर्याय है। वहाँ जीवनोपयोगी वृक्षों को लगाने का निर्देश भी इस पुराण में मिलता है। भागवत के दसवें स्कन्ध में भी द्वारकापुरी के निर्माण का ऐसा ही वर्णन (59वें अध्याय 50-53) है।

विश्वकर्मा के आयुध बनाकर देवताओं को देने का वर्णन मार्कण्डेय पुराण, हरिवंश, पद्मपुराण (उत्तरखण्ड, पद्मोतर), लिंगपुराण, विष्णु, पुराण आदि में मिलता है।

कहना न होगा कि विध्र्मीय मत पुराणों की अपनी विशेषता है। इन निर्देशों के मूल में पुराणकारों का विचार इन शिल्प और स्थापत्य की कलाओं को अक्षुण्ण देखना रहा है किन्तु ये वर्णन हमारे युग-युगीन स्थापत्य की परम्परा के अध्ययन के लिए भी उपादेय है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

Principle and Practice of the Temple Architecture in India (Special Reference to the Puranas)

Prof. R. Ali

The Origin of Indian architecture is a hallmark of Indian civilization. The recent archaeological excavations at Mohenjodaro and Harappa etc have opened a new vista of Indian culture which cannot be called non - Aryan. Similarly, the Rgvedic allusions and it reference prove the beginning of advanced state of architecture which cannot be called imaginary. Therefore, we must evaluate both the sources to reconstruct our cultural history of past. The advanced architecture may however, be assumed by the hymns of Rgveda (IV, (148-200 II, 313, 415 V, 179; V, 626) which are very important (H.H. Wilson). The Atharva-Veda, XI, 9.1-2, and those of the references in Brahmans are also significant.

The Vedic hymsn refer to the multi-storeyed dwelling of Indra (tridhatusaranam), and the elegant hall to sit for soveregin bult with the thousands pillars.1 Sayana has explained it as many storied-houses. The Atharva-Veda (XI, 9, 1-2), however, provides us the norms regarding the basic concept and the origin of plan of the tempes (Arthara-Veda, XI, 7, 1-2).

The Rgveda mentions about the Puras, towns, with fortifications, i.e., the Durgani, Asmayasi, Satbhuji etc. During the smrti period Manu enumerates only six types of forts along with their merits and demerits which have been further described by

---

* Member I.C.H.R. New Delhi

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

yagna valkya.
Apart from the text the recent archaeological excavations have been successful in locating many of the defensive structures, remparts mud-bricks walls and revetments of the strategic importance at Mohenjodaroa and Harappa as well as the evidence at Kalibangan Banawali Nagara and Kotapalan, Surkotda (Gujarat) Manda, Dadheri etc. All these evidence of forts and fortifications bear the features of the pre-vedic age. Sir John Marshall expressed that out of several buildings at Mohenjodaroa he could succeed in indentifying only two buildings with its remain of the component parts which might be the Hindu temple having the high wall and platform (Jagati) along with two small chambers on either side etc.

Religious Architecture :-

Architecture Lay-out :- In the Vedic texts several names for the house have been mentioned.11 But as regards the religious architecture, some of the norms and specific terms were followed by the sthapatis (Slpins) of the Vedic period. These terms however, in due course were canonised. To deal with the details of temple architecture. We may discuss their features under the following heads :-

Plan (Talachchhanda) :- The basic concept form the plan has been first indicated by an important sukta of the Atharva-Veda, (XI, 7, 1-2) which needs mention in the present context follows :-
Name and Forms are in Redidue. The worlds is in the Residue, Indra and Agni are in the Residue. The Universe in the Residue; Heaven and Erath, all existence is in the Residue. The Water , the Ocean, the Moon and the Wind are in the Residue.[2]

The great scholar, Stella Kramrish has long back discussed the theory of Vastupurusa-mandala which has been accepted as the plan of all architectural form of the Hindus. She has thrown light on the origin of square and circle shpae of Vastu for gods and Brahmans referring to the text Mayamata, III, and have expressed that these have Vedic origin.3 She has further added that the square dial of all cyclical time and its identification with the Vastupurusa were completed at the age of the Brhatsamhita (by Varha-Mihir) and the Visnudharmottara-Purana; only a few traces like the double lists of the Visnudharmottra-Purana of the 32 as that of Nakshatras (32 divinities, remain of the various traditions which met with the Vastu). The theory was generally accepted as the plan

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

of all the architectural forms of the Hindu temples, also the site plan, the horizontal and vertical section etc.

Thus the square and circle are coordinate in the architecture of Indian right from the Vedic period (Fire altar and Agni). Further, the Srauta Sutra's sulva-sutra deals with its measurements and the geometry. The Pancavimasa-Brahmana (IV, 9.11) prescribes the norms for raising the superstructure with a great laud along-with its relations between the talachchhanda (plan) and the Udhavachhanda (Elevation scheme) etc. Thus, these were some indications to raise the Hindu temples.

The Pauranic Source : - Next to the Vedic sources the Pauranic sources are very important do deal with the socio-religious and political history of ancient India. At present, we have 18 Puranas before us. There are some scholars who have done commendable job to focus light on different aspects of history and culture as reveled by the Puranas, however, we have taken extracts of some of the references from these texts to know the concept of the science of the temple architecture referred to in these texts.3 It may be noted that Out of 18 Puranas (beginning from the Brahma Purana to the Brahmanda Purana), containing thousands of verses (List mentioned in the Bhagwat Purana) nearly one dozen of the Puranas mentions various forms of temple architecture for different divinities. We may, however throw a bried light in the present context as follows :-

The Visnudharmotta Purana throws light upon the time on the 32 Naksatras (32divinites) which met in the Vastu. It became prevalent as various traditions in circa 5th century A.D. which was generally accepted as the plan of architectural forms of the Hindu temples. The text further mention details features of horizontal and vertical section of the temples. Likewise, the Agni-Purana (chapter, Cccv, 14) while enumerating the abodes of different divinities mention that in the quadrangle (catvara) Siva is present. Similarly, the "Visnu-Purana (I, I.2) refers to that Purusa who is the first form of Supreme Brahmana (Svetasvatra Upanisada-III, 19 , thus bears measuring rod." He is the great architect of universes and this capacity his name is "Visvakarman." It is more interesting that VayuPurana (IV, 30, 31); The Visnu-Purana and the Matsya-Purana have provided us the detail regarding the origin of the specific type of the Vimanas as well as their proportions to construct the Vimana. In this context, we may, however, consider

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

the lists of types of the Prasadas mentioned in the Brhasamhita and Matrsya Purana among which three names Viz., Meru, Mandara and Kailsha are the names of mountains which is the axis of the World. It is noteworthy that in the Bhavisya Purana Meru Mandara and Lailsha and other types are included among 20 types of temples which are already described in the Brahastamita, i.e. it is called guharaja (king of caves) (L.V. 17); and the Bhavisya-Purana (cxxx, 32); which is derived form the Brhatsamhita or other source common to both. Further, the Vayu-Purana informs us about the various kinds of residences of the of the gods on the mountains. It is interesting to note that the guha (cave) is also described as the residence of Karttikeya (Vayu-Purana-XXXIX55).

Urdhavachhanda: (Elevation or Superstructure) The puranas further mention about methods of construction of the curvilinear sikhara by means of geometrical progression by four-fold division, i.e., the caturguna-sutra. Interestingly the other Puranas like the Matsya-Purana, Agni-Purana and the Garuna-Purana have also thrown light on these methods in different chapters.1 It is worth mention here that the norms of the proportions and measurement were fixed and became prevalent during the period form circa 6th - 8th century A.D. We are aware of the expression regarding the superstructure, for the first time in the Pancavimsha-Brahmana (IV, 9, 11), which indicates towards certain norms i.e., "On an enclosed space they hold the laud in order that they encompass Brahmana. To encompass the Brahmana. to build up in space a compartment co-responding to the Brhamastana on the plan, the Vastupurusamandala, "the dolmen lent its stone walls, they were raised on socle. A flat-roof which served also as the ceiling shielded the enclosure on top. The plan was completed." Later silpa-texts provided more details about the relations between the talachhanda (plan) and the Urdhvachhanda (Elevation), measurements and symmetry etc in specific structures. Soon the norms of the proportionate measurements were fixed in circa eighteenth century A.D. Thus the measurements for spire of different classes of temples, i.e., Nagara, Vesara and Dravida along with their groups making it 64 types are mentioned in Puranas. In fact, the descriptions of twenty-types of the temples in the Brahatsamhita (LV, 20-31) follow immediately the rules of proportionate measurements.

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

The details of these may, however, be seen in Bhavisya-Purana (cxxx, 24-37) and the Matsya-Purana (CCLX IX, 18-30) and lastly in the Samaranganasutradhara (Bhoja) (I, LXII, 1-34). Thus it is clear that all the other Puranas, too repeated the same list of twenty temples. Among the lists of temples the Meru, Mandara and Kailasha had greater storys on Bhumis and Nandana is equally high but having six Bhumis, the four varieties and the fifth called Vimanaccanda, form the first and most important group. They exhibit the similar features. Others of twenty are circular cusped-plan and the walls have 8 or 16 bays which make a cusp ground plan (Vrtta) like the lotus flower known as Vartula, caturasra or catuskona etc.

It was during the early medieval period (circa 9th century to 14th centruy A.D.) when several silpa-text were composed throughout India which prescribed the norms to raise the Hindu temples. We may, obviously, consider these texts of Malwa, Gujarata, and Rajasthan which were patronised by the rulers of the repective regions. The most outstanding texts like the Samaranganasutradhara, Aparajitaprasnaprchchha, Prasadamandana and Lakshana-samuccay etc, stand to the point. Specifically, the Samaranganasutradhara (Bhoja) had its deept impacts over the neighbouring regions like Gujarat, Rajasthan, Jejakabhukti, Maharasthra and Chhattisgarha dn as far as distance places up to Karnataka till circa 14th century A.D. on wears where it continued with certain variations due to the regional trends. Thus, we may, however, assume that the building of the Hindu temple structured in rooted in the Vedic traditions, the principles are given in the sacred books of India and these were canonised during the early medieval period with the strict instructions to the patrons and the artisans who were responsible to raise it. It was due to these backgrounds the wonderful structures i.e., the classical Hindu temples were raised throughout the country.[5]

References

1. Ali, R. , "Indian Architecture As Gleaned from the Vedic Literature" , Vedic Ithas Ki Adyatan Pravrtiyan, (Edit.), O.P. Pandey, Pub. Nag Publisher Delhi, 2003, pp. 114-125
2. Kramrisch, S., The Hindu Temple Vol-2, Varanasi, 1976, P. 133, also see the diagrams of the types of Vastu-Purusa-mandala - no(1), A.B.C and 'D', pp. 86,87,88
3. Karmrisch, S. The Hindi Temple Vol-2, Varanasi, 1976, P. 133. also see the diagrams of the types of vastu-Purusa-mandala - no (1) A.2 B.C.3 'D'.

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

pp. 86,87,88

List of the Bhagavata-Purana supllied by Shri R.V. Walunjakar, Bhopal M.P.

Karmrisch, S. The Hindi Temple Vol-2, Varanasi, 1976, P. 133. also see the diagrams of the types of 45 Vimanas. Ibid

Ibid. And Kramrisch, S. O.P.Cit. page 278

4. Karmrisch, S. The Hindu Temple, Vol. 1, 1944, P. 271

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

खण्ड तृतीय

विविध

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri
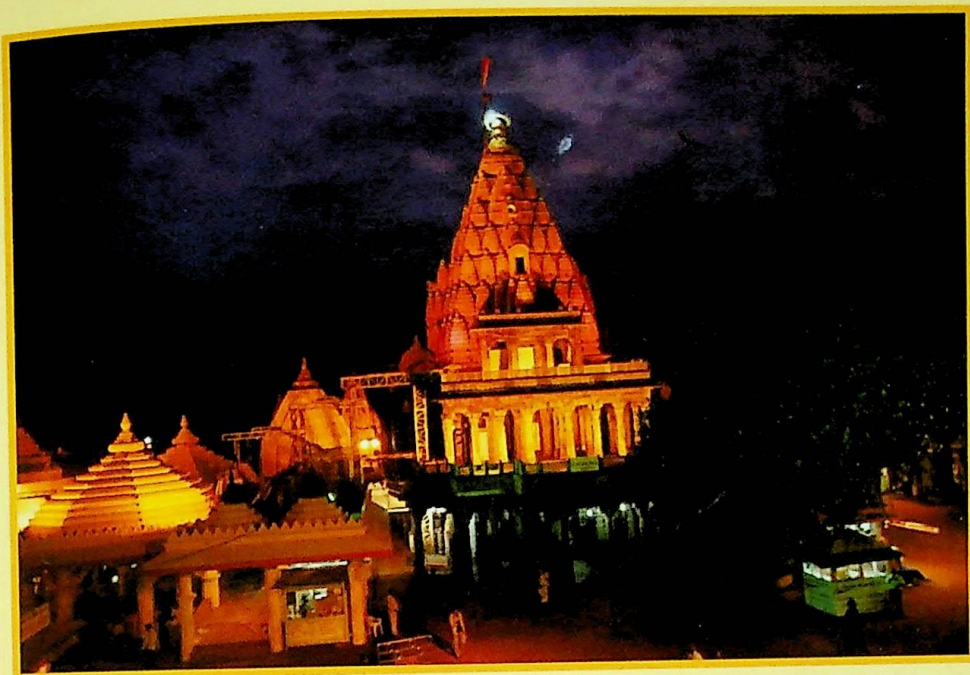
श्री महाकालेश्वर मंदिर, उज्जैन

श्री महाकालेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग, उज्जैन

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

श्री महाकालेश्वर भस्म आरती, उज्जैन

श्री औंकारेश्वर मंदिर, औंकारेश्वर

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

श्री औंकारेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग, औंकारेश्वर

पशुपतिनाथ मंदिर, मंदसौर

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri
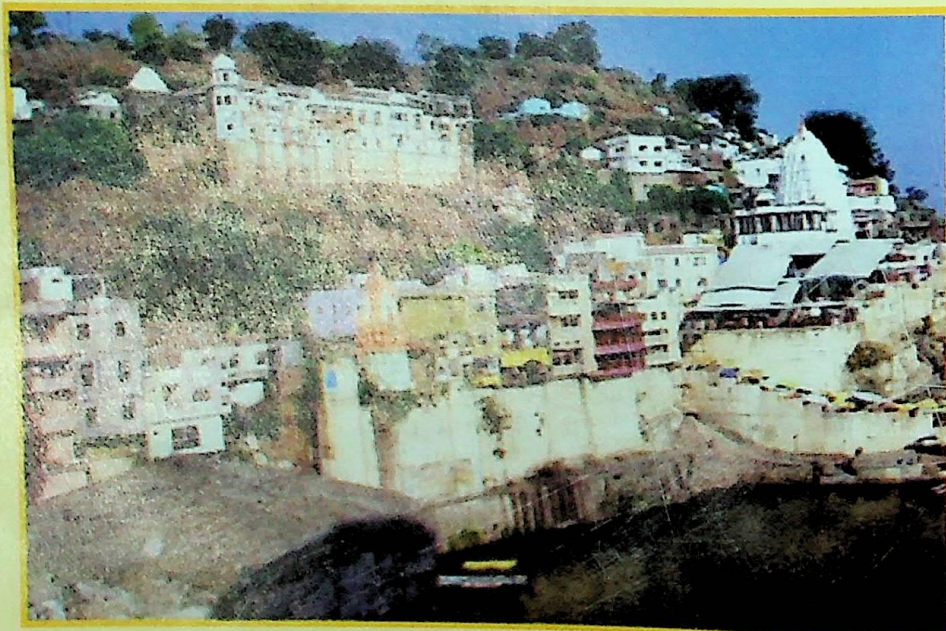
श्री हरसिद्धि माता मंदिर, उज्जैन

श्री कालभैरव मन्दिर, उज्जैन

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri
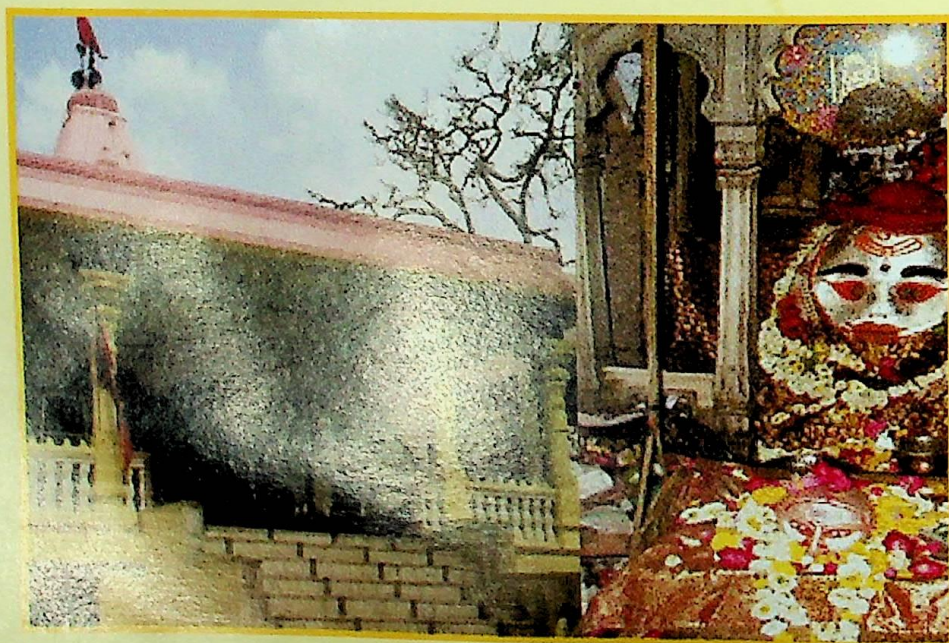
माँ बगलामुखी माता मंदिर, नलखेड़ा

बिलपांक का विरुपाक्ष महादेव मंदिर, रतलाम

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri
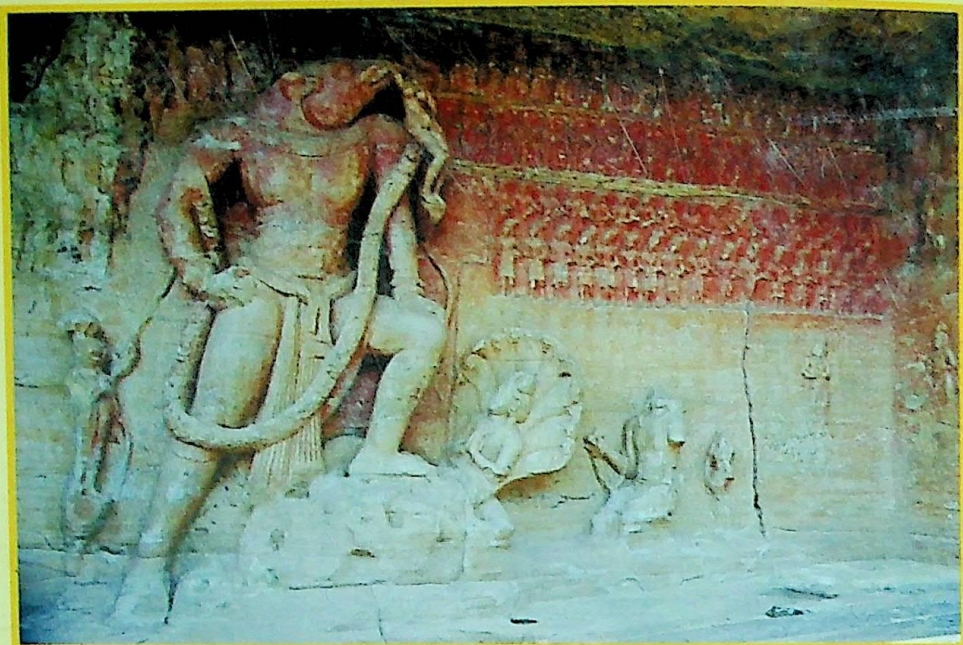
उदयगिरि की गुफाएँ – वराह

गढ़कालिका माता मंदिर, उज्जैन

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भर्तृहरि गुफा, उज्जैन

बावन कुण्ड कालियादेह महल, उज्जैन

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

श्री चौबीस खम्बा माता मंदिर, उज्जैन

श्री राम जनार्दन मंदिर, उज्जैन

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri
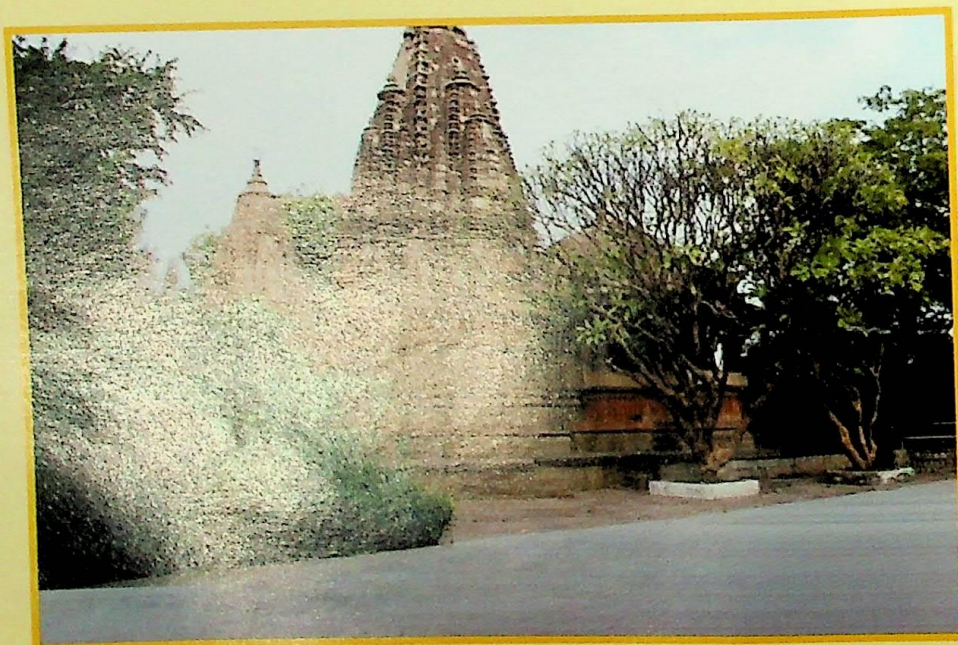
पुराणों में नैतिक शिक्षा

डॉ. सीमा शर्मा*

पुराणों को भारतीय संस्कृति का मेरूदण्ड कहा गया है। 'पुराण' शब्द का अर्थ है - 'पुराभवम्' अर्थात् (प्राचीनकाल में होने वाला)। यास्क के निरूक्त के अनुसार (3/19) 'पुराण' की व्युत्पत्ति है - पुरा नवं भवति (अर्थात् जो प्राचीन होकर भी नया होता है)[1]

पुराणों की संख्या प्राचीनकाल से 18 मानी गई है। इस अष्टादश पुराणों का नाम प्रत्येक पुराण में उपलब्ध होता है।

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्
नालिपाग्निपुराणानि कूस्मं गारूडमेव च ।
(दैवीभागवत् 1/3)

1. मकारादि दो पुराण -मत्स्य तथा मार्कण्डेय
2. मकारादि दो पुराण - भागवत तथा भविष्य
3. ब्रतयम - ब्रह्म, ब्रह्म- वैक्र्त तथा वाराह
4. वचतुष्टयम् - वामन, विष्णु, वायु, वाराह
5. अनापत् लिंग, कूस्क - अग्नि, नारद, पद्य, लिंग, गरूड़, कर्म तथा स्कन्द

वर्तमान युग में 'नैतिक' शिक्षा के महत्व को प्रतिपादित किया जाता है। संस्कारों की शिक्षा माँ के गर्भ से ही प्रारंभ हो जाती है। यह सुभद्रा पुत्र अभिमन्यु की कथा से परिलक्षित होता है। संस्कारों की महानता अर्थात् "परहित" का विचार प्राचीन

* सहायक प्राध्यापक (अंग्रेजी), शासकीय संस्कृत महाविद्यालय, उज्जैन

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ग्रंथों से लेकर वर्तमान तक किया जाता है।

परहित सरिस धरम नहीं भाई

पर पीड़ा सम नहीं अधमाई।

गोस्वामी तुलसीदासजी का ये कथन पुराणों में भी परिलक्षित होता है -

''कृपणानाय वृद्धानां विधवानां च योष्तिाम् योगक्षेमं च वृतिं च तथैव परिकल्पयेत्।। (मत्स्य शक 165)

इसका तात्पर्य है कि कृपण अनाय, वृद्ध तथा विधवाओं के योगक्षेम तथा वृत्ति का प्रबंध करना राजा का महनीय धर्म होना चाहिये।

अर्थात् हिन्दू धर्म में मानवीय विचार भावना तथा सहविचारों को महत्व दिया गया है। प्रत्येक पुराण प्रत्येक पुरूष, स्त्री एवं बच्चे की बुद्धि को अन्धकार से मुक्त करने की चेष्टा करता है, जिससे वह आदर्श स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये अपनी अधिकृत स्वतंत्रता का समुचित उपयोग कर सके। इसलिये भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों, मतों को स्वीकार कर एवं आत्मा की भाँति हिन्दू धर्म सबको एक माला में पिरोए हुए है।

1. **राष्ट्र के प्रति प्रेमभावना** - प्राचीन भारतीय ऋषियों ने ''सादा जीवन उच्च विचार'' का संदेश प्रदानकर ''सत्यं शिवं सुन्दरम्'' का सिद्धांत प्रतिपादित किया। राष्ट्र के प्रति प्रेम भावना, प्रकृति को ईश्वर का रूप मानकर आदर भाव उत्पन्न करना ही ऋषियों का ध्येय रहा है। जैसा कि गीता में कहा गया है -

''परित्राणाय साधूनां विनाशय च दृष्कृताम्।

धर्म संस्थापनार्थाय संभवानि युगे युगे ।।

2. **आध्यात्मिक दृष्टि** - स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म की उपादेयता पर विचार व्यक्त किये हैं।

'' भिन्न-भिन्न मत मतान्तरों पर विश्वास के समान हिन्दू धर्म नहीं है वरन् हिन्दू धर्म तो प्रत्यक्ष अनुभूति या साक्षात्कार का धर्म है। हिन्दू धर्म में एक जातीय भाव देखने को मिलेगा। वह है आध्यात्मिकता।

धर्म अनुभूति की वस्तु है। भूख की बात, मतवाद अथवा युक्तिभूल सब कल्पना नहीं है -

चाहे वह कितनी भी सुन्दर हो। - आत्मा की ब्रह्मस्वरूपता को जान लेना तद्रप हो जाना -

उसका साक्षात्कार करना यही धर्म है। धर्म केवल सुनने या मान लेने की चीज नहीं है। समस्त मन-प्राण विश्वास के साथ एक हो जाये- यही धर्म है।

क्या वास्तव में धर्म का कोई उपयोग है हाँ वह मनुष्य को अमर बना देता है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

जहाँ यथार्थ धर्म वही आत्म बलिदान। अपने लिये कुछ मत चाहो, दूसरों के लिये ही सब कुछ करो- यही है ईश्वर में तुम्हारे जीवन की स्थिति, गति तथा प्रगति।"[3]

नैतिक दायित्व - समाज के प्रति नैतिक दायित्व को पुराणों में निरूपित किया गया है। इसे धर्म का स्वरूप भी कह सकते है। श्रीनारदजी के त्रिंशलक्षण(30) (श्रीमदभागवत 7/11/8-12) के अनुसार -

सत्यं दया तपः शौचं ति तिक्षेक्षणशमोदमः।
अहिसां ब्रह्मचर्य च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम्।।
संतोषः समदृक् सेवाः ग्राम्येहोपरमः शनैः।
नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्माविमर्शनम्।।
अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यदार्हतः।
तेषांवात्मदेवता बुद्धिः सुवरां नृषु पाण्डव।।
श्रवणं कीर्तन चास्यं स्मरणं महतां गतेः।
सेवेज्यावनति दास्यं सख्यमात्यसमर्पणम्।।
नृणामयं परो धार्मः सर्वेषां समुदाहतः।
त्रिशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्या येन तुष्यति।।[4]

(श्रीमद भागवत 7/11/8-12)

अर्थात् सत्य, दया, तप, शौच, तितिक्षा (सहनशीलता), उचित-अनुचित का विचार, मन संयम, इन्द्रियनिग्रह, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, संतोष, समदर्शिता, महात्माओं की सेवा, धीरे-धीरे सांसारिक भोगों की चेष्टा ने निवृत्ति, मनुष्य के अभिमान पूर्ण प्रयत्नों का फल उलटा ही होता है। ऐसा विचार मौन, आत्मचिंतन, प्राणियों को अन्नादि का यथायोग्य विभाजन, पशु आदि प्राणियों में तथा विशेष करके मनुष्यों में आत्मा तथा इष्टदेव का भाव, संतों के परम आश्रय भगवान श्रीकृष्ण के गुण, लीला आदि का श्रवण, कीर्तन, उनके प्रति दास्य, सांख्य भाव यह तीस प्रकार का आचरण मानवमात्र का परम धर्म है।

उपरोक्त गुण नैतिक शिक्षा के मूल आधार है।

4. बहुजनहिताय, बहुजन सुखाय की भावना का संदेश

पुराणों में भारतीय जीवन दर्शन की मूल भावना 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय का संदेश सर्वसाधारण को प्रदान किया गया है। देवालय, विद्यालय, औषधालय, भोजनालय(अन्नक्षेत्र), अनाथालय, गौशाला, धर्मशाला, कुएँ, बावड़ी तालाब आदि सर्वजनोपयोगी स्थानों का निर्माण आदि कार्य यदि न्यायोपार्जित द्रव्य से बिना यश की कामना से भगवतप्रीव्यर्थ किये जाए तो परमकल्याणकारी सिद्ध होंगे। सामान्यतः

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

न्यायपूर्वक अर्जित किये हुए धन का दशमांश बुद्धिमान मनुष्य को दान-कार्य में ईश्वर की प्रसन्नता के लिये लगाना चाहिये।

न्यायोपार्जितवित्तस्य दशमांसेन धीमता।

कर्त्तव्यों विनियोगश्च ईश प्रीत्यर्थमेव च। (स्कन्दपुराण, केदार/2/35)

अन्यायपूर्वक अर्जित धन का दान करने से कोई पुण्य नहीं होता। यह 'न्यायोपार्जित वितस्य' इस कथन से स्पष्ट होता है। दान देने का अभिमत तथा लेने वाले पर किसी प्रकार के उपकार का भाव न उत्पन्न हो, इसके लिये इस श्लोक में 'कर्त्तव्य' पद का प्रयोग हुआ है। अर्थात् 'धन का इतना हिस्सा दान करना'' यह मनुष्य का कर्त्तव्य है। मानव का मुख्य लक्ष्य है - ईश्वर की प्रसन्नता प्राप्त करना। अतः दान रूप कर्तव्य का पालन करते हुए भगवत्प्रीति का बनाये रखना भी आवश्यक है। इसीलिये कर्तव्यों विनियोगश्च ईशप्रीत्यर्यमेव च'' इन शब्दों का प्रयोग किया गया है।

उपार्जित धन के दशमांश का दान करने का हक विधान सामान्य कोटि के मानवों के लिये किया गया है पर जो व्यक्ति वैभवशाली धनी और उदारचेता है उन्हें तो अपने अर्जित धन को पाँच भागों में विभक्त करना चाहिये -

धर्माय यश सेड अर्याय कायाय स्वजनाय च

पञ्चथा विभाजन् वित्तमिहामुत्र च मोदते।[6]

1 धर्म 2 यश 3 अर्थ (व्यापार आदि आजीविका) 4 काम (जीवन के उपयोगी भोग) 5 स्वजन (परिवार) के लिये। इस प्रकार पाँच प्रकार के धन का विभाग करने वाला इस लोक और परलोक में भी आनन्द को प्राप्त करता है।

5. **संस्कारों की शिक्षा** - संस्कार का अर्थ होता है प्रकाशित करना। मानसिक एवं आध्यात्मिक परिशुद्धि करना संस्कारों का कार्य है। सच्चरित्रता तथा मन और आत्मा की पवित्रता ही संस्कार का उद्देश्य होता है। माता-पिता का सम्मान, वृद्धों की सेवा, असमर्थ रोगी की सेवा एवं इनके प्रति सहिष्णुता का भाव रखना। प्रत्येक धार्मिक ग्रंथ का परम कर्तव्य है। पुराणों में वर्णित वृत्तांत इन्हीं आदर्शो से परिचित कराते है। श्रवणकुमार ने संस्कारों के कारण ही वृद्ध (अंधे) माता पिता को कावर में बैठाकर तीर्थयात्रा कराई थी। महर्षि वेद व्यास जी कहते है -

सर्वतीर्थमयी माता सर्वदेवमयः पिता।

मातरं पितरं तस्मात् सर्वयत्नेन पूजयेत॥[7]

इसीप्रकार मनुष्य द्वारा जीवन मूल्यों के आधार पर दस लक्षण बताये गए है -

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रयनिग्रहः।

धीर्विधा सत्यमक्रोधो दशमं धर्मलक्षणम्॥[8]

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

धैर्य, क्षमा, दुष्प्रवृतियों, का दमन, अचौर्य, शुद्धता, इन्द्रियसंगम, बुद्धि, विद्या, सत्य तथा अक्रोध- ये धर्म के दस लक्षण है। अतः इन गुणों के आधार पर व्यक्ति सुसंस्कृत हो सकता है।

6. **राजा के कर्त्तव्य** - राजा के कर्त्तव्यों के बारे में विशेष रूप से इंगित किया गया है। श्रीमद्भागवत महापुराण के एकादश स्कन्ध में राजा के विषय में कहा गया है -

सर्वाः समुद्धरेद राजा पितेव व्यसनात्प्रजाः।
आत्मनामात्मना धीरो तथा गजपतिर्गजान् ।[9]

अर्थात् राजा को अपनी प्रजा हेतु पिता के समान पालक दृष्टि रखनी चाहिये। जैसे गजराज दूसरे गजों की रक्षा करता है। वैसे ही राजा को प्रजा की रक्षा करनी चाहिये।

वस्तुतः परोपकार की भावना रखना ही मानव मात्र का धर्म है। यही पुराणों के माध्यम से समस्त मानवजाति हेतु संदेश है।

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडयम्।।

पुराणों की शिक्षा वर्तमान काल में नैतिक शिक्षा की आवश्यकता पर बल देती है। नैतिक शिक्षा एक व्यक्ति का नहीं अपितु समस्त समाज का धर्म है। पुराणों के आदर्श चरित्र- आज भी उतने ही प्रासंगिक है जितना कि सृष्टि के प्रारंभ में थे। भारतीय दर्शन संकीर्ण विचारधारा नहीं अपितु मानवीय विचारधारा पर आश्रित है।

अयं निजः परोनेति गणना लघुचेतसाम्
उदार चरितानांन वसुधैव कुटुम्बकम्''

सन्दर्भ

1. पुराण विमर्श बलदेव उपाध्याय चोखम्बा प्रकाशन 1965, पृ.3
2. पुराण विमर्श पृ. 308
3. कल्याण धर्मशास्त्रांक वर्ष 70 संख्या 1, पृ. 40
4. कल्याण धर्मशास्त्रांक वर्ष 70 संख्या 1, पृ.111
5. कल्याण संस्कार अंक (2006) गीताप्रेस गोरखपुर
6. कल्याण संस्कार अंक (2006) गीताप्रेस गोरखपुर
7. पद्मपुराण सृष्टिखंड-52/11
8. मनुस्मृति 6/92
9. श्रीमद्भागवत महापुराण, 11-17-45

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

शंकराचार्य की अद्वैतवादी दार्शनिक परम्परा

डॉ. पुष्पा कपूर*

शंकराचार्य का अद्वैत वेदान्त दर्शन औपनिषद दर्शन है। वेदों तथा उपनिषदों के अंतर्गत जिन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है, उसको शंकराचार्य ने एकमात्र स्रोत के रूप में स्वीकार किया है। उन्होंने अपने सभी सिद्धांतों की पुष्टि इन्हीं ग्रंथों के आधार पर की है। शंकराचार्य ने प्रमुख उपनिषदों, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता पर भाष्य लिखे। उन्होंने उपनिषदों की एकतत्ववादी विचारधारा का अद्वैतवाद में विकास किया। ''उन्होंने भारतवर्ष का भ्रमण करके हिन्दू समाज को एकसूत्र में पिरोने के लिए उत्तर में बद्रीनाथ में, दक्षिण में श्रृंगेरी में, पूर्व में पुरी में तथा पश्चिम में द्वारका में चार पीठों की स्थापना की।''

अद्वैत वेदान्त में आत्मा और ब्रह्म की एकता को सिद्ध किया गया है। आत्मा को नित्य, मुक्त, अपरिणामी, निर्विशेष और कूटस्थ बताया गया है। उन्होंने आत्मा को ब्रह्म की संज्ञा दी है - जीवो ब्रह्मैव नापरः। ब्रह्म सत्य, ज्ञान और अनन्त है। जब तक जीव को ब्रह्मज्ञान नहीं हो जाता तब तक वह व्यावहारिक स्तर पर रहते हुए संसार को सत्य मानता है। ऐसी स्थिति में उसे संसार में अपने दायित्वों को पूर्ण करते हुए जीवन व्यतीत करना चाहिए। शंकराचार्य ने संसार को पारमार्थिक दृष्टि से मिथ्या बताया है। व्यवहारिक दृष्टि से वह सत्य है। व्यवहारिक जीवन में समाज की व्यवस्था 'धर्म' बताई गई है। अतः वर्णाश्रम धर्म, राज धर्म का विधान किया गया है। व्यावहारिक दृष्टि से

---

* प्राध्यापक (दर्शनशास्त्र), शा. कन्या महाविद्यालय, रतलाम

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

समस्त प्राणियों में भिन्नता पाई जाती है, जैसे जन्म-मरण भिन्न-भिन्न होना, कर्म भिन्न होना। शंकराचार्य के अनुसार यह जगत मिथ्या है और ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है तथा जीव ब्रह्म ही है, उससे भिन्न नहीं। ब्रह्म और आत्मा एक है।

यह संसार माया की प्रतीति है। यहाँ शंकराचार्य जगत की व्यवहारिक सत्ता का निषेध नहीं करते। ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप माया के कारण ढक जाता है और उसके स्थान पर जीव, जगत सत्य रूप में ज्ञात होता है। जब जीव अप्रत्यक्ष रूप से ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तब वह जगत के मित्यात्व को जान लेता है, आत्मतत्व का साक्षात्कार करता है, यही मोक्ष है।

मोक्ष की प्राप्ति होने पर जीवात्मा ब्रह्म से एकाकार हो जाती है। शंकराचार्य जीवन्मुक्ति को मानते हैं, जब जीव ब्रह्मज्ञान को प्राप्त कर लेता है तब उसे जीवन रहते हुए मुक्ति प्राप्त होती है। अपने प्रारब्ध कर्मों के परिणामस्वरूप उसका जीवन बना रहता है, किन्तु वह ऐसी अवस्था में राग-द्वेष, सुख-दुःख आदि से मुक्त रहता है, उसे आसक्ति नहीं रहती। ऐसे जीव सच्चिदानन्द ब्रह्म से अभेद प्राप्त कर लेते हैं। उनका विदेह-मुक्ति के पश्चात् पुनः जन्म नहीं होता।

जीव ब्रह्म भाव में व्यापक एवं अनन्त है, किन्तु शरीर की उपाधि से घिरकर वह सीमित हो जाता है। शंकराचार्य ने माया को ईश्वर की शक्ति माना है तथा उसे अनिर्वचनीय कहा है। ईश्वर स्वयं माया से अप्रभावित रहता है। अद्वैत वेदान्त दर्शन में शंकराचार्य ने एक ओर आध्यात्मिक तत्व का विवेचन किया तो दूसरी ओर तर्क की कसौटी पर रखकर उसे बौद्धिक साँचें में ढाला। इससे उनका दर्शन अद्वितीय बन गया।

जीव तथा ईश्वर के बीच जो भेद है वह व्यवहारिक है। परमार्थ रूप से जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है। बंधन और मोक्ष दोनों व्यवहारिक है, पारमार्थिक नहीं।

सन्दर्भ

1. भारतीय दर्शन - चन्द्रधर शर्मा, पृ. 237
2. भारतीय दर्शन का इतिहास, एस.एन. दासगुप्ता भाग 4 एवं 5
3. भारतीय तत्व विज्ञान, आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल
4. भारतीय दर्शन, डॉ. बलदेव उपाध्याय
5. अद्वैत वेदान्त, प्रो. अर्जुन मिश्र, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

काश्मीरी शैवमत की दार्शनिक पृष्ठभूमि

डॉ. शशि जोशी

काश्मीरी शैवमत की दृष्टि अद्वैत का प्रतिपादन करती है। इन शैवमतवादियों का मानना है कि एक ही तत्वातीत परमशिव सर्वत्र प्रकाशित हैं, वह पूर्ण चिद्रूप हैं, सम्पूर्ण विश्व उसका लीलाविलास हैं, यह चिद्रूप अथवा चिति ही परासंवित् हैं। शिव से लेकर धरणियपर्यन्त सभी तत्वों की अवस्थिति इसी चैतन्य स्वरूप परमात्मा में हैं। यही वह परम शिव तत्व है जिसमें षड़त्रिंशदात्मक जगत विभासित है। ''यत् परतत्वं तस्मिन् विभाति षट्त्रिंशदात्यजगत्''। शिव और शक्ति प्रकाश और विमर्श रूप है। एक के अभाव में दूसरे की कल्पना असंभव है। इनमें अविनाभाव सम्बन्ध है प्रकाश आत्मा स्वरूप है और यह विमर्श प्रकाश रूप परमात्मा के स्वरूप की पूर्ण प्रतीति है।

प्रकाशमानं न पृथक् प्रकाशात्।
स च प्रकाशो न पृथग् विमर्शात् स्त्र

शिव और शक्ति अभिन्न हैं, इनका सामरस्य ही परमशिव है। शक्ति के बिना शिव जड़वत् है। शक्ति स्वभाव से शक्त होने पर ही शिव कर्त्तव्य भाव का अधिकारी होता है। परम शिव की इच्छा शक्ति ही स्पन्द है। अपने विमर्श से सब कुछ कर सकने के कारण वह पूर्ण स्वतंत्र हैं। परमशिव की इच्छा शक्ति ही किसी अपूर्ण की परोन्मुखी इच्छा न हो स्वात्मपूर्ण इच्छा है। अपूर्ण में पर-अपेक्षा होती है, परम शिव स्वतः पूर्ण है। वह स्वतन्त्र अपने आप में विश्रान्त रहता है इसलिये उसे पूर्ण आनन्द कहा जाता है।

''स्वात्मविश्रान्तिरेवैशा देवस्यानन्द उच्यते।''

परमेश्वर की इच्छा शक्ति ही उसकी स्वातंत्र्य शक्ति है। उसमें ही ज्ञान शक्ति

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

और क्रियाशक्ति अभेदरूपता में स्फुरित होती है। शैव दर्शन में कहा गया है कि जो ज्ञान है वह क्रियाशून्य नहीं और जो क्रिया है वह ज्ञान रहित नहीं है।

''न क्रियारहितं ज्ञानं न ज्ञान रहिता क्रिया''

अतः आत्मा अपनी इच्छा से शिव से लेकर 36 तत्वों में अभेदरूपता से स्फुरित होकर विश्वात्मक रूप है।

परमेश्वर का शक्ति स्फूर्त होने के कारण नानारूपों में दृष्टिगोचर होने वाले सभी पदार्थ प्रकाश रूप ही है, एकमात्र शिव ही नाना प्रकार की विचित्रताओं के साथ विश्वभाव से स्फुरित हो रहा हैं वह सर्व आकृतिरूप है, उससे भिन्न कोई सत्ता नहीं। चिदात्मा की अपनी इच्छा ही इस विश्वात्मक स्वरूप का हेतु है और इस विश्व उल्लसन का एकमात्र कारण है। चिदात्मा अपनी इच्छा मात्र से अपने ही स्वरूप से अपनी ही प्रकाश भित्ति पर विविध विश्वरूप को प्रकाशित करता है। शैवमत की शब्दावली में परम शिव अपने प्रकाश रूप आश्रय में प्रकाश रूप सामग्री से अपने आपसे विश्व का भिन्नवत् उल्लसन करता है और अपनी इच्छा से ही उसका उन्मूलन करता है।

भगवान शिव की यह स्वतंत्र इच्छा स्वयं अविभक्त होते हुए भी सृष्टि संहार रूपों को भिन्नवत् प्रकाशित करती है। उन्मेष और निमेष करने वाली इस पारमेश्वरी इच्छा शक्ति को ही स्पन्द शक्ति कहा गया है जो कार्य भेद से नाना रूपों में व्यक्त होती है। चिदात्मा परमेश्वर की इन असंख्या शक्तियों में पाँच ही शक्तियाँ मुख्य मानी गई हैं। ''तत्र परमेश्वरः पंचभिः शक्तिभिः निर्भरः'' चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया। अभिनव गुप्त ने अपने तंत्रसार में उसे शक्तिपंचक के रूप में परिभाषित करते हुए लिखा है - ''चित् शक्ति प्रकाश रूपा है, उसकी प्रकाशरूपता ही परमशिव की शुद्ध संविद्रूपता है। अपने इस प्रकाश स्वरूप से वह प्रकाशित होता है। प्रकाश रूप आत्मा का इच्छा स्फुरण भी प्रकाशरूप ही है। विमर्श भी चिदात्मा के प्रकाशस्वरूप की प्रतीति है। चित् अंश प्रकाश शिव है और आनन्द अंश (विमर्श) शक्ति भाव है। इनके सामरस्य में इच्छा ज्ञान क्रिया समरसीभूत होती है। स्वात्मानन्द में विश्रान्त परमशिव का स्वातंश्य स्वभाव विश्वात्मभाव के लिए औन्मुख्य होते हुए विश्वरचना के लिए उन्मुखवत् होता है तो सूक्ष्म अभिलाषा मात्र की उन्मुखता औन्मुख्य कही जाती है। औन्मुख्य और आनन्द शक्ति में कोई भेद नहीं है। औनमुख्य का उत्तरवर्ती भाग ही इच्छा शक्ति है। इस इच्छा शक्ति से ही परमेश्वर विभिन्न ज्ञात ज्ञान श्रेय रूपों में आत्म-अवभासन की इच्छा करता है। यह इच्छा शक्ति विकसित होकर जब विश्वरूपी कार्य के प्रकाशन की शक्ति बनती है तो उसे ज्ञान-शक्ति कहा जाता है यह ज्ञान-शक्ति दो रूपों में अभिव्यक्त होती है ज्ञात और ज्ञेय। इच्छाशक्ति जब वेद्योन्मुखी होती है तो ज्ञान-शक्ति होती है। सदाशिवत्व को ज्ञानशक्तिमय माना है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

"ज्ञानशक्तिमान् सदाशिवः"

परमेश्वर अपने स्वप्रकाशरूप स्वरूप में जिस शक्ति के द्वारा विश्वात्मकभाव से नाना पदार्थों को भेद-अवभासन करता है इस भासने को अर्थात् क्रिया शक्ति के स्फूर्त को ही विश्वरूप कहा जाता है। इस विश्व के रहस्य को समझने की दृष्टि के विकास का उद्भव कश्मीर में होने के कारण काश्मीर शैव मत कहा गया है।

काश्मीर शैव मत की अद्वैतवादी विचारधारा का स्रोत तो वैसे शैवागमों के समान अनादिकाल से है और भगवान शिव ही उसके रचयिता हैं। कालक्रम से ही उसका लोक प्रकाशन व तिरोभाव होता रहता है। काश्मीर के शैवाचार्य सोमानन्द ने शिवदृष्टि के सॉंतवे आह्निक में शैव शास्त्र के आविर्भाव का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "कलियुग का प्रारंभ होने पर शिवशासन के व्याख्याता ऋषिगण सामान्यजनों की पहुँच के परे कलापि ग्राम आदि दुर्लभ पार्वत्य स्थानों पर चले गये।" उपदेष्टजनों की परम्परा के इस प्रकार तिरोहित हो जाने पर लोक में शैव शास्त्रों का प्रचार अवरूद्ध हो गया। तब भगवान शिव ने रहस्यशास्त्र के पुनः प्रचार के लिए दुर्वासा मुनि को नियुक्त किया। दुर्वासा मुनि ने श्यम्बकादित्य नामक मानस पुत्र उत्पन्न किया और शैवागम का समस्त रहस्य उसमें संक्रमित कर दिया और शैवागम का प्रादुर्भाव हुआ। शिवदृष्टि में आचार्य सोमानन्द ने स्वयं को श्यंम्बकादित्य की बीसवीं पीढ़ी का बताया है।" अतएव आचार्य सोमानन्द के काल से शैवागम के उद्भव का काल निर्धारण किया जा सकता है।

तंत्रलोक से ज्ञात होता है कि कश्मीरनृपति ललितादित्य आचार्य अभिगुप्त के पूर्व पुरूष अत्रिगुप्त की विद्वता से अत्यधिक प्रभावित होकर उसे अपने राज्य कश्मीर ले आया था। इससे यह भी संकेत मिलता है कि उस समय कश्मीर का राजपरिवार शैव मत का अनुयायी था। कश्मीर में तांत्रिक शैवमत के अनुकूल वातावरण भी था। तांत्रिक शैवमत को राजकीय संरक्षण प्राप्त था। अतएव संभव है जनप्रचलित शैवधर्म को शास्त्रों का आधार देकर दृढ़ मूल करने के लिए काश्मीर के शैव मतालम्बीं दोनों प्रवासी परिवार में धार्मिक साहित्य की रचना प्रारम्भ करके जनरूचि को अपने उपदेशों और शास्त्रों से प्रभावित किया।

अतः कहा जा सकता है कि काश्मीर शैवागम के उपलब्ध मुख्य आगमों का निर्माण लगभग 700 और 800 ईसवी के मध्य में हुआ होगा। उसके पश्चात् आगम साहित्य के सिद्धान्तों के आधार पर श्री सोमानन्द ने अपने शिवदृष्टि के प्रकरण से काश्मीर शैवागम के दार्शनिक पक्ष का प्रर्वतन किया गया होगा। दार्शनिक पृष्ठभूमि की नींव में काश्मीर शैव दर्शन की आधारभूत उपलब्ध साहित्य को तीन भागों में विभाजित

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

किया जा सकता है - आगम शास्त्र, स्पन्दशास्त्र और प्रत्यभिज्ञाशास्त्र। भगवान शिव आगमों के सृष्टा और वक्ता माने जाते हैं। भगवान शिव ने स्वयं ऋषियों को इसका ज्ञान दिया था। काश्मीर शैवागमों मालिनी विजयोत्तर तंत्र, स्वच्छन्दतंत्र, नेत्रतंत्र, विज्ञान भैरव, रूद्रयामल तंत्र, आनन्द भैरव, शिवसूत्र आदि प्रमुख माने गए हैं। स्पन्दशास्त्र काश्मीर शैव दर्शन के साधना पक्ष से सम्बन्धित है। स्पन्दकारिका इसका मूलग्रन्थ है। इसमें प्रतिपादित विचार गम्भीर हैं यद्यपि इसकी भाषा सरल है। इसमें 51 कारिकाएँ है। वसुगुप्त इसके रचयिता है रामकण्ठ, उत्पलदेव, क्षेमराज आदि ने स्पन्दनिर्णयवृत्ति, स्पन्ददीपिकावृत्ति में इसी परम्परा को आगे बढ़ाया।

प्रत्यभिज्ञा शास्त्र काश्मीर शैवमत का दार्शनिक ग्रंथ है। काश्मीर शैव साहित्य में विचार प्रतिपादन की इस पद्धति का आधार श्री सोमानन्द ने अपने शिवदृष्टि ग्रंथ में किया है। शिव दृष्टि का पर्याय ही था शिवदर्शन। स्पन्दशास्त्र और प्रत्यभिज्ञा शास्त्र के सिद्धान्तों में कोई भेद नहीं है। प्रत्यभिज्ञा का निरूपण आचार्य उत्पलदेव ने ईश्वरप्रत्यभिज्ञा में किया है तथा उसी के तीन उपाय शिवसूत्र एवं स्पन्दकारिका में है। 1. शाम्भव उपाय 2. अनुपाय 3. आणव उपाय। ये उपाय मूलतः मलप्रक्षालन के साधन है। आचार्य सोमानन्द ने शिवदृष्टि में जिन दार्शनिक सिद्धान्तों की स्थापना की थी। उसकी विस्तृत व्याख्या प्रत्यभिज्ञाशास्त्र है।

एवमेशां श्यम्बकाख्या तेरम्बा देशभाषया।
स्थिता शिष्यप्रशिष्याद्यैर्विस्तीर्णा मठिकोदिता स्त्र

आचार्य उत्पलदेव के पश्चात् अभिनवगुप्त क्षेमराज, वरदराज, महेशनन्द, स्वतन्त्रनाथ, पुण्यानन्द, चक्रपाणिनाथ इस परम्परा में आते हैं। इन्होंने ग्रंथों की रचना कर शैव दर्शन की परम्परा को आगे बढ़ाया। पुण्यानन्द और चक्रपाणिनाथ के ग्रन्थों को छोड़कर सभी की रचना कश्मीर की रम्य घाटी में हुई है और आज काश्मीर विद्वानों के ग्रन्थ इस दर्शन को जीवित रखे हुए हैं जो साधकों का मार्गदर्शन करते हैं।

संदर्भ

1. तंत्रलोक
2. विज्ञानभैरवविकृति
3. शिवदृष्टिवृत्ति
4. कश्मीर शैवदर्शन और कामायनी
5. भारतीय दर्शन
6. तंत्रसार

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मत्स्यपुराणाधारित भारत का भौगोलिक इतिहास

डॉ० प्रीति पाण्डे*

कथंससंर्जभगवान् लोकनाथश्चाराचरम्।
कस्माच्च भगवान्विष्णुमत्स्यरूपत्वमाश्रितः॥[1]

अर्थात् लोकों के स्वामी भगवान् ने इस चराचर सम्पूर्ण सृष्टि का किस प्रकार सृजन किया था और किस कारण से भगवान विष्णु ने मत्स्य का स्वरूप धारण किया था। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों की श्रेणी में उत्कृष्ट पुराण संहिताऐं मूलतः धर्मकथाओं, ऋषियों, नृपों की वंशावली, पूजा, व्रत तथा तीर्थों का वर्णन ही नहीं है वरन् पुराणों में औषधि विज्ञान, साहित्य और कला सम्बन्धी विवेचन, गृह निर्माण, शास्त्र, साहित्य, संगीत, रत्नविज्ञान, ज्योतिषविज्ञान, स्वप्न विचार आदि विविध विषयों की पर्याप्त चर्चा की गई है। मूलतः इसमें आध्यात्मिक, अधिदैविक, अधिभौतिक सभी विद्याओं का विशद वर्णन है। पार्जिटर ने पुराणों के ऐतिहासिक महत्व की ओर सर्वप्रथम ध्यान आकृष्ट कराया।[2] वहीं अमरकोश में पुराणों के पाँच लक्षण बताये हैं -

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वान्तराणि च।
वंशानुचरितश्चैनं पुराणं पंचलक्षणम्॥

अर्थात् (1) सर्ग अर्थात् जगत् की सृष्टि, (2) प्रतिसर्ग अर्थात् प्रलय के बाद जगत की पुनः सृष्टि, (3) वंश अर्थात् ऋषियों तथा देवताओं की वंशावली, (4) मन्वन्तर अर्थात् महायुग और (5) वंशानुचरित अर्थात् प्राचीन राजकुलों का इतिहास।

---

* शोध अध्येता, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पुराणों में ऐसा कोई ज्ञान-विज्ञान नहीं है अथवा मन-मस्तिष्क की कल्पना नहीं है तथा लोक जीवन का ऐसा कोई अंग नहीं है जिसका निरूपण पुराणों में न हुआ हो। सरल दृष्टान्तों के द्वारा कठिन से कठिन तथ्य भी पुराणों में समझाये गये हैं।

इन्हीं विभिन्न विषयों में से एक है भारत के भौगोलिक इतिहास का निरूपण करना। विशेष रूप से मत्स्य पुराण में इसे विशद रूप से विवेचित किया गया है। मत्स्य पुराण को सभी पुराणों में सर्वाधिक प्राचीन एवं प्रामाणिक माना गया है।[3] इस दृष्टि से इसमें दिया हुआ भौगोलिक इतिहास भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण एवं लगभग तीसरी-चौथी शताब्दी का माना जा सकता है। मत्स्य पुराण में विवेचित भारत के भौगोलिक इतिहास को ''भारतवर्ष वर्णन'' नामक अध्याय में लिपिबद्ध किया गया है।

यदिदं भारतवर्ष यस्मिन् स्वायम्भुवादयः।
चतुर्दशंव मनवः प्रजासर्ग ससर्जिरे ॥

अर्थात् जो यह भारतवर्ष है जिसमें स्वायम्भुव आदि मुनिगण अर्थात् चौदह मनु हुये हैं जिन्होंने प्रजाओं के सर्ग की रचना की है।

भारतवर्ष वर्णन नामक इस अध्याय में स्पष्ट किया है कि भरण एवं प्रजनन कर सकने में समर्थ होने के कारण ही मनु के वंशज भरत के नाम पर इसे भारत कहा गया है। निरूक्त वचनों के द्वारा ही यह वर्ष भारत कहा गया है क्योंकि यहाँ स्वर्ग-मोक्ष और माध्यम कहा गया है। इसमें भारत वर्ष के भौगोलिक इतिहास को स्पष्ट करने हेतु भारत की बाह्य सीमाओं का वर्णन कर उसके स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। वहीं पर्वत, नदियों एवं जनपदों तथा उनमें राज्य करने वाली प्रमुख जातियों का क्रमवार वर्णन किया गया जिससे तत्कालीन भारत के भौगोलिक इतिहास को भलीभांति समझा जा सकता है।

भारतवर्ष की बाह्यसीमाओं के वर्णन में उसे विश्व के नौ द्वीपों - इन्द्रद्वीप, केसर, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौभ्य, गन्धर्व, वारूण में से एक कहा गया है जो सागर से संवर्तित है। दक्षिण से उत्तर तक यह एक सहस्त्र योजन तक विस्तारित है। कन्याकुमारी से गंगा तक इसका प्रसार है। यह द्वीप उपनिविष्ठ है एवं सभी सीमाओं पर म्लेच्छों से घिरा हुआ है।[4] यवन एवं किरात जाति उसके क्रमशः पश्चिम एवं पूर्व में पाई जाती है। ऐसा माना गया है कि यह तीनों लोकों में सुप्रसिद्ध है अर्थात् इस पर राज्य करना तीनों लोकों में कीर्तिकारी होता है एवं जो इसे जीत लेता है उसे सम्राट कहा जाता है।

इस महान भारतवर्ष में पर्वतों की संख्या इस पुराण में सात बताई गई है। इन

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सातों के नाम हैं - महेन्द्र, मलय, सह्य, शक्तिमान, ऋक्षवान्, विन्ध्य, परियाल ये सात कहे गये हैं। इनके समीप कई उपपर्वत भी हैं तथा इस परिक्षेत्र में अन्य कई विचित्र शिखर वाले पर्वत भी पाये गये हैं। इन पर्वतों के आसपास कई आर्य और म्लेच्छ शासित जनपद भी पाये जाते हैं।[5]

मत्स्यपुराण में उल्लेखित भारत के भौगोलिक इतिहास में सर्वाधिक वर्णन नदियों और उसकी सहायक नदियों का किया गया है। इसमें उल्लेखित प्रमुख नदियों में गंगा, सिन्धु एवं सरस्वती का है जबकि हिमालय के पार्श्व से उत्पन्न नदियों में शतद्रु, चन्द्रभागा, यमुना, सरयू, ऐरावती, वितस्ता, विशाला, देविका, कुहू, गोमती, घौतपापा, वाहुदा, दृषद्वती, कौशिका, तृतीया, निश्चला, गण्डकी, इश्रुमौलोहित हैं।[6]

परियात्र पर्वत के आश्रय में रहने वाली मध्य क्षेत्र की नदियों का नाम स्मरण करते हुये पुराणकार कहते हैं - वेदस्मृति, वेत्रवती, वृत्रध्वी, वेणुमती, शिप्रा, अवन्ती, कुन्ती हैं।

ऋष्युवान पर्वत से उत्पन्न नदियाँ हैं - मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, तमसा, पिपली, श्येनी, चित्रोत्पला, विमला, चंचलता, धूत, वाहिनी, शुक्तिमन्ती, शुनी, लज्जा, मुकुटा, ह्रदिका है। इनके जल को अत्यन्त अमल एवं शुभ कहा गया है।

विन्ध्यपर्वत श्रेणी से उत्पन्न नदियों में तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, क्षिप्रा, ऋषिभा, वेणा, वैतरिणी, विश्वमाला, कुमुद्वती, तोया, महदगौरी, दुर्गमा, शिला का नाम उल्लेखित हैं। ये सभी नदियाँ शीतल और शुभ जल वाली कही गई हैं।

सह्याद्रि पर्वत के चरणों से उत्पन्न नदियों में गोदावरी, भीमरथी, कृष्णवेणी, वम्जुला, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा, वाह्या कावेरी है। ये सभी नदियाँ दक्षिणापथ गामी हैं।

मलय पर्वत से उत्पन्न नदियों में कृतमाला, ताम्रपर्णी, पुष्पजा, उत्पलावती हैं, ये सभी शीतल और परम शुभ जल वाली हैं।

महेन्द्रगिरि पर्वत से उत्पन्न नदियों में त्रिभागा, ऋषि, कुल्या, इक्षुदा, त्रिदिचला, ताम्रपर्णी, मूली, शरबा, विमला हैं। ये सभी शुभ गमन करने वाली हैं।

शुक्तिमन्त पर्वत से उत्पन्न होने वाली काशिका, सुकुमारी, मन्दगा मन्द वाहिनी, कृपा-पाशिनी नदियाँ हैं। इन्हें विश्व की मातायें मानी गई हैं तथा ये पाप का हरण करने वाली परम शुभ हैं।

इन सभी नदियों की सैकड़ों नदियाँ एवं सहस्त्रों उपनदियाँ हैं।

मत्स्यपुराण में कई जनपदों का भी विवरण है। मध्यदेश में पाये गये जनपदों में

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कुरू, पांचाल, शाल्व, सजाङ्गल, शूरसेन, भद्रकार, वाह्य, सहयरच्चर, मत्स्य, किरात, कुत्य, कुन्तल, काशिकोंशल, अवन्त, कलिंग, भूक, अन्धाक आदि पाये गये हैं।[7] ये सभी जनपद सह्यादि पर्वत एवं गोदावरी तट के पास अवस्थित है। भारद्वाज मुनि द्वारा यह क्षेत्र तपस्यित है।

उत्तर दिशा में स्थित जनपदों का विवरण देते हुये पुराणकार कहता है कि वाहलीक, वाटधान, आभीर, कालतोयक, प्ररन्ध्र, शून्द्र, पल्लव, आत्तरखण्डिक, गान्धार, यवन, सिन्धुसौवरी, मद्रक, शक, द्रूह्य, पुलिन्द, पारदा, हारमूर्तिक, रामट कण्टकार, कैकय दशनागक क्षत्रियों के उपनिवेश योग्य हैं। अत्रि-भारद्वाज, प्रस्थल, सहसेरक, लम्पक, तलगान और जांगलों के साथ सैनिक ये सब उदीच्य (उत्तर दिशा) में होने वाले है।

पूर्व के जनपदों का वर्णन करते हुये पुराणकार जिन जनपदों का विवरण देता है वे हैं - अग्र, वङ्ग, मद्गुरक, अन्तर्गिरि, गुह्योत्तर, अविजय, मार्गवगेय, मालव, प्राग्ज्योतिष, पुण्ड्र, विदेह, ताम्रलिप्तक, शाल्व, मागघा, गोनर्द आदि -

दक्षिण में स्थित जनपदों के विवरण में पाण्ड्य, केरल, चोल, कुल्य, सेतुक, सूतिक और कुपथावाजि, नासिक आदि हैं। कारुष, सहैषीक, आटव्य, शवर, पुलिन्द, विन्ध्य, विदर्भ, दण्डकरूपस, तापस सभी दक्षिण स्थित जनपद हैं।

नर्मदा के अन्तर में स्थित जनपदों में भारूकच्छ, समाहेय, सारस्वत, काच्छीक, सौराष्ट्र, आनर्त, अर्बुद है। इसी प्रकार विन्ध्यवासी जनपदों में मालव, करूष, मेकल, उत्कल, औण्ड्र, माघ, दशार्ण, भोज, किष्किन्धक, स्तोशल, कोसल, त्रैपुर, वेदिश, तुमुर, तुम्बुर, पद्गम-नैषध, अरूप, शौण्डिकेर, वीतिहोत्र भवन्ति आदि हैं।

कुछ आदिवासियों के नामों के भी विवरण मिले हैं जो कि निराहार, सर्वत्र, कुपथ और बुरे मार्ग वाले हैं इन्हें ऊर्णादर्व, समुद्रक, त्रिगर्त, मण्डल, किरात और चामर कहा गया है।[8]

इस प्रकार हम पाते हैं कि मत्स्यपुराण के भारतवर्ष वर्णन नामक अध्याय में भारत की भौगोलिक आकृति उसकी सीमाऐं, प्रमुख पर्वत, नदियाँ एवं उनमें तत्कालीन जनपदों का विवरण प्रस्तुत किया है। इन तथ्यों से जहाँ हमें यह पता चलता है कि उस काल में भारत के सीमा पर स्थित जातियाँ जिन्हें म्लेच्छ कहा गया है वे जहाँ भारतीयों से सांस्कृतिक रूप से निकृष्ट थी वहीं उनसे आक्रमण का भय बना रहता था। वहीं विभिन्न पर्वतों एवं नदियों या केवल भौगोलिक विवरण ही नहीं दिया गया है वरन् पर्वतों

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

के आश्रय में बसने वाले जनपद एवं नदियों से सिंचित जनपदों का भी पता इस अध्याय से चलता है। साथ ही इन जनपदों के नाम एवं उनमें निवासित प्रमुख सामाजिक वर्गों का विवरण भी इस अध्याय में उपलब्ध कराया गया है। निश्चित रूप से मत्स्यपुराणाधारित भारत का भौगोलिक इतिहास का सटीक एवं प्रामाणिक विवरण मत्स्यपुराण में उपलब्ध है जो कि एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक साक्ष्य है।

संदर्भ

1. मत्स्यपुराण; I 8
2. पार्जिटर; (1) एन्शिऐन्ट इण्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडिशन्स एवं (2) डायनेस्टीज ऑफ द कलिएज।
3. के.सी. श्रीवास्तव; प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति; पृ.सं. 8
4. मत्स्यपुराण; 50; 11
5. पूर्ववत्; 50; 19
6. पूर्ववत्; 50; 22
7. पूर्ववत्; 50; 30-36
8. पूर्ववत्; 50; 57

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भारतीय नैतिक सिद्धान्त के स्रोत : वेद और पुराण

डॉ० पूजा व्यास*

मेरी अपनी यह विनम्र मान्यता है कि भारत के प्रमुख नैतिक सिद्धान्तों का विवरण निम्नानुसार दिया जा सकता है; 'ऋत्', 'धर्म', 'कर्म', 'वर्ण', 'आश्रम', 'पुरूषार्थ', 'ईश्वर', 'सृष्टि' और 'सत्कर्म' तथा 'दुष्कर्म' का विश्लेषण और जीवन का लक्ष्य एवम् उसकी प्राप्ति हेतु निर्दिष्ट नैतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक साधना का सांगो-पांग विवेचन इत्यादि।

स्पष्ट है कि भारतीय नैतिक-दर्शन के विश्व मान्य विद्वानों ने वास्तव में जो सिद्धान्त प्रस्तुत किए हैं, वे न केवल शाश्वत व सर्वकालिक हैं, बल्कि आज के भौतिक युग में भी वे बहुत अधिक उपयोगी है और उन्हें जीवन में पूर्णतः क्रियान्वित करके समकालीन मानव सर्वांगीण विकास का लक्ष्य प्राप्त कर सकता है। अब मैं उपर्युक्त पृष्ठभूमि में भारतीय नैतिक सिद्धान्त के स्रोत, वेद और पुराण पर विस्तार से प्रकाश डालूँगी।

वेद हमारी संस्कृति के प्राचीनतम् ग्रंथ हैं, सारी भारतीय संस्कृति यहीं से प्रस्फुटित होती है। आगम और निगम का भेद होते हुए भी दोनों में परस्पर आदान-प्रदान एवम् समन्वय रहा है, लेकिन दोनों का सार एक ही है। हमारी अनादि और अनन्त सृष्टि की रचना रहस्यमयी शक्ति करती है। प्रातः स्मरणीय ऋषियों, मुनियों एवम् महान् दार्शनिकों के अनुसार वह स्रष्टा मन और बुद्धि से परे न केवल अवर्णनीय वरन् अचिन्तनीय भी हैं। वेद से लेकर आज तक के महान् वैज्ञानिकों ने उस निरपेक्ष

* अतिथि विद्वान, दर्शनशास्त्र अध्ययनशाला, वि.वि., उज्जैन (म.प्र.)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सत्ता को 'नेति नेति' कह कर उसका गुण-गान करने का प्रयास किया है। ऋग्वेद के 'नारदीय सूक्त' की अन्तिम पंक्तियों में यहाँ तक कहा गया है, ''सर्वोच्च आत्मा जो स्वर्ग में निवास करती हो, वह जानता हो भी कि यह सृष्टि कहाँ से उद्भूत हुई या शायद वह न भी जानता होगा।'' इसी प्रकार, आधुनिक महान् वैज्ञानिक अलबर्ट आइंस्टीन का कथन है, ''सर्वोच्च सुन्दर तथ्य जिसका हम अनुभव कर सकते हैं, वह रहस्यमयता है। यही समस्त सच्ची कला व विज्ञान का स्रोत है। यह जानना कि जो हमारे लिए अचिन्तनीय है, वास्तव में सत्ता में है और जो सर्वोच्च प्रज्ञान और अत्यधिक ओजस्वी सौन्दर्य के रूप में स्वयम् को अभिव्यक्त कर रहा है, जिन्हें हमारी धूमिल क्षमताएँ मात्र उनके निम्न या तुच्छ रूपों में ही जान सकती है - यह ज्ञान, यह भावना सच्ची धार्मिकता के केन्द्र में विद्यमान होती है।''

स्रष्टा को मानव पूर्ण रूप से जानने में असमर्थ है, लेकिन सृष्टि के स्वरूप से उसका अनुमान लगाया गया है, क्योंकि कार्य से कारण का आभास या अनुमान हो जाता है। हमारी सृष्टि असंख्य विरोधी जोड़ों (भावों व वस्तुओं) से निर्मित है। इसमें सन्त, सुधी, शशि, धेनु, खल, विष, वारूणी सभी हैं। इसी प्रकार, पाप, पुण्य, सुख, दुःख, सज्जनता, दुर्बलता आदि है। फिर भी, शुभ वरणीय है व अशुभ त्याज्य माना गया है। वैदिक प्रार्थना में इसीलिए ''असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्माअमृतमूगमय्'' आदि है, क्योंकि मनुष्य मूलतः शुभ का धारक है, जैसे सद्गुणों के प्रति ललक है, अतः वेद के ऋषि ने ''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्'' की चाहत की। यदि 'सद्' वरणीय न होता, तो ईश्वर को शुभ या प्रेम का नाम न दिया जाता। वेदान्त के अनुसार 'सत्वगुण अभिमानी मायोपहित ब्रह्म ईश्वर' अर्थात् सत्गुण से पूर्ण व माया शक्ति से विभूषित ब्रह्म ही ईश्वर कहलाता है। प्लेटो ने परम तत्त्व ईश्वर को शुभ नाम दिया। भारतीय ऋषियों ने उसे 'सत्', 'शिव' और 'सुन्दर' कहा। वैसे भी 'सद्' के कारण 'असद्' है। प्रकाश के कारण अन्धकार है। प्रकाश की ही सत्ता है, अन्धकार उसका एकान्तिक स्वरूप है। धनात्मक शक्ति के बाद ऋणात्मक शक्ति है। सकारात्मक के बाद ही नकारात्मक होता है। कुछ होता है, तभी उसका विरोध होता है, आदि। मानव-जाति का प्राचीन और अर्वाचीन चिन्तन सद् की प्राथमिकता स्वीकार करता है।

फिर भी वर्तमान में असद् हावी है। ऐसा नहीं है कि असद् या अशुभ कभी था ही नहीं, सद्ग्रन्थों में दोनों का वर्णन हैं। 'रामचरितमानस' में भी सस्वर सुकोमल, मन्जु दोष रहित दूषण सहित तत्त्व है। देवासुर संग्राम सर्वत्र है। अशुभ के बिना शुभ मूल्यहीन है। सृष्टि में दोनों परम आवश्यक है, परन्तु सन्तुलन जरुरी है। कपड़े की बुनावट में

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ताना-बाना दोनों का ही सन्तुलन है। 'गीता व रामचरितमानस' में भी ईश्वर का अवतरण धर्म के ह्रास और अधर्म के अभ्युत्थान पर ही होता है। अतः वर्तमान में सद्गुणों की स्थिति को देखते हुए 'गीता व रामचरितमानस' के परिप्रेक्ष्य में यह देखना है कि सद्गुण क्या है, कितने हैं, स्रोत क्या है, कैसे अभ्युत्थान व पतन होता है, इसमें वातावरण व समाज की भूमिका। 'रामचरितमानस' के श्रीराम अत्यन्त संस्कृत और आज्ञाकारी है। 'गीता' का अर्जुन भी वैसा ही है। दुर्योधन व रावण अंहकार के प्रतीक है। शुभ संकल्प ही विजयी होता है, जब वह शक्तिशाली हों, अतः सद्गुणों की वरणीयता के सन्दर्भ में तमाम पक्षों का अध्ययन आवश्यक है।

पुराण

भारतीय वाङ्मय में इतिहास और पुराणों का अपना एक विशिष्ट स्थान है। वेद, स्मृति और सदाचार ये तीन भारतीय साहित्य में आप्त प्रमाण माने जाते हैं। पुराणों का समावेश सदाचार में होता है। भारतीयता को अपने समग्र एवम् समन्वित रूप में समझने के लिए पुराणों का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

वेद में जिन आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक, बौद्धिक, व्यावहारिक, नैतिक, सांस्कृतिक, देव, मानुष, आसुर, जड़, चेतन आदि विषयों का सूक्ष्म रूप से विधान है और ब्राह्मण, आरण्यक एवम् स्मृति ग्रन्थों में जिनका प्रतिपादन है, उन सब प्रकार के विषयों का पुराणों में आकर्षक, बुद्धिगम्य, मनोग्राह्य तथा उपदेशप्रद कथानक के रूप में वर्णन है। पुराणों में केवल आचार, व्यवहार एवम् दैनिक क्रियामात्र का ही नहीं, किन्तु मनुष्यों की जीवनोपयोगी विविध भावनाओं का भी पूर्ण विवेचन है।

भारतीय पुराण नैतिक विकास से सम्बन्धित उच्चतम् आदर्शो के श्रेष्ठ आध्यात्मिक एवम् जागतिक इतिहास है। कुल 18 पुराणों में सबसे अधिक प्रचलित व प्रमुख पुराण श्रीमद्भागवत का नीतिगत रूप से विवेचन करेंगे।

'श्रीमद्भागवत पुराण'

संस्कृत वाङ्मय में श्रीमद्भागवत महापुराण का अपना विशिष्ट महत्त्व है व भक्तिशास्त्र का तो यह सर्वस्व है। भक्ति प्रधान ग्रन्थ होने पर भी इस महापुराण में पग-पग पर मानव को दिशा-निर्देश करने वाले नीति-तत्त्व इतनी विपुल संख्या में विद्यमान हैं, जिनकी गणना कठिन है। श्रीमद्भागवत का मन्थन करने पर हम इसके नीति वचनों को पाँच भागों में वर्गीकृत कर सकते हैं -

1. आस्तिक्य भाव - प्रधान।
2. भक्तिभाव - प्रधान।
3. सामान्य धर्म - प्रधान।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

4. विशेष धर्म - प्रधान।

5. विश्व धर्म - प्रधान।

इनमें पांचों प्रकारों में हमारे मतानुसार, पहला, तीसरा, चौथा और पाँचवा प्रकार ये सबसे महत्त्वपूर्ण है।

आस्तिक्यभाव - प्रधान नीति तत्त्व प्रारम्भ से लेकर अन्त तक इसमें विद्यमान है। मनुष्य को यह विचारकर हृदय से सब प्राणियों को नमन करना चाहिए, कि भगवान् ही जीव-रूप में सब प्राणियों में प्रवेश किए बैठे हैं। वृत्तासुर विजय से भी अधिक मृत्यु को प्रशस्त मानकर देवराज इन्द्र से कहता है -

सत्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः।
तत्र साक्षिणमात्मानं यो वेद न स बध्यते ।।[1]

हे इन्द्र! सत्व, रज और तम - ये गुण प्रकृति के हैं, आत्मा के नहीं। आत्मा तो इन गुणों का साक्षी है। इस तथ्य को जानने वाला जीव गुणों से नहीं बँधता। भगवान् विष्णु आकाशवाणी के माध्यम से हिरण्यकशिपु के भय से देवों को मुक्त करते हुए कहते हैं - जो व्यक्ति देवताओं, वेद, गौओं, ब्राह्मणों, साधुओं, धर्म-कार्यो तथा मुझसे द्वेष करने लगता है, उसका शीघ्र ही विनाश हो जाता है।

यदा देवेषु वेदेषु गोषु विप्रेषु साधुषु ।
धार्मे मयि च विद्वेषः स वा आशु विनश्यति।।[2]

इसी प्रकार, हम इसका अध्ययन करने पर पाते हैं कि क्रमशः हमें भक्ति, सामान्य धर्म, विशेष धर्म, विश्व धर्म प्रधान आदि नीति वचन दिखाई देते हैं। धर्म पालन का उपदेश देते हुए सूतजी ऋषियों को बताते हैं कि -

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थोयोपकल्पते्।
नार्थस्य धर्मेकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः।।
कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावत।
जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः।।[3]

अर्थात् धर्म पालन का उद्देश्य मोक्ष-प्राप्ति है, अर्थ-प्राप्ति नहीं। अर्थोपार्जन का लक्ष्य धर्मसाधन है, कामपूर्ति नहीं। कामपूर्ति का लक्ष्य जीवनयापन है, इन्द्रियतृप्ति नहीं। जीवन का लक्ष्य तत्त्व ज्ञान है, स्वार्थपूर्ति नहीं।

ये नियम सबके लिए समान हैं। देवर्षि नारदजी का कथन है - विषय चिन्तन करने वाले के पास धन न होने पर सांसारिक राग समाप्त नहीं होता। जैसे स्वप्न में अप्रिय प्रसंग देखने को मिलते हैं, वैसे ही काल्पनिक संसार धन न होने पर भी बना रहता है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निव र्तते।

ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा।।[4]

श्रीमद्भागवत में प्रतिपादित नीति-तत्त्व -

संस्कृत वाङमय में महापुराण का अपना विशिष्ट महत्त्व है भक्ति प्रधान ग्रन्थ होने पर भी इस महापुराण में पग-पग पर मानव को दिशानिर्देश करने वाले नीतितत्व इतने विशाल हैं कि जिनकी गणना असंभव नहीं तो, कठिन अवश्य है।

प्रगाढ़ भक्ति प्रवण प्राणियों के विषय में तो कहना ही क्या, इसे श्रवण करने से ही भाग्यशाली पुण्यात्मा में भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं विराजते हैं।

''सद्यो हृयवरूध्यतेऽत्र कृतिमिः शुश्चूषुमिस्तक्षणात्''।।[5]

सामान्य धर्म प्रधान नीति वचन

इनमें उन नैतिक वाक्यों का संग्रह है, जो कि जाति वर्ण, वर्ग से सम्बन्ध न होकर जन सामान्य का मार्गदर्शन करने वाले हैं उदाहरण के लिए सूत जी ऋषियों को बताते हैं कि धर्म पालन का उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति है, अर्थप्राप्ति नहीं। अर्थोपार्जन का लक्ष्य धर्म साधन है, कामपूर्ति नहीं। कामपूर्ति का लक्ष्य जीवनयापन है, इन्द्रिय तृप्ति नहीं। जीवन का लक्ष्य तत्त्व ज्ञान है, स्वार्थपूर्ति नहीं - यह नियम सबके लिए समान है -

''धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थोयोपकल्पते।

नार्थस्य धर्मेकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः।।

कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावत।

जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मेभिः।।''[6]

विशेष धर्म प्रधान नीति वचन

विशेष धर्म विषयक नीति के अन्तर्गत मनुष्य मात्र के लिए वर्ण व्यवस्था के आधार पर ब्राह्मण के लिए, राजा के लिए, स्वाभिमान सम्पन्न व्यक्ति के लिए, पिता के लिए, पुत्र के लिए, पतिव्रता के लिए, स्वामी के लिए, सेवक के लिए, यति के लिए तथा विभिन्न सम्बन्धों से सम्बद्ध प्राणी के लिए नीति सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं।

वर्णव्यवस्था और ब्राह्मण

वर्णव्यवस्था की प्रतिष्ठा को स्वीकार करने वाले भागवतकार की दृष्टि में ब्राह्मण सारे समाज का मार्गदर्शन है, उसके लिए शूद्र वृत्ति कदापि ग्राह्य नहीं हैं। भगवान् श्रीनारद कहते हैं - ''सर्वदैवमयो नृपः[7]

इसी प्रकार, शम्, दप, तप, शौच, सन्तोष, दया, सरलता, ज्ञान भगवत्परायणता और सत्य ब्राह्मण के लक्षण है। इस प्रकार ब्राह्मण के जीवन में सब प्रकार के सात्विक भावों का समावेश किया गया है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

वर्ण-व्यवस्था और राजा

ब्राह्मण के पश्चात् प्रजा की सुख समृद्धि और उसकी सुरक्षा का दायित्व क्षत्रिय अथवा राजा का है। वस्तुतः राजा राष्ट्र का रक्षक होता है, तभी तो राजा 'परीक्षित' धर्मराज्य युधिष्ठिर से कहते हैं। जिस राजा के राज्य में साधु, प्रजा, असाधुजनों से पीड़ित होती है, उस प्रमादी राजा की राज्य कीर्ति, ऐश्वर्य, आयु तथा सद्गति नष्ट हो जाती है।

''यस्य राष्ट्रे प्रजाः सर्वास्त्रस्यन्ते साधव्यसाधुभिः।
तस्य मतस्य नश्यन्ति कीर्तिरायुर्भगो गतिः॥''[8]

विश्व धर्म प्रधान नीति-तत्त्व

विश्वात्मा परमेश्वर की उपासना का सन्देश देने वाले श्रीमद्भागवत् में विश्व धर्म विषयक नीति वचनों का होना आवश्यक है।

''सर्व पुरूष एवेंद भूतं भव्यं भवच्च यत्।
तेनेदमावृतं विश्चं विर्तिस्मिधितिष्ठति॥''[9]

इस श्लोक में संपूर्ण विश्व को उसी परम् पुरुष से आवृत्त बताया गया है। दैत्यराज प्रहलाद भी यही कामना करते हैं कि विश्व का कल्याण हो, दूषित मनोवृत्ति वाले भी प्रसन्न रहे, प्राणी परस्पर मंगल भाव का चिन्तन करें। मन-परमेश्वर की कामना करता रहे और हमारी बुद्धि परमेश्वर में लगी रहे।[10] विश्व कल्याण की कामना करने वाले को पुण्यभूमि और मोक्षमार्ग भूमि भारत की विशिष्टता का हमेशा ध्यान बना रहता है,

अहो भुवः सप्तसमुद्रवत्या द्वीपेषु वर्षेष्वधिपुण्यमेत्।
गायन्ति यत्रत्यजना मुरारेः कर्माणि भद्राण्यवताखन्ति ॥[11]

अर्थात् इस सप्त द्वीपा धात्री के सभी द्वीपों के सभी वर्षो में यह भारत वर्ष बहुत ही पुण्यशाली है, जहाँ के निवासी भगवान् के अवतारी चरित्र कर्मो का गान करते रहते हैं। इतना ही नहीं देवता लोग तो आश्चर्य करते हैं, कि इन प्राणियों ने कुछ शुभ कर्म किए हैं, जो इन्हें भारतवर्ष में जन्म लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। हमारी भी उत्कट् अभिलाषा है कि हम भी भारतवर्ष में जन्म लेने का सौभाग्य प्राप्त करें।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि आज के भोग प्रधान समय में श्रीमद्भागवत के नीति वचनों की महती उपादेयता है, हमारा अपना निजी मत यह है कि महामुनि वेद व्यास जी के श्रीमद्भागवत महापुराण के माध्यम से जीवन के हर एक क्षेत्र में विकास कर सकते हैं और कलयुग में सतयुग का सृजन कर सकते हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सन्दर्भ

1. देखिए, श्रीमद्भागवत् पुराण, 6/12/15।
2. देखिए, श्रीमद्भागवत् पुराण, 7/4/27।
3. देखिए, श्रीमद्भागवत् पुराण, 1/2/9-10।
4. देखिए, श्रीमद्भागवत् पुराण, 4/29/73।
5. देखिए, श्रीमद्भागवत् पुराण, 1/1/2।
6. देखिए, श्रीमद्भागवत् पुराण, 1/2/9-10।
7. देखिए, श्रीमद्भागवत् पुराण, 7/11/20।
8. देखिए, श्रीमद्भागवत् पुराण, 1/17/10।
9. देखिए, श्रीमद्भागवत् पुराण, 2/6/15।
10. देखिए, श्रीमद्भागवत् पुराण, 5/18-9।
11. देखिए, श्रीमद्भागवत् पुराण, 5/6/13।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पुराणों का ऐतिहासिक महत्व

डॉ० एम.एस.डोंगरे*

भारतवर्ष में अध्ययन में विषयों में वेद, वेदांग आदि शास्त्रों के साथ इतिहास विद्या एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है, इतिहास के साथ पुराण भी मुख्य अध्ययन विषय था। छान्दोग्य उपनिषद में नारद ने सनतकुमार को अपने अधीत विषयों में इतिहास पुराण को भी सम्मिलित किया है, यथा

"ऋग्वेद भगवोऽध्योमि, यजुर्वेद सामवेदमाधर्वणमितिहासपुराण पञ्चमम् वेदानां वेदं कहा गया है।"

भारत में वैदिक काल से इतिहास विद्या का पठन पाठन हो रहा है। विदेशी इतिहास लेखकों ने अज्ञानता वश लिखा था कि भारत में इतिहास बोध नहीं था। वस्तुतः भारत में पश्चिम के समान केवल राजाओं का इतिहास नहीं पढ़ा जाता था बल्कि सम्पूर्ण लोकजीवन को इतिहास में समाहित समझा जाता था। यहाँ गुरू शिष्य की परम्परा का इतिहास भी पचासों पीढ़ियों तक स्मरण रखा जाता था। अतः भारत में तात्विक रूप में इतिहास बोध था।

इतिहास किसी भी देश और समाज की बीती हुई घटनाओं का विभिन्न साक्ष्यों पर आधारित विवरण होता है। इस दृष्टि से पुराणों का भारत के प्राचीन इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है।

पुराण प्राचीन भारतीय इतिहास और यहाँ के प्राचीन राजनीतिक, सांस्कृतिक, अध्यात्मिक, वैभव का चित्रांकन है इसी महत्व के कारण आज भी पुराणों को देश के

---

* सहायक प्राध्यापक, इतिहास, शासकीय महाविद्यालय, सनावद

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सभी भागों में अध्ययन की विशेष परम्परा है। भले ही पुराणों को पाठ्यक्रम में न रखा हो लेकिन आम भारतीय जन मानस में इनके अध्ययन की गहन रूचि बनी हुई है।

इसके साथ ही प्राचीन भारत के राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक इतिहास को प्रकट करने में पुराणों की उल्लेखनीय भूमिका रही है। पुराणों की संख्या 18 है यदि पुराणों को प्राचीन भारत के संदर्भ में विश्वकोश, कहा जाये तो तर्कसंगत होगा। पुराणों में राजवंशों एवं उनकी सभ्यता, सांस्कृतिक एवं आक्रमणों का स्पष्ट उल्लेख किया गया। पुराणों में प्रमुखतः पाँच तत्व समाहित है, सृष्टि, प्रतिसर्ग, देववंश, मन्वतर एवं राजवंशों का क्रमिक इतिहास।

पुराण तो विश्व कोश हैं, उनमें अनेक विषय वर्णित है। पुराण का यह लक्षण प्रसिद्ध है

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशों मन्वन्तराणि चं।
वंशानुचरित चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्।।

यह पुराण पञ्लक्षण का श्लोक अनेक पुराणों में उपलब्ध है।

इतिहास पुराण के विषय विस्तार को देखने से प्रतीत होता है कि सभी विषयों का वर्णन इनका लक्ष्य है। केवल राजवंशवृत का वर्णन नहीं है। वस्तुतः पुराण सम्पूर्ण लोकवृत्त का वर्णन ही इतिहास है।

इस वर्णन से स्पष्ट होता है कि पाश्चात्य शिक्षा एवं संस्कृति से ग्रस्त विद्वानों की दृष्टि पुराणों की ऐतिहासिक व्यापक, परिभाषा एवं लक्ष्य के विषय में कितनी अज्ञानता से ग्रस्त है।

इतिहास निर्माण की सामग्री के रूप में पुराणों की उपयोगिता सर्वमान्य है। इनमें भारतीय इतिहास के आदिकाल से गुप्तकाल तक की सामग्री संग्रहित है। शिशुनागवंश, नंद, मौर्य, शुंग, कण्व, आंध्र तथा गुप्त वंशों की वंश सूचियाँ प्राप्त है। जो इतिहास निर्माण के लिये महत्वपूर्ण है।

संदर्भ

1. सृष्टि का इतिहास, लेखक डॉ. दमोदर झा अ.भा.इति. सं. योजना, नई दिल्ली।
2. प्राचीन भारत राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, लेखक डॉ. राधेशरण राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

स्कन्दपुराण में आर्थिक स्थिति का अध्ययन

श्रीमती मंजु यादव*

भारतीय इतिहास में पुराणों का एक महत्वपूर्ण स्थान है। ये पुराण न केवल धार्मिक ग्रन्थ हैं अपितु तत्कालीन भारतीय सांस्कृतिक इतिहास के विविध पहलुओं की भी महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं। जिसमें समकालीन आर्थिक इतिहास का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। इन पुराणों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण जानकारी स्कन्दपुराण में प्राप्त होती है। अपितु प्रस्तुत शोध पत्र में स्कन्दपुराण का आर्थिक जीवन का अध्ययन ही अभिप्रेत है।

किसी भी समाज की तत्कालीन स्थिति के बारे में ज्ञात करना हो तो आर्थिक स्थिति का वर्णन करना ही होता है। स्कन्दपुराण में आर्थिक स्थिति का वर्णन कई प्रकार से किया गया है। सर्वप्रथम चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में अर्थ एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

पुराणों में जो निर्धन होते थे उनका जन्म लेना धिक्कार माना जाता था और जिनके बहुत संतान होती थी, जो ऐश्वर्यविहीन रहता था, उसका जन्म भी व्यर्थ माना जाता था। सुन्दर, गुण, सौम्यता, विद्वता और अच्छे कुल में जन्म लेना भी दरिद्रों को शोभा नहीं देता था और जो ऐश्वर्य से रहित थे उन्हें ब्राह्मण, पुत्र, पौत्र, बन्धु, भाई, शिष्य एवं सभी मनुष्य छोड़ देते थे।[1] स्कन्दपुराण के अनुसार बिना धन के किसी प्रकार की क्रिया कर पाना संभव नहीं होता था और जो क्रिया से हीन रहता था, उसे धर्म की

* शोधार्थी, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व अध्ययनशाला विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्राप्ति नहीं होती थी परन्तु धन का उपार्जन करना क्लेश का कार्य था। स्कन्दपुराण इन त्रिविध धनों को परिभाषित करते हुए कहता है कि वाणिज्य, कृषि आदि से प्राप्त धन शुक्ल, कला, शिल्प आदि के द्वारा प्राप्त धन शबल और जुआ, चोरी, जालसाजी आदि से प्राप्त धन कृष्ण धन होता है।

धर्म का महत्व अभिव्यक्त करते हुए स्कन्दपुराण में कहा गया है कि धन के द्वारा ही मनुष्यों को आपस में परम प्रीति उत्पन्न होती है। धन के द्वारा ही मनुष्य कुलीन और सुन्दर वेश वाला होता है। स्कन्दपुराण के अनुसार बिना धन के किसी प्रकार की क्रिया कर पाना संभव नहीं होता था और जो क्रिया से हीन रहता था, उसे धर्म की प्राप्ति नहीं होती थी परन्तु धन का उपार्जन करना क्लेश कार्य था।[2]

स्कन्दपुराण यह संकेत करता है कि वित्त या स्वर्ग के लिए पुत्र पिता से द्वेष करता था, पिता पुत्र से द्वेष करता था, पत्नी पति की हत्या तक कर डालती थी और पति भी पत्नियों की हत्या कर देते थे।[3] इस प्रकार की स्थिति का उपस्थित हो जाना अत्यन्त भौतिकता को सूचित करता है और पूरा स्कन्दपुराण उस भौतिकता का विरोध करता हुआ प्रतीत होता है परन्तु समाज में सदैव ऐसा होता रहता होगा, यह मानना उचित नहीं लगता है।

अतः पुराणों में अनेक स्थानों पर धन की आवश्यकता का वर्णन भी आया हुआ है। अनेक राजा लोग भी धन को आशाश्वत समझकर उसका पूर्णतया दान कर देते थे।[4]

स्कन्दपुराण में अनेक राजाओं के दान की महिमा वर्णित है। धन या तो भोग के लिए माना जाता था अथवा दान करने के लिए। जो व्यक्ति धन का न भोग करते थे और न ही दान करते थे, उसका धन नाश को प्राप्त होता था।

कन्यादान करते समय लड़की का पिता धन प्रदान करता था। एक समान कुल-शील एवं उम्र वाले को ही धन के साथ-साथ लड़की दी जाती थी। दूसरी ओर समाज में ऐसे भी व्यक्ति थे, जो कन्यादान के समय धन देने की अपेक्षा अपनी कन्या को बेच डालते थे और उससे धन अर्जन करते थे परन्तु इस प्रकार के व्यक्तियों को निदिन्त माना जाता था और उन्हें अश्व-विक्रयी, देव विक्रयी और वेद विक्रयी के समकक्ष समझा जाता था।[5] जिसके घर में कन्या के विवाह के समय देने के लिए धन नहीं होता था उसके लिए बिना धन दिए ही केवल कन्या का नामोच्चारण करके कन्या का विवाह कर देना उचित माना जाता था।

स्कन्दपुराण द्रव्य या वित्त का विभाजन भी करता है। उसके अनुसार तीन प्रकार का धन होता है - शुक्ल, शबल और कृष्ण। शुक्ल कोटि का धन उत्तम, शबल

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कोटि का धन मध्यम एवं कृष्ण कोटि का धन अधम माना गया है। वेद इत्यादि पढ़ाने के कारण शिष्य से प्राप्त धन शुक्ल, दहेज के रूप में प्राप्त, वाणिज्य के द्वारा अर्जित, कृषि के द्वारा उत्पादित व याचित धन शबल और जुआ, चोरी, जालसाजी आदि से प्राप्त धन कृष्ण माना गया है।[6]

स्कन्दपुराण में जीवन-यापन के लिए व्यापार एक महत्वपूर्ण साधन माना गया है। कुछ लोग कृषि कर्म को श्रेष्ठ मानते थे तो दूसरे व्यापार को श्रेष्ठ समझते थे। इस पुराण में नन्दभद्र नामक एक व्यक्ति की चर्चा आई है जो कृषि कर्म को उचित नहीं मानता था, क्योंकि उस कर्म में बैलों के वृषण एवं नासिका का छेदन होता है और वे महान् भार को ढोते हैं और उनका दमन किया जाता हैं।[7] नन्दभद्र कृषि कर्म से अधिक श्रेष्ठ व्यापार को स्वीकार करता है।

वाणिज्य मन्यते श्रेष्ठं जीवनाप तदस्थितः।[8]

स्कन्दपुराण में कई साक्ष्यों से यह स्पष्ट होता है कि उन दिनों व्यापार काफी बढ़ा हुआ था। अन्तर्देशीय व्यापार को स्वदेशज और बर्हिदेशीय व्यापार को परदेशज कहा जाता था।[9] वाणिज्य कार्य जलयानों के द्वारा होता था, इसकी चर्चा स्कन्दपुराण में सर्वत्र आई है। स्थान-स्थान पर अनेक प्रकार के जलयानों का उल्लेख हुआ है। बड़े जहाजों को 'महत्पोत'[10] कहा जाता था। छोटे जहाजों को 'पोत'[11] माना जाता था। कहीं-कही इन्हें जलयान भी कहा गया है।[12]

साझेदारी में भी व्यापार कार्य होता था। स्कन्दपुराण में ऐसे दो मित्रों की चर्चा आई है, जिन्होंने साथ मिलकर व्यापार किया था। उसके अनुसार वैश्य सुकेश के पुत्र सोमशर्मा ने जब देखा कि उसका मित्र सहदेव निर्धनता में अपना जीवन-यापन कर रहा है, तो उसने उसके सामने साथ में व्यापार करने का प्रस्ताव रखा। दोनों ने व्यापार के लिए समुद्र मार्ग से नाव के द्वारा प्रस्थान किया। कुछ दिनों बाद उन्हें बहुत लाभ हुआ तब वे अपने घर की ओर लौट पड़े। नाव स्वर्णों से भरी हुई थी और तब सोमशर्मा निश्चित होकर अपने मित्र सहदेव की गोद में सिर रखकर सोया हुआ था। सहदेव के मन में पाप आया और उसने सोमशर्मा को समुद्र में फेंक दिया और सम्पूर्ण धन का मालिक हो गया।[13]

इस कथा से हमें यह ज्ञात होता है कि साझे में व्यापार होता था और समुद्री मार्ग से व्यापार कार्य होता था।[14] वाणिज्य बहुत श्रेष्ठ जीविका मानी जाती थी परन्तु वाणिज्य से अधिक उत्तम कार्य कृषि को माना जाता था। कृषि के द्वारा जितना वित्त अर्जित किया जा सकता है, उतना अन्य किसी साधन से संभव नहीं था। तेल, शकर, नमक, चीनी एवं विभिन्न धातुओं की चर्चा स्थान-स्थान पर स्कन्दपुराण में आती है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

तेल का उद्योग करने वाले को चक्री और सुरा का उद्योग करने वाले को ध्वजी कहा जाता था। ब्राह्मणों को ईख के खेत का दान करना और अधिक उत्तम माना गया है।[15] इसी प्रकार लकड़ियों का व्यापार, स्वर्ण मूर्तियों का व्यापार, चटाई बनाना,[16] वेणु-पात्र[17] और वंश पात्र बनाना आदि कई गृह-उद्योग के रूप में भी अनेक उद्योग स्थापित थे।

स्कन्दपुराण में यत्र-तत्र बाजारों की भी चर्चा आई है, जिनमें अनेक प्रकार की वस्तुएँ बिकती थी। स्कन्दपुराण के अवन्तीखण्ड में उज्जयिनी के बाजारों का वर्णन आता है जिनमें हमेशा काफी भीड़ लगी रहती थी। बाजारों में फल की बिक्री होती थी और फल-विक्रेता को दुर्भग माना जाता था। अश्व, नमक, माँस आदि खाद्य सामग्री की बिक्री होती थी।

यद्यपि क्रय-विक्रय कठिन माना जाता था परन्तु कुछ वैश्य पत्नियाँ भी क्रय-विक्रय करने में चतुर होती थी।[18] स्कन्दपुराण में मुद्रा की भी कम चर्चा आई है। विनिमय शब्द को पदार्थों के बदले में पदार्थ ही दिये जाते थे। फिर भी कुछ मुद्राओं का उल्लेख मिलता है, जिनमें स्वर्णिक मुद्रा प्रधान थी। स्कन्दपुराण में मुद्रा को निष्क कहा गया है। उसके अनुसार एक राजा ने विष्णु की पूजा करने के बाद हजार निष्क के मूल्य का वस्त्र ब्राह्मण को दिया। एक अन्य मुद्रा - जिसे माष या माषक कहा जाता था यह सोने का बना हुआ होता था।

अतः किसी भी पदार्थ को खरीदने के लिए स्वर्ण या अन्न आदि दिया जाता था। इस तरह विभिन्न प्रकार की मुद्राओं की सहायता से अथवा विनिमय द्वारा क्रय-विक्रय होता था। राजा लोग हमेशा कोश, सैन्य और रिपुदमन की चिन्ता से मुक्त रहते थे।[19] परन्तु इन कार्यों के लिए राजा को वित्त की आवश्यकता होती थी और वह प्रजा पर कर लगाकर वित्त की व्यवस्था करता था। प्रजा का रंजन के लिए राजा के द्वारा कर-ग्रहण करना प्रधान वृत्ति होती थी।[20] राजागण प्रजाओं का कल्याण करने के लिए गुप्त रूप से घूमा करते थे। यदि किसी प्रकार की अव्यवस्था वे देखते थे तो वहीं उसे सुधारने का प्रयत्न करते थे और ऐसा प्रयत्न करते थे जिससे किसी को भी किसी प्रकार की शिकायत ना हो।

अतः कहा जा सकता है कि धर्म की प्राप्ति के लिए भी अर्थ का महत्व था, इस तरह परोक्ष रूप से मोक्ष की प्राप्ति में भी अर्थ महत्वपूर्ण था, क्योंकि धर्म के साधन बनाकर ही मोक्ष की प्राप्ति सुविधा से हो जाती है। रोग से रहित शरीर और संख्या रहित यानी असंख्य धन की महत्ता थी। उसी राजा का शासन उत्तम माना जाता था जिसके राज्य में सभी मनुष्य द्रव्य (धन) से युक्त रहते थे। स्कन्द पुराण के अनुसार अर्थ के द्वारा धर्म की प्राप्ति का उल्लेख प्राप्त होता है परन्तु धन उपार्जन धार्मिक विधि से करना ही उत्तम माना है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

संदर्भ

1. स्कन्दपुराण वैष्णवखण्ड 20 : 10-12.
2. स्कन्दपुराण काशीखण्ड पूर्वार्द्ध 40 : 26.
3. स्कन्दपुराण अवंतिखण्ड 6 : 13-14.
4. स्कन्दपुराण अवंतिखण्ड 69 : 53.
5. स्कन्दपुराण काशीखण्ड उत्तरार्द्ध 82: 43.
6. स्कन्दपुराण नागरखण्ड 274 : 4-8.
7. स्कन्दपुराण नागरखण्ड 158 : 78.
8. स्कन्दपुराण रेवाखण्ड, 98 : 24.
9. स्कन्दपुराण ब्रह्मखण्ड सेतु महात्म्य, 36 : 214.
10. स्कन्दपुराण रेवाखण्ड, 50 : 36-37.
11. स्कन्दपुराण रेवाखण्ड, 50 : 34-35.
12. स्कन्दपुराण काशीखण्ड पूर्वार्द्ध 7 : 6.
13. स्कन्दपुराण महेश्वर कौमारिका खण्ड 4 : 3-8.
14. स्कन्दपुराण प्रभासखण्ड, प्रभाष क्षेत्र महात्म्य, 205 : 20 - 11.
15. स्कन्दपुराण महेश्वर कौमारिका खण्ड 45 : 25 : 26.
16. स्कन्दपुराण महेश्वर कौमारिका खण्ड 45 : 8.
17. स्कन्दपुराण नागरखण्ड 243 : 7.
18. स्कन्दपुराण वैष्णवखण्ड कार्तिकमास महात्म्य, 29 : 2-3.
19. स्कन्दपुराण रेवाखण्ड 3 : 30.
20. स्कन्दपुराण रेवाखण्ड 3 : 34.
21. स्कन्दपुराण का सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ. श्रीमती भगवती प्रसाद

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बौद्धकालीन दार्शनिक संप्रदाय एवं विचारक

डॉ. नमिता आर्या

छठी शताब्दी का युग, भारत में विशेष धार्मिक हलचल का युग था। इस समय, 'पुस्तकीय ज्ञान' को एकमात्र प्रमाण मानने वाले, बुद्धदेवो की उपासना में लीन, कर्मकांडीय यज्ञवाद, रहस्यवादी हिंसात्मक यज्ञ एवं विकृत पौरोहित्य से सम्मिलित 'ब्राह्मण - धर्म' के विरोध में किसी 'प्रबल' धर्म का उद्भव तो होना ही था, और इसका श्रेय 'बौद्ध धर्म' को मिला ।

नास्तिक विचारक – इस समय देश में विभिन्न विचारकों एवं मत-मतान्तरों का बोलबाला था । कई विद्वान जो ब्राह्मण विरोधी धर्म के समर्थक थे, संशयवादी या नास्तिक कहकर अपमानित किए जाते थे। 'विल डूरेन्ट' संगाय' नामक ऋषि के विचारों का उल्लेख करते हैं, कि, 'ऋषि मृत्यु के बाद के जीवन को न तो स्वीकार करते थे और न अस्वीकार करते थे । ज्ञान की क्षमता में उन्हें विश्वास नहीं था, और दर्शन का उद्देश्य, उनकी दृष्टि में शांति प्राप्ति के अलावा कुछ नहीं है।[1]

रामायण के रचयिता ने भी 'जाबालि' के रूप में, एक संशयवादी चरित्र प्रस्तुत किया है। जो, राम के आदर्शों का उपहास करता है... हे राम झूठे आदर्शों और सिद्धान्तों ने आपको भ्रम में डाला है .....मृत्यु के बाद जीवन की आशा व्यर्थ है । इसलिए भविष्य की चिंता छोड़कर आज सुख भोग करो, अपने जीवन को व्यर्थ न गँवाओं ।[2]

इसी प्रकार के एक नास्तिक विचारक[3] 'बृहस्पति' का कथन भी अनैतिक प्रतीत होता है - 'न स्वर्ग है - न मोक्ष, न आस्था है, न दूसरा जन्म - सारा भ्रम उन लोगों ने फैला रखा है, जिसमें न बुद्धि है, न पुरूषार्थ - यह भ्रम ही जिनकी जीविका का साधन

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

है ।

अध्यात्म के साथ, वैदिक कर्मकांडो को नकारते हुए, वैयक्तिक सुख को सर्वोपरि मानने वाले 'चार्वाक्' ऋषि का मत भी उल्लेखनीय है, धर्म और नैतिकता का पालन, एक प्रकार की गलती है, जीवन का एक मात्र उद्देश्य है 'जीना' और सुख ही एक मात्र ज्ञान है' 'अतः ऋणं कृत्वा घृत पिबेत्' ही जीवन का आदर्श है ।

बौद्ध - धर्म के अत्यंत प्रसिद्ध ''ब्रह्मजाल सूत्र'' में तत्कालीन प्रचलित 62 प्रकार के 'वादों' का उल्लेख है कहीं कहीं यह संख्या 63 भी मिलती हैं ।

इन सबका विस्तृत विवरण देना न तो संभव है, और, न ही उपयुक्त रहेगा। अतः कुछ प्रमुख 'वादों' एवं विचारकों का उल्लेख ही पर्याप्त रहेगा ।

तत्कालीन महत्वपूर्ण दार्शनिक संप्रदाय

'महाबोधिजातक' जैसे बौद्ध ग्रंथ में तत्कालीन पाँच दार्शनिक संप्रदायों का उल्लेख इस प्रकार है - 'उच्छेदवादी' - जिनकी दृष्टि में पुनर्जन्म व पुर्नर्लोक के सिद्धांत निरर्थक थे, अहेतुवादी जो संसार या किसी भी वस्तु की उत्पत्ति को पूर्व निर्धारित न मानकर अकारण एवं आकस्मिक मानते थे, पुव्वेकतावादी जो केवल पूर्व जन्म के कर्मभोग में विश्वास करते थे, 'इस्सकारणवादी जो प्रत्येक वस्तु की उत्पत्ति का कारण ईश्वर को मानते थे, एवं 'खग्विज्जावादी' जो चार्वाक् की भांति केवल वैयक्तिक स्वार्थसिद्धि को परम लक्ष्य मानते हुए.........व्यक्तिगत सुख के लिए जन्मदाता की हत्या को भी उपयुक्त मानते थे ।

बुद्ध के समकालीन-महत्वपूर्ण अन्य विचारक - 'महासकुलदायि - सुतन्त' में छह तेत्थिया (तीर्थकों) अर्थात् - बुद्ध के समकालीन 'छह' अन्य विचारकों का इस प्रकार विवरण है ।

1- पूरणकस्स्प (पूर्ण काश्यप) 'सुमंगल विलासिनी के अनुसार ये दासपुत्र थे, स्वामीगृह से भागे मार्ग में चोरों ने उनके कपड़े छीन लिए। एक ग्राम में, नग्नावस्था में प्रविष्ट होकर, इन्होंने स्वयं को 'पूर्ण काश्यप बुद्ध' कहकर परिचय दिया ।

इनके विचार में नैतिक विभेद कुछ नहीं होता एवं 'जीव' स्थिति का दास होता है। नितांत अक्रियवादी विचारक, 'पूरणकस्सप' की दृष्टि में चोरी, डकैती, बेईमानी, हत्या, झूठ, इसमें कुछ पाप नहीं है एवं दान, जप, तप, सत्य, संयमादि में कोई पुण्य नहीं है । इनके विचार में मनुष्य के कार्यों का कोई फल नहीं होता।

2- मक्खलिपुत्र गोसाल - (मस्करी पुत्र गोपाल)- सुमंगल विलासिनी में दूसरा नाम विचारक मस्करी पुत्र गोशाल का मिलता है। पिता का नाम 'मस्करी' एवं जन्मस्थान 'गोशाला' होने के कारण इन्हें यह नाम मिला। प्रारंभ में ये महावीर के ही अनुयायी थे।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पर, बाद में नीति विभेद के कारण इन्होंने पृथक' आजीवक संप्रदाय' की नींव डाली।

इस संप्रदाय के लिए मौर्य सम्राट अशोक[5] एवं दशरथ की उदारता गुहा निर्माण करवाना एवं छठी शताब्दी में 'वराह-मिहिर' द्वारा आजीवक संप्रदाय' का उल्लेख - इसकी लोकप्रियता के प्रमाण है ।

'सूत्रकृतांग' के टीकाकार 'शीलांक' ने दिगंबर जैन व आजीवक संप्रदाय की समानताओं से, इन्हें एक ही माना है। परन्तु बौद्ध एवं जैन दोनों धर्मग्रंथों में इस संप्रदाय को नग्न, मलयुक्त व एकांतवासी, मछलियों की भाँति मनुष्य को फाँसने वाला कहकर निंदा की गई है ।

बौद्ध साहित्य में 'मस्करी-पुत्र' को दैववादी माना गया है। जिनके मत में 'सभी प्राणी नियति के अधीन है। न उनमें बल है न पराक्रम। वे भाग्य और संयोग के चक्कर में पड़कर ही उत्पन्न हो, सुख-दुख भोगते है। इस प्रकार वे कभी नियतिवादी प्रतीत होते है, कभी अहेतुवादी तो कभी दैववादी ! बुद्ध के 'कर्मवाद' से उनका पूर्ण मतभेद था एवं उनके 'नियतिवाद' को कुछ मिथ्या मानते थे। पर वे प्रबल प्रतिद्वन्दी थे ।

3- तीसरे महत्वपूर्ण विचारक थे। अजित केस सम्बलि (केश कम्बलि) 'मानव केशों का कंबल पहनने के कारण ही इन्हें यह उपाधि मिली थी। नितांत भौतिकवादी इस विचारक के मत में चार भूतों[6] से निर्मित (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु) शरीर के समाप्त होने पर, कुछ भी शेष नहीं रह जाता। अतः इस संसार में न कोई माता है, और न कोई पिता। पाप-पुण्य, असत्य, यज्ञ-होम, दान आदि की बाते तो झूठी है।' इस दृष्टि से ये चार्वाक, पूरणकष्यप एवं खग्विज्जावादी के समीप प्रतीत होते है ।

4- प्रकुध कच्चायन (प्रकुध कच्चायन) जैसे घोर अकृतवादी चौथे प्रमुख विचारक थे। जिनके अनुसार 'संसार की सात वस्तुएँ-पृथ्वी-जल-तेज, वायु, सुख-दुख और जीवन-अकृत, अनिर्मित एवं अचल होती है। अतः 'इस संसार में यहाँ न हन्ता है, न धार्तायता, न सुनने वाला, न सुनाने वाला, न जानने वाला, न जतलाने वाला' यह मत आध्यात्मिक एवं नैतिक जीवन को आवश्यक नहीं मानता।

5- संजय वेलट्ठिपुत्त (संजय वेलष्टिपुत्र) पाँचवे ऐसे 'संदेहवादी' विचारक थे। जो, लोक परलोक के अस्तित्व को ही नकारते थे। ऐसे अनिश्चयवादी विचारक की दृष्टि में, मनुष्य जीवन के प्रत्येक प्रश्न पर अनिश्चय ही था ।

6- निगण्ठ नाटपुत्र (निग्रंथ ज्ञातपुत्र) यानी 'स्वामी महावीर' अंतिम छठें महत्वपूर्ण विचारक थे। ये मूलतः ईश्वर पर अंधश्रुता, कर्मकांड एवं ब्राह्मण धर्म के विरोधी थे एवं नैतिकता के समर्थक थे। किन्हीं अंशों में ये बुद्ध के विचारों के समीप थे। यह उल्लेखनीय है कि बौद्ध धर्म के पूर्व जैन धर्म भारत का बहुत प्रसिद्ध धर्म था और आज भी है ।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अन्य विचारक एवं बुद्ध – उपरोक्त वर्णित छह विचारकों के अतिरिक्त कुछ ऐसे विचारकों का उल्लेख करना भी प्रासंगिक होगा। जिनका बुद्ध के साथ शास्त्रार्थ हुआ था। जैसे निग्रोंध के साथ भिक्षु जीवन पर, वच्छगोत्र के साथ गृहस्थ को मोक्ष के अधिकार पर, कुंडलिय के साथ उपारंभ पर, अजितो के साथ चेतना की अवस्थाओं पर उनका शास्त्रार्थ हुआ था ।

बौद्ध ग्रंथो में प्रचलित 62 मतों को 'मिथ्या दृष्टि' एवं 'मिथ्या धारणाएँ' कहा गया है। इनमें से 18 मत लोक व आत्मादि पर विचार प्रकट करने के कारण पुब्बंत कल्पिक[7] एवं शेष 44 आत्मा के अंत में संबद्ध होने के कारण अपरन्त कल्पिक[8] कहे गए।

जैन साहित्य में विचारक – केवल बौद्ध साहित्य में ही नहीं, अपितु जैन साहित्य में भी इन मत-मतान्तरों का उल्लेख मिलता है । जैसे क्रियावादी विचारक - जो आत्मा व मनुष्य के कर्मफल पर विश्वास करते थे, अक्रियावादी - जो प्रत्येक वस्तु को नश्वर मानते थे, अज्ञानवादी - जो सभी ज्ञानों को परस्पर विरोधी व अपूर्ण मानते हुए, मोक्ष के लिए आध्यात्मिक उन्नति को व्यर्थ मानते थे एवं निश्चयवादी - जो मनुष्य के लिए ज्ञान की अपेक्षा विनीत भाव ही सर्वाधिक कल्याणकारी समझते थे ।

उपरोक्त विचारों से स्पष्ट है कि छठी शताब्दी का युग कितने विवाद हलचल एवं उत्तेजना का समय था। इतने वादों एवं विचारकों में गौतम बुद्ध व उनका धर्म बौद्ध धर्म, नक्षत्रों में चन्द्रमा सा उदित हुआ ।

ऐसा कैसे संभव हुआ, कौन से कारण थे, यह जानने के लिए हमें एक बार समस्त संप्रदायों, विचारकों एवं विचारधाराओं का पुनरावलोकन करना होगा, जहाँ उच्छेदवादी, अहेतुवादी, पुव्वेकतावादी, इस्सकारणवादी, खग्विज्जावादी जैसे दार्शनिक संप्रदाय थे। पूरणकस्यप जैसे अक्रियावादी, गौशाल जैसे देववादी, प्रकुध कच्चायन जैसे अकृतवादी, संजय वेलट्ठिपुत्र जैसे संदेहवादी, महावीर स्वामी जैसे कर्मवादी थे। जहाँ क्रियावादी, अज्ञानवादी, विनयवादी, अक्रियावादी विचारकों का बोलबाला था ।

जहाँ संगाय ऋषि मानव बुद्धि की महत्ता को नकारते थे, बृहस्पति ऋण लेकर भी सुख प्राप्ति के समर्थक थे, चार्वाक् जैसे स्वच्छंद एवं वर्जानामुक्त समाज के हिमायती थे, अर्थ संपन्नता के उस युग में भौतिकवादी विचारकों ने दूषित मनोवृत्ति वालों को आकृष्ट किया तो महावीर स्वामी के कठोर तप व अहिंसा ने भी कुछ को लुभाया ।

वस्तुतः केवल वैराग्य ही जीवन नहीं होता और न ही वर्जनाहीन पशुवत जीवन सभ्य सुसंस्कृत समाज को रास आता है, इस समय समाज एक ऐसे धर्म की प्रतीक्षा में था, जो वैदिक धर्म के यम नियम, सप्तमर्यादा सत्मैत्री पारिवारिक सद्भावना से प्रेरित

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

हो।[9]

नया मत पुरोहिताई के स्थान पर धार्मिक भ्रातृत्व, जातिगत योग्यता के स्थान पर वैयक्तिक योग्यता, कर्मकांडो की अपेक्षा पवित्र आचरण को प्राधान्य देकर पूर्व मतों का विरोधी था ।

वस्तुतः इस समय की आवश्यकता थी एक ऐसे नए 'मत' की जो न तो पूर्णतः त्यागमयी जीवन को प्रेरित करें न आसक्ति को, न तो अंधश्रद्धा को माने न कर्मवाद को हतोत्साहित करें, न ही अपव्ययी कर्मकांडो को प्रेरित करें, न ही जाति के आधार पर शोषण होने दे - इन सब विषेशताओं से समन्वित एक ही विचारक सर्वोपरि था, ''महात्माबुद्ध'' का और एक ही धर्म दर्शन 'बौद्धमत' - जो सबका श्रद्धेय बना ।

संदर्भ

1. सभ्यता की कहानी - विल डूरेंट - पृष्ठ 28-29
2. सभ्यता की कहानी - विल डूरेंट - पृष्ठ 29
3. नास्तिक वह नहीं जो ईश्वर में अनास्था रखता है वरन् वह जो वेद में आस्था न रखता हो ।
4. कहीं कहीं यह संख्या 63 भी मिलती है, यानि व तीनि यानि च सट्टिः भगवान बुद्ध आचार्य धर्मानंद कौशाम्बी पृ. 67
5. बौद्ध-धर्म को समर्पित सम्राट अशोक का आजीवक संप्रदाय हेतु गुहा निर्माण आश्चर्यचकित करता है ।
6. प्रायः शरीर को पंचभूत से निर्मित माना जाता है, क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर ।
7. पूर्वान्त कल्पिक ।
8. अपरान्त कल्पिक ।
9. इंडियन बुद्धित्य में रीज डेविडस ने (पृ.73) पूर्व धर्म में प्रेरित बौद्ध धर्म के विषय में लिखा - Buddhism was in a great degree the pouring of new wine into old bottle".

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

नारदपुराण में सृष्टि वर्णन एवं भारत का पौराणिक भूगोल

मनीष शर्मा*

विकास शर्मा**

नारदपुराण के प्रथम अध्याय में ही नैमिषारण्य स्थान का महत्व एवं स्थिति को स्पष्ट किया गया है तथा सम्पूर्ण नारदपुराण में मुख्यतः विष्णु भक्ति की प्रधानता को प्रतिपादित किये के कारण नारद पुराण वैष्णव पुराण के अंतर्गत माना गया है। नारद पुराण के पूर्व भाग के तृतीय अध्याय में भूगोल का वर्णन प्राप्त होता है। देवता भी भारत भूमि की प्रशंसा करते हैं। भारतवर्ष को सब वर्षों से उत्तम माना गया है यह सब कर्मों के फलों को देनेवाला वर्ष देवों के लिये भी दुर्लभ है तथा इस पवित्र भू-भाग पर जन्म लेकर जो सत्कर्म करने में लगे रहते हैं। उसके समान इस त्रिलोक में कोई दूसरा नहीं है। यथाः-

तस्मात्पुण्यतमं ज्ञयं भारतं वर्षमुत्तमम्।[1]

एवं

अस्मिन्पुण्ये च भूभागे यस्तु सत्कर्मसूद्यतः।
न तस्य सदृशं कश्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ।।[2]

भारतवर्ष की महत्ता का प्रतिपादन करने के अनन्तर सात लोकों वर्णन किया गया है। भूः भुवः, स्वः, महः, जनः, तप और सत्य ये सात लोक सत्य पर अवलम्बित तथा उर्ध्व लोक हैं। तथा अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल उसके नीचे के रसातल और सबसे नीचे पाताल है। प्रत्येक लोक में कुचाचल, नदी और उन लोकों में रहने वाले

---

* शोधार्थी, महर्षि पाणिनि वैदिक एवं संस्कृत विश्वविद्यालय, उज्जैन

** बरकत-उल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

जीवों एवं लोकोचित व्यवहार आदि का यथायोग्य निर्धारण प्रकृति ने किया है। भूतल के मध्य भाग में सब देवताओं के एकमात्र आश्रम स्थान में पर्वत को तथा भूमि के अन्त में लोकालोक पर्वत को और मध्य में सात सागरों को स्थापित किया। सात द्वीप- जम्बूद्वीप, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, कौंच, शाक और पुष्कर द्वीप तथा ये सातों द्वीप सात-सात समुद्रों से घिरे हुए हैं जो कि क्रमशः लवण, इक्षु(ईख), सुरा(मदिरा), घृण, दधि, दूध और जल से भरे रहते हैं। तथा ये द्वीप और समुद्र लोकालोक पर्वत से पूर्व एक के बाद एक स्थित हैं जो क्रमशः विस्तार में दुगुने परिमाण में हैं। लवण समुद्र के उत्तर में और हिमालय से दक्षिण में भारत की स्थिति को नारद पुराण में बतलाया गया है।[3]

बृहन्नारदीयपुराण के अध्याय 6-9 तक गंगा महात्मय के अंतर्गत गंगा को तटवर्ती विभिन्न तीर्थो का वर्णन आया है तथा गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, नर्मदा, सरस्वती, तुंगभद्रा, कावेरी, यमुना, वेत्रवती(बेतवा), ताम्रपर्णी, सरयू आदि नदियों का वर्णन प्राप्त होता है।

इस प्रकार बृहन्नारदीयपुराण के पूर्व भाग के बयालिसवे अध्याय में सृष्टि वर्णन प्राप्त होता है। इस अध्याय में जगत की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के विषय में विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। भगवान विष्णु से उत्पन्न हुई इस सृष्टि में समस्त भूत उत्पन्न हुए।

जिससे सारे प्राणी नष्ट भी होते हैं उस देव ने सर्वप्रथम नाम (शब्द) से महान् नामक तत्व को उत्पन्न किया। वह समस्त भूतों को धारण करने वाला समर्थ 'आकाश' नाम से प्रसिद्ध है। आकाश से जल, जल से अग्नि और वायु उत्पन्न हुए। तदनन्तर अग्नि और वायु के संयोग से पृथ्वी उत्पन्न हुई। स्वयम्भू ने पुनः एक तेजोमय दिव्य कमल का उत्पन्न किया। उस पद्‌म से वेदमय ब्रह्मा उत्पन्न हुए। समस्त भूतों का उत्पादक 'अहंकार' भी उसका नाम है। वे महातेजस्वी ब्रह्मा और पंचधातु सब उसके ही रूप हैं। सब पर्वत उस विराट् की हड्डियाँ हैं, मोदिनी मज्जा और मांस है। समुद्र उसका रक्त और आकाश उदर है। पवन और तेज से उस देव का निःश्वास है, नदियाँ उसकी शिरायें (नाड़ियाँ), अग्नि तथा सोम, चन्द्र तथा सूर्य उसके नेत्र हैं, आकाश उसका कपाल, पृथ्वी चरण और दिशायें उसकी भुजाएँ हैं। उस अचिन्त्य आत्मा को सिद्ध भी कठिनाई से ही जान सकते हैं। वहीं भगवान विष्णु अनन्त नाम से प्रसिद्ध हैं। सब भूतों में व्याप्त रहने वाले इस परमात्मा को अविवेकी कभी नहीं जान सकते हैं। वह अहंकार तत्व का सृष्टा और समस्त भूतों का एकमात्र आदि कारण है। उससे ही विश्व उत्पन्न हुआ है यथा -

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

दुर्विज्ञेयो ह्यचिन्त्यात्मा सिद्धैरपि न संशयः।
स एष भगवान्विष्णुरनन्त इति विश्रुतः।
सर्वभूतात्मभूतस्थो दुर्विज्ञेयोऽकृतात्मभिः।
अंहकारस्य यःस्त्रष्टा सर्वभूतभवाय वै ॥[1]

पृथ्वी के अंत में समुद्र हैं, समुद्र के अंत में अंधकार और अंधकार के अंत में जल है, जल के पश्चात् अग्नि वर्तमान है। इसी प्रकार रसातल के अंत में सलिल और उसके बाद नागपति शेषनाग हैं। तत्पश्चात् फिर आकाश और आकाश के बाद पुनः जल है। अग्नि, वायु, जल और पृथ्वी के वर्ण में कोई प्रत्यक्ष अन्तर नहीं है। वे आकाश के समान हैं, केवल सूक्ष्म रूप से तत्वतः देखने पर ही भिन्नता जानी जाती है। सर्वज्ञ प्रभु ने पुष्कर(कमल) से पहले मूर्तिमान धर्ममय अनुपम प्रजापति ब्रह्म को उत्पन्न किया।

मानस की जो मूर्ति ब्रह्मा के रूप में प्रकट हुई, उसी के आसन के लिए पृथ्वी पद्मा कही गई है। उस पद्म की कर्णिका मेरू है, जो आकाश को चूमता रहता है। ब्रह्मा उसके मध्य में स्थित होकर लोगों की सृष्टि करता है यथा -

मानसस्येह या मूर्तिर्ब्रह्मत्वं समुपागता ।
तस्यासनविधनार्थ पृथिवी पद्ममुच्यते ॥
कर्णिका तथ्स पद्मस्य मेरूर्गगनमुच्छ्रितः।
तस्य मध्ये स्थितो लोकन्सृजत्येष जगद्विधिः॥[1]

मानस ने विविध प्रजासृष्टि को पहले अपने मन से बना डाला। सब प्राणियों की रक्षा के लिए पहले जल उत्पन्न किया गया। पृथ्वी, पर्वत, मेघ अथवा जितने मूर्तिमान् पदार्थ हैं ये सब जल के ही विभिन्न रूप हैं, जो घनीभूत होकर इस रूप में हो गए हैं। निदान ब्रह्ममयी वाणी और आकाश से दिव्य सरस्वती प्रकट हुई है। उसके प्रकट होते ही आकाश शान्त, निःशब्द और अचल के समान हो गया। चन्द्र, सूर्य और पवन के बिना उस समय आकाश ऐसा जान पड़ता था, मानों सो गया हो। तदनन्तर जल उत्पन्न हुआ, जैसे अंधकार से ही अंधकार की उत्पत्ति हुई हो, उस जल के संघर्ष या दबाव से वायु उत्पन्न हुआ। जिस प्रकार छिद्ररहित भवन निःशब्द-सा लगता है और उसे जल से भरे जाने पर वायु शब्द के सहित कर देता है। उसी प्रकार जल से संरूद्ध आकाश में समुद्र तल का भेदन कर शब्दवान् वायु ऊपर उठता है। इस प्रकार वह वायु समुद्र की हलचल से उत्पन्न होकर गतिमान् होता है। वह आकाश में जाकर शान्त नहीं होता। उस वायु और जल के संघर्ष से महाशक्तिशाली तेजस्वी अग्नि उत्पन्न हुआ, जिसकी लपेटें ऊपर को उठ रही थीं और जिसकी प्रभा से सारा आकाश तमोहीन हो गया था। अग्नि-वायु की सहायता से आकाश में जल उछालता है, उस समय अग्नि और वायु के

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

संयोग से जल धीरे-धीरे जमने लगता है और ठोस होकर बादल के रूप में परिणत हो जाता है। वह जब आकाश में ऊपर उड़ता और जलीय भाग को बरसा देता है तो उसका दूसरा स्नेह भाग रूक जाता है और वही एक में मिलते-मिलते भूमि के रूप में परिणत हो जाता है। रस, सब प्रकार के गन्ध स्नेह और प्राणियों का उत्पत्ति-स्थान यही भूमि है, जिससे यह पदार्थ उत्पन्न होते हैं।

पाँचों पदार्थो से असीम महान् अष्ट भूत उत्पन्न होते हैं, अतएव उनकी महाभूत संज्ञा युक्तियुक्त है। प्राणियों की चेष्टा वायु है, शरीर के स्थान आकाश, उष्मा-अग्नि इसके द्रव पदार्थ रक्त आदि जल और ठोस पदार्थ पृथ्वी है। इस प्रकार इन पाँचों महाभूतों का मिश्रित रूप ही पांचभौतिक शरीर है। इन पाँचों से ही सारे स्थावर-जंगम बने हुए हैं। श्रोत्र, नासिका, रसना, स्पर्श(त्वक्) और दृष्टि(नेत्र) इन्द्रियाँ कहलाती हैं।

अमितानि महाष्टानि यान्ति भूतानि सम्भवम्।
अतेस्तेषां महाभूतशब्दोऽयमुपपद्यते।।
चेष्टा वायुः खमाकाशमूष्माग्निः सलिलं द्रवः।
पृथिवी चात्र संघातः शरीरं पांचभोतिकम्।।[1]

अत्यन्त घने (ठोस) वृक्षों में भी आकाश है, इसमें सन्देह नहीं। उनमें फूल-फल सर्वदा निकलते हैं, गर्मी लगने से उनकी पत्तियाँ, वल्कत(छाल), फल और पुष्प मुछक्षा जाते हैं, मलिन हो जाते हैं, सूखकर गिर जाते हैं तो क्या उनमें स्पर्श ज्ञान नहीं है। वायु, अग्नि और बिजली की कड़ककड़ाहट के शब्द से उनके फल और फूल टूटकर गिर जाते हैं। कान से शब्द सुना जाता है, अतः वृक्ष भी सुनते हैं? लतायें वृक्षों से लिपट जाती हैं, इधर-उधर फैलती भी हैं। बिना नेत्र के मार्ग कैसे दिखाई दे सकता है? अतः वृक्ष भी देखते हैं। पुण्य अपुण्य, विधि गंध और धूप(किरणों) से ये वृक्ष निरोग रहते हैं और फूलते हैं। इससे जान पड़ता है कि वृक्ष सूँघते हैं। पेड़ों को सुख-दुख का अनुभव होता है, काटे जाने पर वे बढ़ते भी हैं। अतः उनमें जीव हैं और चेतनता भी। इसीलिए वे जल पीते हैं, अग्नि और वायु के प्रभाव से वृद्ध भी होते है। आहार के अनुसार उनमें रस उत्पन्न होता है और वे बढ़ते भी हैं और सब जंगलों के शरीर में पाँच धातुएँ हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार की शारीरिक चेष्टाओं द्वारा प्रत्येक धातुओं की अभिव्यक्ति होती है। यथा -

ज्ंगमानां च सर्वेषां शरीरे पंच धातवः।
प्रत्येकशः प्रभिद्यन्ते यै शरीरं विचेष्टते।।

बृहन्नारदीय पुराण के उत्तरभाग में प्रसिद्ध विष्णु भक्त रूक्मागंद की कथा के

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सन्दर्भ में पौराणिक(प्राचीन) भारत का भौगोलिक वर्णन मोहंती के तीर्थाटन के प्रसंग में विस्तार से वर्णित है। वस्तुतः नारद पुराण का पूर्व भाग विष्णु के महत्व एवं व्रतोपवास तथा सृष्टि वर्णन व पर्यावरण के अति सूक्ष्म वर्णन से ओतप्रोत है जिसकी वैज्ञानिकता वर्तमान काल में भी प्रासंगिक है। द्वितीय भाग में तीर्थो के वर्णन के बहाने से सम्पूर्ण भारत वर्ष की परिक्रमा की गई है। अध्याय 8 में ब्रह्मा द्वारा मोहिनी का नामकरण तथा मन्दराचल पर्वत व क्षेत्र का वर्णन किया गया है।

दशैकसाहस्त्रमितश्च मूले तत्संख्यया विस्तरतां गतोऽसौ।
दैर्घ्येण तावंति हि योजनानि त्रैलोक्ययष्टीव समुच्छ्रितोऽसौ।।
सकांचनै रत्नमयैश्च श्रृंगैः प्रकाशयन्भूमितलं वियच्च।
यस्मिन्गतः कश्यपनंदनो वै विरश्मितामेति विनष्टतेजाः।।
कांचनाकारभूतांगं संप्राप्ता कांचनप्रभा।
सूर्यतेजोनिहंतारं मंदरं तेजसा स्वयम्।।

अध्याय 38/39 मैं मोहिनी-वसु संवाद में गंगा महात्म्य वर्णन तथा अध्याय 39 में कलाविशेष और स्थलविशेष में गंगा स्नान की महिमा के सन्दर्भ में गंगा के कई तटवर्ती क्षेत्रों का वर्णन किया गया है।

मोहिनी-वसु संवाद-गंगा-माहात्म्य-वर्णन, गंगाजी के दर्शन, स्मरण तथा उनके जल में स्नान करने का महत्त्व, काल विशेष और स्थल विशेष में गंगा स्नान की महिमा, गंगा तट पर किये जाने वाले स्नान, तर्पण पूजन तथा विविधप्रकार के दानों की महिमा, एक वर्ष तक गंगार्चन-व्रत तथा गुडधेनु आदि का विधान, गंगा दशहरा के पुण्य-कृत्य एवं उनका माहात्म्य, राजा विशाल का इतिहास तथा गया तीर्थ की महिमा, गया में प्रथम और द्वितीय दिन केकृत्य तथा पिंडदान आदि की विधि का वर्णन, गया में तीसरे और चौथे दिन का कृत्य, ब्रह्मतीर्थ तथा विष्णुपद आदि की महिमा, गया में पाँचवें दिन का कृत्य, अविमुक्त क्षेत्र-काशीपुरी की महिमा, कोशी की तीर्थयात्रा का वर्णन, काशी-यात्रा का काल तथा शिवलिंगों का वर्णन, काशी की उत्तरवाहिनी गंगा तथा पंचनद में स्नान करने वालों के महापातक की निवृत्ति तथा शिवलोक की प्राप्ति का कथन, उत्कल देश के पुरूषोत्तम क्षेत्र की महिमा राजा इन्द्रद्युम्न के द्वारा भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति, पुरूषोत्तम क्षेत्र की यात्रा का समय तथा नृसिंह पूजन विधान, श्वेतमाधव, मत्स्यमाधव के दर्शन का फल तथा समुद्र-स्नान की विधि, तीर्थराज प्रयाग में स्नान, दान आदि की विधि का निरूपण, प्रयाग में माघ-मकर स्नान की महिमा तथा वहाँ के भिन्न-भिन्न तीर्थो का माहात्म्य, कुरूक्षेत्र के माहात्म्य में क्षेत्र, प्रमाण आदि निरूपण, कुरूक्षेत्र के वन, नदी और भिन्न-भिन्न तीर्थो का माहात्म्य तथा यात्रा विधि का वर्णन, गंगाद्वार(हरिद्वार) और

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

वहाँ के विभिन्न तीर्थो का माहात्म्य, बदरिकाश्रम के विभिन्न तीर्थो की महिमा, कामोदा नामक देवी-क्षेत्र की यात्रा की विधि का वर्णन, सिद्धनाथ चरित्र, कामाक्षा माहात्म्य, प्रभास क्षेत्र का माहात्म्य तथा उसके अवान्तर तीर्थो की महिमा, यात्राविधान पूर्वक पुष्कर क्षेत्र का माहात्म्य वर्णन, गौतमाश्रम-माहात्म्य-वर्णन, पुण्डरीकपुर का माहात्म्य, जैमिनी द्वारा भगवान शंकर की स्तुति, गोकर्ण क्षेत्र का माहात्म्य वर्णन, लक्ष्मणाचल का माहात्म्य वर्णन, रामेश्वर शिवलिंग माहात्म्य सहित सेतु माहात्म्य वर्णन, नर्मदा के तीर्थो का दिग्दर्शन तथा उनका माहात्म्य, अवन्तीक्षेत्र-यात्रा-माहात्म्यवर्णन, मथुरा के भिन्न-भिन्न तीर्थो का माहात्म्य, वृन्दावन-माहात्म्य-वर्णन वर्णित है। इस प्रकार बृहन्नारदीयपुराणम् सृष्टि वर्णन तथा भारत का पौराणिक भूगोल यत्र-तत्र विस्तार पूर्वक वर्णित है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पौराणिक अहल्या आख्यान वैदिक संदर्भ में

डॉ० गोविन्द मसूरे एवं डॉ० लक्ष्मी ठाकुर*

पुराणों के शैली रूपात्मक भी हैं वैदिक कथनों को पुराणों में अपनी विशिष्ट शैली के द्वारा वेदों के सूत्रात्मक कथनों का विस्तार समयानुकूल पौराणिक विस्तार कर्ताओं ने अपनी-अपनी दृष्टि से किया हैं।

जिन वैदिक कथनों का विस्तार पुराणों में स्थान-स्थान पर भिन्न भिन्न रूपों में प्राप्त हैं उन्हें आख्यान भी कहा जाता हैं, इन्हीं आख्यानों में से एक आख्यान हैं अहल्या आख्यान जो वैदिक साहित्य में ''अहल्यायै जारः इन्द्र'' इस आख्यान के प्राचीनतम संकेत शतपथब्राह्मणः[1] जैमिनीयब्राह्मण[2] एवं षड्विंशब्राह्मण[3], तैत्तिरीयआरण्यक[4], लाटायन श्रोत्रसूत्र[5] एवं द्राह्यायण श्रोत्रसूत्र[6] में इसके निर्देश मिलते हैं।

अर्थवेद में एक मन्त्र[8] है, में पूर्व दिशा का स्वामी इन्द्र सहस्त्राक्ष हो जाने से अतिपश्य अर्थात् कान्तदर्शी हुआ।

उपर्युक्त वैदिक साहित्य में प्राप्त कथन अहल्यायै जारेति'' का पुराणों में विस्तार किया गया है। पद्यपुराण[9] में आये अहल्या आख्यान की कथा-

पद्यपुराण – पद्यपुराण में भगवान और एक द्विज में सम्भाषण में भगवान द्वारा सुराधिपति इन्द्र के चरित्र के वर्णन के प्रसंग में अहल्या का आख्यान आया है।

भगवान ने द्विज से कहा कि अहल्या के हरण के कारण ही इन्द्र सहस्त्र भगांगयुक्त बना, फिर देवी की कृपा से उसने वर प्राप्त करके तीन लोकों में सहस्त्राक्ष

---

* शासकीय एम.जी.एम. पी.जी. महाविद्यालय, इटारसी (होशंगाबाद)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कहलाया, इस पर द्विज के यह पूछने पर कि यह कैसे हुआ, भगवान ने इन्द्र के द्वारा अहल्या के घर्षण की कथा सुनाई।

अतिप्राचीन समय में ब्रह्मा ने अपनी पुत्री का विवाह समस्त लोकपालों के समक्ष गौतम ऋषि के साथ कर दिया। उसके सौन्दर्य को देखकर सभी लोकपालों के मन में विकार उत्पन्न हो गया किन्तु इन्द्र के हृदय में तो आघात् हुआ कि परम सुन्दरी इस कन्या को ब्रह्मा ने लोकपालों का तिरस्कार करने एवं दरिद्र ब्राह्मण को क्यों दे दिया।

इन्द्र अहल्या के सौन्दर्य का ध्यान करते हुए गौतम ऋषि के आवास की ओर कार्य सिद्धि हेतु गये। गौतम ऋषि स्नान करने के लिए गये हुए थे। इधर अहल्या पति के देवार्चन की सामग्री जुटाने में संलग्न थी, उसी समय इन्द्र गौतम ऋषि का वेषधारण करके ऋषि की कुटिया में प्रविष्ट हुए और ऋषि वेषधारी कामार्त इन्द्र ने अहल्या के समक्ष अपना अभिप्राय प्रकट किया किन्तु अहल्या ने इसका विरोध किया किन्तु ऋषि वेषधारी इन्द्र ने अहल्या को विवश कर ही लिया और अपना मनोरथ पूर्ण किया। इसी समय गौतम मुनि ने तपोबल से इन्द्र के दुर्वृत का जान लिया वे शीघ्र ही कुटिया को लौट आये। इधर अपना मनोरथ पूर्ण करने के उपरान्त इन्द्र कुटिया से बाहर आये। इन्द्र ने मुनि को देखकर मार्जर का रूप धारण कर लिया, किन्तु मुनि के पूछने पर डर से इन्द्र पुनः अपने यथार्थ रूप में हाथ जोडकर खड़े हो गये। इन्द्र को मुनि ने श्राप दे दिया कि तेरा शरीर सहस्त्रभंग संपन्न हो जायेगा।

अहल्या को भी श्राप दिया कि शरीर पर मांस और नखों से रहित केवल अस्थि और चर्म से युक्त दीर्घ काल तक रहेगी। इस रूप में एकाकिनी तुझे पुरूष और स्त्रियाँ देखा करेगी। जिस समय सीता और लक्ष्मण के साथ रामवन आयेंगे शुष्क देह वाली तुझ दुखिया को देखकर वसिष्ठ के पास जाकर पूछोगें की यह सूखी देहवाली कौन हैं, उस समय वशिष्ठ उन्हें सारी कथा सुनाएगें। सुनकर राम कहेगे कि इसमें तो सारा दोष इन्द्र का हैं। इसका नहीं राम के ऐसा कहने पर तू अपने इस रूप को त्याग कर अपने दिव्यरूप को प्राप्त करेगी।

इस प्रकार अहल्या को श्राप देकर गौतम तप हेतु वन को चले गये। इधर इन्द्र ने भी श्राप के कारण जल में रहकर तप किया एवं अक्षि नाम की देवी की स्तुति की देवी ने प्रसन्न होकर इन्द्र को कहा मैं मुनि के श्राप को नष्ट नहीं कर सकती किन्तु इतना हो सकता हैं कि योनि मध्य में दृष्टि सहस्त्र हो जाये जिससे कि लोग तुम्हें उस रूप में न देख सकें। सहस्त्राक्ष नाम से प्रसिद्ध होकर तुम सुरों पर राज्य कर सकों मेरे वर से तुम्हें नष्टांग प्राप्त होगें।

पद्मपुराण में एक अन्य स्थल(खण्ड 6 अध्याय 279) में प्रसंगवश अहल्या के शाप मोचन का जो उल्लेख हुआ हैं वह उपर दिखाये गये आख्यान से भिन्न हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ब्रह्मवैवर्तपुराण[10] – इस पुराण के श्रीकृष्ण जन्म खण्ड में रूद्र के ऐश्वर्य दमन के प्रसंग में अहल्या के आख्यान का वर्णन किया गया। संक्षेप में ब्रह्मवैवर्तपुराण के आख्यान की संक्षिप्त कथा इस प्रकार हैं -

सूर्य पर्व के अवसर पर पुष्कर तीर्थ की यात्रा करने अहल्या आयी हुई थी, उसके सौन्दर्य को देखकर इन्द्र तत्क्षण मूर्छित हो गये। दूसरे दिन जब वह अहल्या निवस्त्र होकर स्नान कर रही थी, तो देवराज इंद्र ने उसे देख लिया, उसे देखकर वह कामातुर हो गया। और उसने कई प्रकार से अहल्या की स्तुति करते हुए अहल्या को कहा की गौतम ऋषि को त्यागकर मुझे स्वीकार करो। अहल्या ने इन्द्र का विरोध किया, भर्त्सना की और गौतम ऋषि के पास आकर समस्त घटना सुनाई।

एक समय गौतम भगवान शंकर के पास गये थे। एकांत पाकर इन्द्र ने गौतम ऋषि का वेशधारण कर अहल्या से अपना मनोरथ पूर्ण किया। इस घटना को अपने तपो बल से गौतम ऋषि ने ज्ञात कर अतित्वरित गति से अपने आश्रम की ओर गये, द्वार से निकलते हुए इन्द्र को एवं एकान्त में निवस्त्र अहल्या को उन्होंने ने देखा मुनि को क्रोध पर इन्द्र को तो अंगभंगयुक्त होने का और अहल्या को महारण्य में पाषाण रूप में स्थित रहने का शाप दिया। इन्द्र तो वहा से चले गये, किन्तु अहल्या ने शापमुक्ति का उपाय पूछा गौतम ऋषि ने रामपादांगुलिस्पर्श से शाप मुक्ति का उपाय बताकर तपस्या करने चले गये।

ब्रह्मपुराण[11] – इस पुराण का संक्षिप्त कथानक - ब्रह्मगिरि क्षेत्र में गौतम अहल्या के साथ गृहस्थ जीवन सुखमय व्यतीत कर रहे थें, गौतम ऋषि की कीर्ति दूर दूर तक फैली हुयी थी। इन्द्र भी उनके यश को सुनकर ब्राह्मण वेश में उनके आश्रम में आये। आश्रम में अहल्या को देखकर इन्द्र सब कुछ भूल गये, और कामान्तुर इन्द्र सुर राज्य के मद में सारी स्थिति को भूल गये किन्तु विप्रवेश में वह सफल नहीं हो पाये। पुनः इन्द्र ने अवसर पाकर ऋषि के वेष में अहल्या के साथ जारकर्म किया।

ऋषि के आने पर इन्द्र को ऋषि ने यह कहते हुए शाप दिया कि तुने भग के लिए यह कृत्य किया अतः तुम सहस्त्र भंगांगयुक्त बन जाओं, उधर अहल्या को भी सूखी नदी बन जा ऐसा शाप दिया।

इसके बाद अहल्या ने ऋषि से बहुत अनुनय विनय किया कि मैंने कभी भी मन-वचन-कर्म से किसी अन्य पुरूष का ध्यान नहीं किया। इन्द्र आपके वेश में आया था। अतः यह कुकर्म अनजाने में हुआ, अहल्या की इस बात का आश्रम के अन्य लोगों ने भी समर्थन किया। फिर सारी बात को ध्यान में रखकर मुनि शान्त हुए और जब तुम नदी बनकर गौतमी नदी से मिलोगी तो पुनः अपने इस रूप में प्राप्त करोगी। ऋषि की

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बात सुनकर अहल्या ने वैसा ही किया। इधर इन्द्र ने मुनि से शाप मुक्ति की प्रार्थना की मुनि ने कहा कि तुम गौतमी में स्नान करों तुम्हारा पाप दूर हो जाएगा। और तुम सहस्त्राक्ष हो जाओगे इन्द्र ने वैसा ही किया और वह सहस्त्राक्ष बन गया। जिस स्थान पर यह घटना घटी उस स्थान का नाम इन्द्रतीर्थ पड़ गया।

स्कन्दपुराण[12] में अहल्येश्वर तीर्थ वर्णन में यह कथा आई हैं, जहाँ गौतम नामक ब्राह्मण वानप्रस्थ आश्रम अन्तर्गत जीवन यापन कर रहा हैं। गौतम की पत्नि अहल्या अपने सौन्दर्य के कारण तीनों लोक में विख्यात थी। देवराज इन्द्र अहल्या के सौन्दर्य पर मोहित हो गये और उसे पाने के हेतु अहल्या के पास जाकर कहने लगे कि तुम मेरे साथ सुखपूर्वक रहोगी। आदि-आदि स्त्री स्वभाव चांचाल्य वश अहल्या भी इन्द्र की ओर आकृष्ट हो गयी। इन्द्र और अहल्या दोनों कामवश होकर अपना-अपना मनोरथ पूर्ण किया। गौतम ऋषि के आने पर इन्द्र सहस्त्र भगवेष्टित हो गया। अहल्या को भी अश्वमयी बनने का शाप दिया।

स्कन्दपुराण के आख्यान को छोड़कर पद्मपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्मपुराण, आदि पुराणों में इन्द्र के गौतम ऋषि के वेश में अहल्या से संबंध वर्णित हैं। स्कन्द पुराण में इन्द्र ने अहल्या को प्रलोभन दिये और अहल्या भी स्त्री स्वभाव चांचल्यवश इन्द्र के साथ रमणार्थ तैयार हो गई।

यही मुख्य अन्तर स्कन्द पुराण के आख्यान में हैं ''अहल्यायै जारेति इन्द्र'' इस वैदिक कथन - का पुराणों में जिस अर्थ में विस्तार हुआ हैं, यह एक रहस्य ही हैं और समस्या भी। वैदिक कथन में निहित ज्ञान के रहस्य को प्रकाश में लाना और पौराणिक आख्यान के तत्व को प्रकाश में लाकर भारतीय संस्कृति की परम्परा की रक्षा करना यही इस शोधपत्र का उद्देश्य हैं। वैदिक सन्दर्भ में जो कथन हैं अहल्यायै जारः इन्द्र यह शतपथब्राह्मण[13] में सुब्रह्मण्य यज्ञ के समय इन्द्र की स्तुति में इन्द्र का विशेषण के रूप में प्रयुक्त हैं। शतपथब्राह्मण में ही इन्द्र को सूर्य कहा गया हैं।

य एष सूर्यस्तपति, एष उ एव इन्द्रः[14]

''इसी संदर्भ में कुमारिन भट्ट ने अपने तन्त्र वार्तिक ग्रंथ में इस कथानक के रहस्य का रूपक समझाया हैं यह वेदगाथा सूर्यरात्रि के दैनन्दिन व्यवहार की द्योतिका है। चन्द्रमा ही गौतम है।

उत्तम गावों रश्मयों यस्य सः गौतमः

चन्द्र की पत्नि रात्रि ही अहल्या हैं।

अहर्लीयते यस्यां सा

दिन को अपने में लीन कर देने वाली अहल्या का यह निरूक्तिगम्य अर्थ हैं सूर्य

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ही परमैश्वर्य से सम्पन्न होने के हेतु इन्द्र हैं। इन्द्र और सूर्य के एक्य बोधक वाक्य वैदिक साहित्य में बिखेरे पड़े हैं यथा य एष सूर्यस्तपति एष उ एव इन्द्रः

सूर्य के उदय होते ही रात्रि जीर्ण होकर भाग खड़ी होती है अतः रात को जीर्ण करने के हेतु से सूर्य जार कहलाया(रात्रि को जीर्ण परिसमाप्त कर देने वाला) अतएव कुमारिल भट्‌ट (सप्तशती) सम्मति में चन्द्रमा की पत्नि रात्रि सूर्य के उदित होते ही जीर्ण होकर समाप्त हो जाती हैं, यही लोक व्यवहार की प्रतिदिन साक्षात्कृत घटना का वर्णन पूर्वोक्त वेद गाथा में किया गया हैं।

कुमारिल भट्ट से एक हजार वर्ष पूर्व होने वाले यास्काचार्य ने भी इसी तात्पर्य की ओर संकेत किया हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी इस व्याख्या को प्रमाण्य मानकर ऐसी ही व्याख्या की हैं।''[15]

स्वाध्याय परिवार के प्रणेता प.पू. पाण्डूरंग शास्त्री आठवले उपाख्य दादाजी ने भी कुमारिल भट्ट के विचारों के अनुरूप ही अपने प्रवचनों[16] के द्वारा लाखों जन मानस तक इस पौराणिक रूपक के रहस्य को पहुँचाया हैं और भारतीय का गौरव बढ़ाया साथ ही भारतीय संस्कृति पर आरोप लगाने वाले डॉ. मूर जैसे विद्वानों को प्रत्युत्तर दिया हैं।

सन्दर्भ

1. अध्यात्मक 3.3.4.16-19
2. 2 खण्ड 79
3. 1.1.19
4. 1.12.3
5. 1.3.1.3
6. 1.2.1-2
7. रामायण के आख्यान डॉ. धर्मेन्द्र शास्त्री की कृति को भी देखना चाहिए।
8. पुराण विमर्श आचार्य बलदेव उपाध्याय पृष्ठ 251 प्र. संस्करण 1965
9. पद्मपुराण (सृष्टि खण्ड) 51-3
10. श्रीकृष्ण जन्म खण्ड अध्याय 61
11. गौतमी माहात्म्य अध्याय 67 और 18 आनन्द आश्रम पूना।
12. आवन्तिक खण्ड अध्याय 136
13. अध्यात्मक 3.3.4.16-19
14. 4-5-9-4
15. पुराण विमर्श आ. बलदेव उपाध्याय, पृ. 251-52 प्र. संस्करण 1965
16. दशावतार पृ. 23-24 छठी आवृत्ति 2001

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भारत वर्ष में विष्णु पुराण कालीन शिक्षा

डॉ० देवेन्द्र कुमार*

वेद, इतिहास, धर्मशास्त्र, पुराण, आख्यान, अनुवाक, आदि भगवान् विष्णु का शरीर है अर्थात् भगवान् ज्ञानस्वरुप हैं अतैव वे सर्वमय हैं। विदित हैं कि शिक्षा भगवत प्राप्ति के लिए उपयुक्त साधन एवं प्रशस्त मार्ग है। शिक्षा के अभाव में भगवत प्राप्ति सरलता से प्राप्त नहीं हो सकती है। भक्ति और कर्म आदि योग भी शिक्षा विकास का फल है शिक्षा चाहे एकान्त वन में गुरुकुल में मिली हो, नगर में अथवा अपने पिता के घर में, परन्तु वह शिक्षा का ही साधन है।

वयाक्रम

विश्वविख्यात है कि औंर्व ने कहा है कि बालक को उपनयन संस्कार के सम्पन्न हो जाने के बाद वेदाध्ययन में तत्पर होकर ब्रह्मचर्य का पालन करत हुए गुरुगृह में निवास करना चाहिए-

बालः कृतोपनयनो वेदाहरणतत्परः।
गुरुगेहे वसेद् ब्रह्मचारी समाहितः स्त्र ।।

भगवान् कृष्ण और बलराम दोनों उपनयन संस्कार के उपरान्त विद्योपार्जन के लिए अवन्तिपुरवासी सान्दीपनि मुनि के आश्रम गये थे।[1] ब्राह्मण बालक आठ वर्ष तीन महीने, क्षत्रिय बालक दस वर्ष तीन महीने और वैश्य बालक ग्यारह वर्ष तीन महीने की अवस्था में विद्यार्जन के लिए गमन करते थे। परन्तु आधुनिक काल के अनुसार शिक्षा का आरम्भ बाल्यकाल में हो जाना ही उचित समझा जाता हैं।

* प्रांत कार्यकारिणी सदस्य, भारतीय इतिहास संकलन समिति, मालवा प्रांत, उज्जैन

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

शिक्षा की अवधि

पुराण का मनन करने पर यहाँ विदित होता हैं कि अपना अभिमत वेदपाठ समाप्त कर लेने पर शिष्य गुरु की आज्ञा अनुसार गृहस्थाश्रम में प्रवेश करें। महार्षि पाणिनि के सूत्र में अपना मत रखते कहते है कि "जीवन भर अध्ययन करना चाहिए।[2]" मेरे मतानुसार वर्तमान परिस्थिति में मानव को जीवन के अन्तिम क्षण तक एक विद्यार्थी के रुप में अपना जीना चाहिए।

प्रारम्भिक शिक्षा

प्राथमिक शिशु शिक्षा का पाठ्यविषय उच्चस्तरीय होता था। शिशु अवस्था में बालकों को योग और राजनीति जैसे गम्भीर विषयों का अध्ययन करया जाता था। हमें दृष्टान्त मिलता है कि सप्तर्षियों ने शिशु ध्रुव को सर्वप्रथम ही प्रत्याहार और धारणा का शिक्षा सफलतापूर्वक दी थी[3] और प्रहलाद को उनके गुरु ने सम्पूर्ण राजनीति शास्त्र शिक्षा दे दी थी।

"ममोपदिष्टं सकलं गुरुणा नात्र संशयः।
गृहीतन्तु मया किन्तु न सदेतन्मतम्मतम्मम ।।"

आज भी हमारी संस्कृति में विद्याध्ययन से पूर्व शिशु को प्रथम अक्षर के रुप में "ओम्" पूर्वक नमः शिवाय वा नमो नारायणाय अथवा नमः सिद्धये लिखाया जाता था। पुराण में भी "ओम्" को अविनाशी ब्रह्म माना गया है। इस ही प्रणवरुप "ओम्" ब्रह्म में त्रिलोकी भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक का प्रतिपादन हुआ।[4] प्रायः पूर्वकाल में पाठशालाओं को 'लिपिशाला' तथा अध्यापकों को 'द्वारकाचार्य' कहते थे। प्राचीन काल में धनीजन अपने बालकों को पढ़ाने के लिए अध्यापकों को नियुक्त करते थे और इन ही अध्यापकों के सानिध्य में गाँव के अन्य बालक भी अध्ययन करते थे।

शिक्षणकेन्द्र

तैश्चोद्रं पुरुकुत्साय भूभुजे नर्मदातटे।
सारस्वताय तेनापि मह्य सारस्वतेन च स्त्र

प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता हे कि हमारे पौरणिक विद्यालयों की स्थिति नदीतट पर वनों में और नगरों में भी थी। इस सम्बन्ध में दोनों प्रकार के उदाहरण मिलते हैं। जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहति के दार्शनिक तत्वज्ञान की शिक्षा दक्ष आदि मुनियों ने राजा पुरुकुत्स को, पुरुकुत्स ने सारस्वत को और सारस्वत ने मुझ को नर्मदा नदी के तट पर दी थी। सप्तर्षियों ने ध्रुव को यौगिक शिक्षा नगर से बाहर उपवन में दी थी। हिरण्यकश्यप के पुत्र बालक प्रहलाद को गुरू के घर पर शिक्षा के लिए भेजा जाता था।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

तस्य पुत्रे महाभागः प्रहलादो नाम नामतः।
प पाठ बालपाठ्यानि गुरुगेहगड़तोऽर्भक स्त्र

महाभारत में भी अवन्ति शब्द के बहुवचन के रुप में 'अवन्तिषु' का प्रयोग किया है अतः 'अवन्ति' को जनपद का पर्याय मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। उसी स्थल पर 'सान्दीपनिपुरे' शब्द का आया है अर्थात् यह ज्ञात होता है कि गुरुकुल अवन्ति की राजधानी में स्थित है।[5] विष्णु पुराण में भी अवन्ति व अवन्तिपुर शब्द का प्रयोग हुआ। इससे सिद्ध होता है कि कृष्ण और बलराम का विद्यापीठ नगर में ही अवस्थित था।

पाठ्य साहित्य

अंगानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः।
पुराणां धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश स्त्र
आयुर्वेदो धानुर्वेदो गान्धर्वश्चेव ते त्रयः।
अथैशास्त्रं चतुर्थ तु विद्या ह्याष्टादशैव ताः स्त्र

अर्थात् पुराण में छः वेदाङ्ग, चार वेद, मीमांसा, न्याय, पुराण और धर्मशास्त्र तथा आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्व और अर्थशास्त्र ये अठारह विद्याएँ प्राप्त होती है। वेदत्रयी, कृषि और दण्डनीति की उपलब्ध होती है। इस प्रकार विष्णुपुराण में सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय के साहित्यों का वर्णन प्राप्त होता है।

शिक्षण-पद्धति

शिक्षा का विकास शिक्षक और शिष्य-दोनों की प्रतिभा का परिणाम है। कभी शिक्षक की विलक्षण शिक्षणकला शिष्य के शिक्षाविकास में अद्‌भुत चमत्कृति ला देती है और कभी शिष्य की पूर्व जन्मार्जित संस्कृति से सम्भूत अधीत वा अधीयमान विद्या यथासमय चमत्कृत हो उठती है। अवन्तिपुर में श्री कृष्ण और बलराम को आचार्य सान्दीपनि ने केवल चौसठ दिनों में सांगोपांग धनुर्वेद, सांग चतुर्वेद, सम्पूर्ण शास्त्र और सर्वविध अस्त्र विद्या आदि अशेष ज्ञानक्षेत्र में निपुण कर दिया था।[6]

संस्था और छात्रसंख्या

प्राचीनकाल में एक अध्यापक के पास एक छात्र और अनेक छात्र भी होते थे साथ ही अनेक अध्यापक मिलकर एक छात्र को शिक्षा देते थे। तक्षशीला के आचार्य 500 शिष्यों को पढ़ाने का कार्य करते थे। सामान्यतया एक कक्षा में 20 से अधिक विद्यार्थी अध्ययन नहीं करते थे। वर्तमान काल की हम बात करे तो प्रत्येक विद्यालय में विभिन्न विषयों के अलग-अलग शिक्षक होते है, जो प्रत्येक कक्षा में छात्रों की संख्या 25 से 45 तक हो सकती है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पाठोपकरण

पौराणिक युग में लिखित व मुद्रित ग्रन्थ, लेखनी तथा लेखन-पत्र आदि उपकरण अस्तित्व में होने के प्रमाण स्पष्टरुप से प्राप्त नहीं होते है। आचार्यों द्वारा विद्यार्थियों को शिक्षण की प्रथा केवल मौखिक तौर पर ही दी जाती थी। विद्याओं का रक्षण शिष्योपशिष्य व वंशानुक्रम की परम्परा में श्रुति और स्मृति के द्वारा होता है। पठ्नविधि में व्याकरण शास्त्रीय प्रतिपादन है कि गीत स्वर में, शीघ्रता से, शिरःकम्पन के साथ, लिखित पुस्तक से, अर्थज्ञान के बिना और अल्प कण्ठ से इन छः रीतियों से पठनशील व्यक्ति अधम मना जाता था।

गुरु की सेवा-शुश्रूषा

गुरुकुल में वेदाध्ययन के प्रसंग पर और्व ने सागर से कहा है कि गुरुगृह में गुरुसेवा को अन्तेवासी छात्र को शौच और आचारव्रत का पालन करते हुए गुरु की सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिए। विभिन्न व्रत आदि का आचरण करते हुए स्थिर बुद्धि से वेदाध्ययन करना चाहिये।

स्मृति के युग में छात्रों के लिए यह परम कर्तव्य था कि वे अपने गुरु का राजा, माता-पिता और देवता के समान आदर करें।[7] अपने अध्ययन की सिद्धि के लिए अविक्षिप्तचित्त होकर गुरु की सेवा में प्रवृत्त रहना भी छात्रों के लिए परम विधेय माना जाता है।[8] प्राचीन काल में यह भी लोक विश्वास था कि गुरु की सेवा के आभव में ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है-

गुरुशुश्रूषया ज्ञानं शान्ति योगेन विन्दति।[9]

शिक्षण शुल्क

ब्रह्मचारी एवं अन्तेवासी विद्यार्थी के विधेय कर्मप्रसंग में यह अवश्य कहा गया है कि अपना अभिमत वेद पाठ समाप्त कर चुकने के अनन्तर गुरु की अनुमति से उन्हें गुरु दक्षिणा देकर ब्रह्मचारी को गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिए। शिक्षा समाप्ति के पश्चात् कृष्ण और बलराम ने अपने गुरु से निवेदन किया - कहिये, आपको हम क्या गुरुदक्षिणा दें ? महामति सान्दीपनि ने उनके अतीन्द्रिय कर्म देखकर प्रभास क्षेत्र के खारे समुद्र में डुबकर मरे हुए अपने पुत्र को गुरुदक्षिणा में मांगा। तत्पश्चात् कृष्ण और बलराम ने यमयातना भोगते हुए उस बालक को पूर्ववत् शरीरयुक्त उसके पिता सान्दीपनि मुनि को दे दिया।

प्राचीन भारत में शिक्षणशुल्क के लिए मोल-तोल करना अत्यन्त निन्दनीय समझा जाता था। जो विद्यार्थी शुल्क देने में समर्थ होते थे उन्हें अध्यापक अध्ययन करने से मना नहीं कर सकता था। ऐसे अध्यापक को धार्मिक उत्सवों पर ऋत्विक् का कार्य

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

नहीं कराया और विद्या का व्यवसायी कह कर अपमानित किया जाता था।[10]

शारीरिक दण्ड

प्राचीन काल में शारीरिक दण्ड़ का कम ही प्रयोग किया जाता था, फिर भी हटी विद्यार्थियों को अपनी उपस्थिति से दूर हटाकर व उन्हें उपवास कराया जाता था। इससे यह प्रतीत होता है कि आचार्य शारीरिक दण्ड़ के पक्ष में नहीं थे। मनु यद्यपि समझाने-बुझाने की नीति की भूरि-भूरि प्रशंसा करते है।[11] परन्तु अन्त में पतली छड़ी एवं रज्जु से दण्ड देने की अनुमति दे देते है।

सहशिक्षा

स्त्रीशिक्षा संज्ञक प्रसंग पर विविध विषयक उच्चशिक्षा से शिक्षत अनेक स्त्रियों का वर्णन प्राप्त होता है। उत्तररामचरित में आत्रेयी को कुश और लव के साथ वाल्मीकि के आश्रम में शिक्षाग्रहण करते थे। पुराणों में वर्णित कहोद और सुजाता, रूहु और प्रमदवरा की कथाओं से भी ज्ञात होता है कि बालिकाओं का विवाह पूरी युवती हो जाने पर होता था और वे पाठशालाओं में बालकों के साथ-साथ पढ़ती थी जब समाज में योग्य उपाध्यायाएँ उपलब्ध हो जाती थी, तब लोग अपनी बालिकाओं को अध्ययनार्थ उन्हीं के संरक्षण में भेज देते थे, किन्तु यदि ऐसी उपाध्यायाएँ उपलब्ध नहीं होती तो बाध्यतः उन्हें आचार्यो के पास पुत्रियों को शिक्षा-दीक्षा के लिए भेजना पड़ता थी।

सन्दर्भ

1. प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धति, 1955 ई.-20
2. यावज्जीवमधीते, काशीका, 3/4/30
3. तुलना करें, 1/11/53-55
4. तुलना करें, 3/3/22-23
5. पश्चात् दाक्षिणात्य पाठ-802
6. तुलना करें-5/21-24
7. मनु स्मृति-2/200
8. याज्ञ्यवल्क्य स्मृति, 1/26
9. महाभारतम् उद्योग, 36/52
10. मा मि-1/17
11. तुलना करें-2/159-161

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

गरुड़पुराण में वर्णित आर्थिक विचार

डॉ० आभा दीक्षित

जन-साधारण की दृष्टि में ''गरुड़पुराण'' का महत्व इस कारण अधिक है कि इसमें और्ध्वदैहिक कर्मों का विवेचन किया गया है। एक सामान्य हिन्दू धर्म अनुयायी की दृष्टि में मरणोन्तर कर्मकाण्ड का महत्व बहुत अधिक है। इतना अधिक कि उसका वह प्रायः अपने लिए बडी-बडी कठिनाइयाँ पैदा कर लेता है उन्हें इतना व्यय-भार उठाना पड़ता है कि अनेक गरीबों की उससे कमर ही टूट जाती है और उसका परिणाम उन्हें वर्षों भोगना पड़ता है। परन्तु सत्कर्म और परमार्थ के पथ पर चले बिना भी केवल कर्मकाण्डों के द्वारा परलोक में कल्याण नहीं हो सकता। इसलिए गरुड़पुराण में आय और व्यय के अतिरिक्त पद्धतियों का भी वर्णन मिलता है।

पोषण संबंधी विचार गरुड़पुराण के द्वितीय खण्ड में अध्याय 115 में सदाचार कथन के अन्तर्गत सत्पुरुषों के आचार, धर्म, शिष्टाचार का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। वर्णो के कर्म-धर्म के लक्षण सत्य, यज्ञ, तप तथा दान बताए गए है। इस अध्याय में आश्रम-व्यवस्था का भी विस्तृत वर्णन प्राप्त होता हैं इसके साथ ही पोष्य (पोषण करने के योग्य) वर्ग के बारे में कहा गया है कि माता-पिता, गुरु, भ्राता, प्रजा, दीन तथा आश्रम में रहने वाले अतिथि और अग्नि सब पोष्य कहे गए है। पोष्य वर्ग का भरण करना, परम् प्रशस्त एवं स्वर्ग का साधन है।

तृतीय च तथा भागे पोश्यवर्गार्थसाधनम् ।
माता पिता गुरुर्भ्राता प्रजा दीना : समाश्रिताः स्त्र
अभ्यागतोऽतिथिष्चाग्निः पोश्यवर्गा उदाहृतः ।
भरणं पोश्यवर्गस्य प्रषस्तं स्वर्ग साधानम् स्त्र

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अतएव पोष्य वर्ग का भरण-पोषण यत्न पूर्वक करना चाहिए, जो केवल अपने ही उदर को भरते हुए जीवन यापन करते है वे जीवित रहते हुए भी मृतक के समान है।

अर्थ का आशय एवं आय उपार्जन

गरुड़पुराण में अर्थ की परिभाषा भिन्न प्रकार की प्राप्त होती है। जिसमें कहा गया है कि यह भूमि समस्त प्रकार की रत्नों की खान है। धान्य, पशु, स्त्रियाँ ये सब अर्थ के कार्यों के योग ही है। धन की प्राप्ति के कई प्रकार बताए गए है -

पहला-विरासत से, दूसरा-किसी के द्वारा प्राप्त उपहार से, तीसरा-स्त्रीधन से प्राप्त होता है।

अर्थेभ्योऽपि विवृेद्धभ्यः सम्भूतेयस्ततस्ततः ।
क्रियाः सर्वा प्रवर्न्तन्ते पर्वतेभ्य इवापगा :।
सर्वरत्नाकरा भूमिर्धान्यानि परावः स्त्रियः ।
क्रमायन्त प्रतिदन्तं प्राप्त सह भार्य्यया ।
अविशेषेण सर्वेशां वर्णाना त्रिविधं धनम् ।

आय के स्त्रोत - वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत आय के विभिन्न स्त्रोतों को भी विस्तृत वर्णित किया गया है।

ब्राह्मण के आय स्त्रोत के तीन लक्षण-यजमान से प्राप्त, अध्यापन से प्राप्त और विशुद्ध प्रतिग्रह से प्राप्त होने वाला धन होता है। इसी प्रकार क्षत्रिय का धन भी तीन प्रकार का होता है, जो वैशेषिक धन कहलाता है। गरुड़ पुराण के अनुसार शुद्ध धन वह है जो करों के द्वारा न्यायोचित रुप से प्राप्त किया जाता है। दूसरा दण्ड के बदले जो राजा के पास आता है। तीसरा वह धन है जो विजय प्राप्त करके प्राप्त होता है। इसी प्रकार वैश्य का धन भी तीन प्रकार का हुआ करता है-कृषि के द्वारा प्राप्त धन, पशु-पालन से प्राप्त होने वाला धन, वाणिज्य व्यवसाय से मिलने वाले मुनाफे का धन। इसी प्रकार, शूद्रों के पास वैशेषिक धन होता है जो कि तीनों वर्णों के अनुग्रह से प्राप्त होता है।

वैशेषिकं धनं दृष्टं ब्राह्मणस्य त्रिलक्षणम् ।
याजनाध्यापने नित्यं विशुदृश्च प्रतिग्रहः ।
त्रिविधं क्षत्रियस्यापि प्राहुवेशेषिक धनम् ।
शूद्रार्थ लब्धाकरजं दण्डाप्तं जयज तथा ।
वैशेषिकं धन् दृष्टं वैश्यस्यापि त्रिलक्षणम् ।
कृषिगोरक्षवाणिज्यं शुद्रस्यैभ्यंस्त्वनुग्रहात् ।

इन वैशेविक धन के अलावा यदि ब्राह्मण आपतिकाल में गौर-रक्षण से तथा

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

वाणिज्य के द्वारा भी यदि कोई धन प्राप्त होता है तो उसे पाप नहीं लगता है। ऋषियों ने जीवन निर्वाह के कई उपाय बतलाए है। जिनमें ब्याज को आय प्राप्ति का प्रमुख स्त्रोत बताया है। इसके अलावा ब्याज को अधिक लाभप्रद बताते हुए कहा गया है कि, दूसरे देश में वस्तुओं का निर्यात करने पर भी जो धन की प्राप्ति तथा वृद्धि होती है उससे भी अधिक धन की वृद्धि ब्याज के द्वारा एक ही स्थान पर हो जाती है इसके लिए कहीं जाना नहीं होता।

व्यय एक दान संबंधी निर्देश

गरुड़पुराण में कहा गया है कि मनुष्य को जो भी लाभ प्राप्त होता है उससे उसे पितृगण, देवता और ब्राह्मणों का पूजन करना चाहिए। ये सब तृप्त हो जाएंगे तो उस ब्याज से प्राप्त धन का दोष नहीं लगता अर्थात् ब्याज से प्राप्त धन को केवल धर्म हेतु ही व्यय किया जाना चाहिए।

आपत्काले स्वयं कुर्वननैनसा मुञ्यते द्विजः।
बहवो वर्तनोपाया ;षिभिः परिकीर्न्तिताः ।
सर्वेषामपि चैवैशां कुशीदमधिाकं विदुः ।
अनावृष्टया राजभयान्मूषिकाधै रुपद्रवैः ।
कृत्यादिके भवेद्धध साकुशीदे विघते।
देशं गतानां या वृद्धिर्नानापण्योपजीविनाम्।
कुशीद कुर्वतः सभ्यक्सस्थितस्यैवा जायते।
लब्धलाभः पितृन्देवान्ब्राह्णांश्चैव पूजयेत्।
ते तृप्तास्तस्यतद्दशं रामयन्ति न संशयः।

गरुड़ पुराण में जीवन निर्वाह हेतु 10 साधन बताऐं है - विधा, शिल्प, भृति, सेवा, गौ-रक्षा, दुकानदारी, खेती, वृत्ति, भिक्षा तथा ब्याज। ब्राह्मणों के लिए इस अध्याय में यह बताया गया है कि दान साधु पुरुष से ही लेना चाहिए। असाधु पुरुष से दान लेने का विचार ब्राह्मणों को नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार गरुड़ पुराण में आय के स्त्रोतों की विस्तृत व्यवस्था की गई है जिससे यह विदित होता है कि धन-प्राप्ति पवित्र स्त्रोतों से ही होना चाहिए तथा उसका व्यय भी पवित्र कार्यो के लिए ही होना चाहिए। व्यय हेतु दान को सबसे परम धर्म बताया है। ''दान ही स्वर्ग है तथा दान ही राज्य है'' । अर्थात् दान से स्वर्ग और राज्य की प्राप्ति होती है। तप, ब्रह्मचर्य, यज्ञ और स्नान से भी जो पुण्य प्राप्त नहीं होता वो दान से प्राप्त होता है।

गरुड़पुराण में कहा है कि देवता, मुनिगण, नाग, गन्धर्व और गुह्यक ये सभी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

इस लोक में धर्मनिष्ठ पुरुष का ही पूजन करते है। धन से सम्पन्न तथा कामी पुरुष की काई भी पूजा नही करता है अपने अनन्त बल वीर्य से, प्रजा से अथवा पुरुषार्थ से मनुष्य अलभ्य पदार्थो को प्राप्त करता है। फिर परिवेदना क्या है ? अर्थात् संतोष परम सुख है।

देवता मुनयो नागा गन्धर्वा गुन्धर्वा गुह्यका हर ।

धामिकं पूजयन्तीह न धनाढ्यं न कामिनम् ।

अनन्त बलवीरर्येण प्रज्ञया पोरुषेण वा ।

अलभ्यं लभते मर्त्यस्तत्र का परिदेदना ।

अतः समस्त प्राणियों पर दया करके मुनष्य को भली-भांति जीवन निर्वाह करना चाहिए। इसके अतिरिक्त पुण्य कार्य - जैसे कुऑ, बावड़ी तथा तलाब और उद्यान का निर्माण करके मनुष्य अपने 21 कुलों का उद्धार करके अंत में विष्णु लोक को प्राप्त करता है।

निष्कर्ष

गरुड़पुराण की गणना परलोक वर्णन की दृष्टि से सर्वप्रथम है यह मुख्य रुप से इसी के लिए प्रसिद्ध है और अनेक प्रदेशों की हिन्दू जनता द्वारा श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। इसके आधार पर अनेक आलोचकों ने इसका महत्व घटाने की चेष्टा की है और कहा है कि ये बातें दान के लोभी ब्राह्मणों की गढ़ी हुई है, इससे विश्वसनीय नहीं मानी जा सकती यद्यपि पुराणों मे अतिश्योक्ति की शैली उपयोग किया गया है तथापि इसी कारण से इसे झूठा या सच्चा नहीं बताया जा सकता। इसके अन्तर्गत परोपकार, आय की शुद्धता, श्रम विभाजन, ब्याज, संतोष आदि सद्गुणों का वर्णन भी मिलता है।

अतः निष्कर्ष रुप में कह सकते है कि गरुड़पुराण में सद्कर्मों से आय की प्राप्ति तथा लोकोपयोगी कार्यों में व्यय को लाभप्रद व पुण्य प्रदान करने वाला बताया गया है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पुराणों में माँ और पत्नी के रूप में नारी का आदर्श स्वरूप

श्रीमती विनीता राजपुरोहित*

भारतीय समाज में नारी अपने आदर्श स्वरूप के कारण एक विशिष्ट गौरवपूर्ण स्थान पर विराजमान या प्रतिष्ठित है। पाश्चात्य शिक्षा एवं प्रचार से भारत में भी नारी अधिकार का आन्दोलन चल पड़ा है। पुराणों में नारी का एक ऐसा सुन्दर आदर्श चित्र प्रस्तुत किया गया है जिसे संसार से कुछ लेना नहीं है वह हमारी देवी अन्नपूर्णा है, देना ही जानती लेने की आकांक्षा उसे नहीं। यद्यपि श्रुति-स्मृति पुराण इतिहास आदि से लेकर वर्तमान समय तक के संत महात्माओं के वैराग्य की प्राप्ति के प्रसंग में नारी-निन्दा की है परन्तु उन्होंने नारी के आदर्श की प्रचुर प्रशंसा कर भारतीय संस्कृति के इतिहास में नारी की गौरवशाली स्थिति को भी रेखांकित किया है। यदि नारी विषयक इन भिन्न-भिन्न विचारों को छोड़ दिया जाए तथा पुराणों में वर्णित नारी के आदर्श स्वरूप की ओर दृष्टिपात किया जाए तो नारी समाज को ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारतीय समाज को अपनी संस्कृति पर गर्व होगा। यद्यपि नारी के कई स्वरूप है परन्तु मैंने पुराणों में वर्णित केवल माँ एवं पत्नी के आदर्श रूप को ही इस शोध पत्र में प्रस्तुत किया है।

माँ के रूप में आदर्श नारी – पुराणों में माँ के लिए माता, जननी, शिवा, त्रिभुवन, श्रेष्ठा, देवी, परम आराधनीया, दया, शान्ति, क्षमा, घृति, स्वाहा, स्वधा, गौरी, पद्मा, विजया, जया, सर्व दुखहा, निर्दोषा, दयार्दहृदया तथा इक्कीस नाम आये है।[1] गंगा के

---

* शोधार्थी, प्रा. भा. इ., सं. एवं पुरातत्व अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन (म.प्र.)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

समान कोई तीर्थ नहीं, भगवान विष्णु के समान कोई प्रभु नहीं है, शिव के समान कोई पूजनीय नहीं है तथा माता के समान कोई गुरू नहीं है। पुराणों में माता को पिता से भी बढ़कर बताया गया है क्योंकि वह बालक का पालन-पोषण करती है। पद्मचरित में भी माता के रूप में नारी को अपरिमित श्रद्धा का भाजन बताया है।[2] महाभारत में भी माता का स्थान पिता से भी अधिक माननीय बताया है क्योंकि वह मनुष्य की जन्मदात्री है।[3]

पुराणों के विभिन्न आख्यानों एवं श्लोकों में माता का आदर्श स्वरूप एवं उसका महत्व दृष्टिगत होता है। कृष्ण का पुत्र प्रद्युम्न - मायावती के साथ द्वारका आने पर माता को प्रणाम करता है तथा माँ भी उसका मस्तक चुमती है।[4] घर से दूर रहने पर पुत्र शोक से रूक्मिणी का विह्वल रहना तथा बहुत दिनों की दुरीयों के बाद पुत्र प्रद्युम्न के मिलने पर उसे वात्सल्य-विभोर हो सहलाने का विवरण माता के आदर्श स्वरूप का परिचायक है।

नारी का गौरवशाली मातृत्व मोह का बंधन संतान की वास्तविक प्रगति में बाधक नहीं बनता। माता कौशल्या का वात्सल्यमय कोमल हृदय यद्यपि राम वियोग की आशंका से अत्यधिक विदीर्ण होता है परन्तु उनका मातृत्व उन सभी कोमल भावनाओं से ऊपर राम को वनवास जाने के आदेश प्रदान करता है।[5] लक्ष्मण का त्याग सराहनीय है, परन्तु इसका श्रेय लक्ष्मण को नहीं उसका माता सुमित्रा को है, उनकी नवविवाहित पत्नी उर्मिला को है। पुराणों में माँ का वह आदर्श स्वरूप भी झलकता है। जिसमें वह अपनी सन्तानों को अपने उद्देश्य के अनुरूप आदर्श के साँचे में ढालती है। हमारी संस्कृति के अनुसार अपनी संतानों का निर्माण करती है तथा पुत्र में वह आदर्श यथार्थ की संभाव्यता के रूप में मुखरित हो उठता है। कुन्ती ने पाण्डवों(पुत्रों) को प्रेरित किया था। क्षत्रिय नारी के स्तनपान को युद्ध भूमि में सार्थक बनाने के लिए। माता मदालसा ने लोरियों के रूप में जो शिक्षा दी थी वह उसके पुत्रों के लिए एक स्थायी प्रेरणा बन गया और संसार की वास्तविकता को पहचानकर वे जीवनमुक्त की अवस्था को प्राप्त हुए।

पुराणों में भी माँ का वीरांगना रूप भारतीय संस्कृति के आदर्श को प्रस्तुत करता है।[7] पुत्र के जन्म काल में माता को जो पीड़ा उठाना पड़ती है वह तभी सफल होती है जब पुत्र शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें अथवा युद्ध में लड़ता हुआ मारा जाये।[8]

ऋग्वेद काल से ही माता को वीर जननी कहकर सम्मानित किया गया है और माता भी वीर पुत्रों पर गर्व का अनुभव करती हुई पाई गई है। अदिति को बलवान पुत्र उत्पन्न करने वाली बलवती माता के रूप में चित्रित किया है।[9] महाभारत में भी माता की श्रेष्ठता के लिए कहा गया है - वह सन्तान को जन्म देने से जननी उसके अंगों के पुष्टिवर्धन से अम्बा और वीर सन्तानों को पैदा करने से वीरसु है।[10]

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पौराणिक कथाओं में भी माँ का वह आदर्श स्वरूप आज भी मानो भारतीय नारी संरक्षा कर रहा है तथा भारतीय संस्कृति के आदर्श की गवाही दे रहा है। ये माताएँ समाज में अपना स्थान खोजने नहीं गई थी वरन् समाज ही वात्सल्य का भिखारी होकर उनके आँचल की छाया में अभयदान माँगने जाता था। आज भारतवर्ष लाचार है इसलिए नहीं कि उसके पास धन अथवा शस्त्र की कमी वरन् उस आदर्श मातृत्व का अभाव हो गया है जिसकी दिव्यता पर प्राचीन भारत की समृद्ध शान्त और प्रोन्नत अवस्था आश्रित थी। स्वतंत्र भारत में वीर, साहसी, मेधावी, पवित्र एवं सर्वतोभावेन उन्नतिशील संतति का सृजन हो, इसके लिए नारी का वह आदर्श माँ रूप प्रेरणा पुंज के रूप में आज पुनः स्थापित करने की आवश्यकता है।

पत्नी रूप में आदर्श नारी – पुराणों में पत्नी के लिए कान्ता, जया, प्रिया, प्रियांगना, भामिनी, भार्या, वधु, वल्लभा, पत्नी, प्रियतमा, बहु, स्त्री, सदाचारिणी, श्रीमती आदि शब्द प्रयुक्त हुए है।[11] भारतीय संस्कृति में नारी का पत्नी रूप जिसमें कोई प्रतिद्वंद्विता, कोई संघर्ष नहीं है।

पति में भगवान की मूर्ति स्थापित करके वह अपने अपनत्व का समर्पण कर देती थी और वह आत्म निवेदन इतना पूर्ण इतना गम्भीर, इतना व्यवस्थित होता था कि कोई परिस्थिति, कोई संकट उसे अपने कर्त्तव्य से विमुख करने में समर्थ नहीं हो सकती थी। पुराणों में भी ऐसे प्रसंग आये हैं जिसमें पतिव्रता नारी अलौकिक शक्ति-पूंज के रूप में हमारे सामने उपस्थित होती है। मार्कण्डेय पुराण के सोलहवें अध्याय में कुष्ठरोग से पीड़ित पति की साध्वी स्त्री शाण्डिली द्वारा सूर्य का उदय रोक देने की कथा पवित्रता नारी की आलौकिक तेज को प्रकट करती है। इसी तरह सावित्री उपाख्यान एक महान पतिव्रता नारी को हमारे सम्मुख उपस्थित करता है जिसके आगे साक्षात् यमराज भी झुक जाता है और उसके स्वामी के जीवन को लौटा देता है। शिवपुराण की रूद्र संहिता के पार्वती खण्ड में द्विज पत्नी द्वारा पार्वतीजी को पतिव्रत धर्म का जो उपदेश दिया है उसमें पत्नी रूप में भारतीय नारी का आदर्श ही झलकता है। पार्वतीजी को इस पतिव्रत धर्म के कारण ही 'नारी शिरोमणि' की पदवी प्राप्त हुई। इसी तरह अनुसुया द्वारा ब्रह्मणी को जिसने पति तप से सूर्योदय को रोक दिया था जो उपदेश दिया उसमें भी आदर्श पतिव्रता नारी को देखा जा सकता है। पतिव्रता स्त्रियों में सबसे पहले दक्ष कन्या सती का नाम लिया जाता है। उन्हीं के नाम पर अन्य पतिव्रता स्त्रियाँ भी 'सती' उपाधि से विभुषित हुई है। वाल्मिकी, व्यास, कालिदास और भवभूति ने भगवतीजनक नन्दिनी का चरित्र भारतीय पत्नी के आदर्श रूप में स्थापित किया है। वाल्मिकी रामायण के अनेक प्रसंग भी नारी के आदर्श रूप के प्रमाणभुत है। रावण के बार-बार प्रार्थना करने पर सीता ने जो

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अवहेलना सूचक वचन कहे है उससे भारतीय नारी का गौरव सुरक्षित है।

गृहस्थ धर्म के प्रतिपादन के साथ पुराणों में पत्नी की महत्ता को बतलाया गया है और सामाजिक जीवन में उसे उचित स्थान दिये जाने का समर्थन किया है। बौद्ध युग में नारी को मोक्ष प्राप्ति में बाधक समझा गया। बुद्ध भी अपनी स्त्री यशोधरा को आकस्मिक रूप में छोड़कर चले गये थे। पुराणों में इस धारण को सर्वथा अग्राह्य बतलाकर स्त्रियों के ऐसे उपाख्यान उपस्थित किये गये जिनमें उनको धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की पूर्णरूप से सहायिकी माना गया।[12] मार्कण्डेय पुराण में मंदालसा उपाख्यान में कहा गया है - पति के भार्यो की सदा रक्षा और पालन करना चाहिए। भार्या भर्ता की सहायिका होने पर सम्यक प्रकार धर्म, अर्थ, काम की सिद्धि का निमित्त होती है।[13] भार्यो एवं भर्ती दोनों ही जब परस्पर में अनुकूल होते हैं, तभी धर्म की प्राप्ति होती है। उदाहरण के लिए देवता, पितृ, भृत्य और अतिथियों का सत्कार न होने से धर्माचरण की पूर्ति नहीं होती। यदि पुरूष पर्याप्त धन कमाकर ले आवे पर घर में भार्या न हो तो वह सब धन बिना कुछ लाभ पहुँचाये धाय को प्राप्त होता है।[14] इसलिए पुरूष और स्त्री जब समान रूप से धर्म का पालन करते हैं तभी तीनों का लाभ करने में समर्थ होते है। वास्तव में जैसे एक पहिये का रथ नहीं चल सकता और एक पंख की चिड़ियाँ नहीं उड़ सकती वैसे ही भार्या से रहित अकेला पुरूष कोई भी कार्य नहीं कर सकता। इस बात को पुराणकोश ने भी किसी न किसी रूप में स्वीकार किया है। पुराणों में तो आदर्श पतिव्रता नारी के लिए यहाँ तक कहा गया है कि -पतिव्रता का चरण जहाँ-जहाँ धरती का स्पर्श करता है वह स्थान तीर्थ भूमि की तरह मान्य है जैसे गंगा में स्नान करने से शरीर पवित्र होता है उसी प्रकार पतिव्रता का दर्शन करके सम्पूर्ण गृह पवित्र हो जाता है।

नारी सृष्टि की उत्पादिका, प्रतिपालिका और कष्ट में सांत्वना देने वाली है। मार्ग को सुगम बनाने का एकमात्र साधन भी वही है। मानव को पृथ्वी से स्वर्ग तक पहुँचाने के लिए एकमात्र साधन पतिव्रता नारी को माना गया है।

अपना आदर्श रूप स्थापित करने के लिए कितना त्याग करना पड़ा इसके उदाहरण पौराणिक कथाओं में भरे पड़े हैं तथा इसकी पुष्टि कई इतिहास ग्रंथों से भी होती है। पुराणों में वर्णित उन सभी नारियों का यहाँ वर्णन करना संभव नहीं है जिन्होंने अपने त्याग से अपने गुणों से भारतीय इतिहास को स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य बनाया है। यदि भारतवर्ष की नारी अपना धर्म परित्याग कर देती तो आज आर्यावर्त अखिल विश्व की दृष्टि में कभी का गिर गया होता। यदि देखा जाये तो हमारे देश की आन-बान शान नारी समाज ने ही रखी है। कबीरदासजी ने भी कहा है -पतिव्रता मैली भली, गले काँच की पोत। सब सखियन में यो दिपै-ज्यौ रविससि की जोत।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

आधुनिक युग में यह आपत्ति हो सकती है कि ये सब सतयुग की बाते हैं। कलियुग में इनकी संभावना नहीं परन्तु राजपुताने का स्वर्ण इतिहास आज भी विलुप्त नहीं हुआ है। चूंडावत सरदार की नवोढ़ा पत्नी का अपूर्व बलिदान आज भी कनकाक्षरों में जगमगा रहा है। पुराणों में नारी को भोग की सामग्री मानना उसका अपमान माना है। परन्तु आज नारी आये दिन वासनाओं की शिकार हो रही है, विवाह-विच्छेद के नियम के अंतर्गत आये दिन पति-पत्नी में तलाक हो रहे है। दुःख है कि आज कृत्रिम सभ्यता ने नारी के उस तपयुक्त स्वभाव को उसे माया मोहित करके बुरी तरह से छीन लिया है अथवा यो कहें कि नारी से बाह्य संसार की चकाचौंध से प्रभावित होकर उसे स्वयं ही खो दिया है। आज समाज में नारी को स्थान अवश्य मिला है परन्तु पूजनीय पुराणों में वर्णित उस आदर्श नारी के रूप में नहीं। आज विपरीत परिस्थितियों में नारी-जाति के लिए सतीत्व धर्म की उसके सर्वविध कल्याण का एक मात्र उपाय है। पुरूषों को भी उन्हें स्वधर्म पर प्रतिष्ठित करने में सहयोग एवं सुविधा प्रदान करनी चाहिए। इससे समाज एवं राष्ट्र की उन्नति होगी तथा भारतीय नारी का जो आदर्श स्वरूप था, वह इतिहास में उसी तरह स्वर्णाक्षरों में सुरक्षित रह सकेगा।

सन्दर्भ

1. पुरोहित, सोहन कृष्ण, पुराणों में भारतीय संस्कृति, जोधपुर 2007 से उद्घृत
2. जैन, रमेशचन्द्र, पदमचरित में प्रतिपादित भारतीय संस्कृति, पृ.37
3. शान्ति रानी, महाभारत में धर्म, पृ. 337
4. आचार्य श्रीराम शर्मा(सं) हरिवंशपुराण, प्रद्युम्न मायावती का द्वारिका आगमन, श्लोक 33-36
5. श्यामसिंह टीका, रामचरित मानस रचयिता तुलसीराम, पृ.404
6. मार्कण्डेय पुराण (सं) पं.श्रीराम शर्मा आचार्य-मदालसा का पुत्र उल्लेपन श्लोक 11-62
7. मार्कण्डेय पुराण, मदालसा उपाख्यान , श्लोक 44-46
8. या सुबाहु स्वडगुरि सुषम बहुसुवरी-ऋग्वेद 2/32/711(उदधृत-ऋग्वेद 2.32.711
9. महाभारत 12.266.31
10. चौधरी राममूर्ति हरिवंश पुराण एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ.89
11. मार्कण्डेय पुराण प्रथम खण्ड दत्तात्रेय माहात्म्य वर्णन, श्लोक 31-32 संपादक श्रीराम शर्मा आचार्य
12. मत्स्यपुराण प्रथम खण्ड (सं) श्रीराम शर्मा आचार्य, भूमिका, पृ. 27
13. शिवपुराण प्रथम खण्ड (सं) श्रीराम शर्मा आचार्य श्लोक 1-80, पृ. 389-402
14. मार्कण्डेय पुराण दत्तात्रेय माहात्म्य वर्णन, श्लोक 61-63, वाल्मीकि रामायण, 5.26.10
15. मार्कण्डेय पुराण मदालसा उपाख्यान (सं) श्रीराम शर्मा आचार्य श्लोक 19-66, स्कन्द पुराण धर्माख्य खण्ड, अ.77

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

Tilak - Tilaka
(symbol on forehead or between eyebrows)

Aparna Ray

The tilak (Sanskrit tilaka, "mark") is a mark worn on the forehead and other parts of the body for spiritual reasons.

On a man, the tilak takes the form of different lines, indicating his religious affiliation. On women, a tilak usually takes the form of a decorative dot (or Bindi), which usually denotes marriage and auspiciousness, but which has its own symbolism. In a woman's case a Tilaka is a sign of her being in wedlock Among men, the Tilaka has been traditionally interpreted as a good luck charm.

The tilak is worn every day by sadhus and pious householders, and on special occasions like weddings and religious rituals. A tilak is also applied by a priest during a visit to the temple as a sign of the deity's blessing, for both men and women (and western tourists, too). Tilak marks are applied by hand or with a metal stamp. They might be made of ash from a sacrificial fire, sandalwood paste, turmeric, cow dung, clay, charcoal, or red lead. In addition to its religious symbolism, the tilak has a cooling effect on the forehead and this can assist in concentration and meditation. A dot between the eyebrows symbolizes the third eye of Lord Shiva.

Saivites (followers of Shiva) wear a tilak of three horizontal lines across the forehead, with or without a red dot.

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

Sometimes a crescent moon or trident is included. The devotees of Shiva usually use sacred ashes (Bhasma) for the tilak.

Among Vaishnavites (followers of Vishnu), the many tilak variations usually include two or more vertical lines resembling the letter U, which symbolizes the foot of Vishnu. There is sometimes a central line or dot. Most Vaishanative tilaks are made of sandalwood paste (Chandan). The worshippers of the goddess Devi or Shakti apply Kumkum, a red tumeric powder.

Usually Tilak is worn on religious occasions, its shape often representing particular devotion to a certain main deity: a 'U' or 'V' shape stands for Vishnu, a group of three horizontal lines for Shiva. It is not uncommon for some to meld both in an amalgam marker signifying Hari-Hara (Vishnu-Shiva indissoluble).

The Tilaka is normally a vermilion mark applied on the forehead. This mark has a religious significance and is a visible sign of a person as belonging to a particular religious faith. The Tilaka is of more than one colour although normally it is vermilion. It is applied differently by members of different religious sects and sub-sects.

It is applied as a 'U' by worshippers of lord Vishnu and is red, yellow or saffron in color. It is made up of red ochre powder (Sindhura) and sandalwood paste (Gandha). Worshippers of lord Shiva apply it as three horizontal lines and it consists of ash (Bhasma).

Thus there is a variety of pigments; red, yellow, saffron, white, grey and black, etc. These pigments are not only applied on the forehead but in some cases they are applied also on the forearms and the abdomen.

Hindu women have been using Tilaka in form of a red dot "Bindi" for many millennia. The tilaka are worn as a beauty mark by women of all faiths, with no adherence of Hindu belief. They generally use dots (bindi) rather than the lines and larger marks worn by men. The term "Bindi" seems to be more often used for beauty marks. Sometimes the terms sindoor, kumkum, or kasturi are used, by reference to the material used to make the mark. Married Hindu women may also wear additional Tilaka between the parting of the hair above forehead. This mark serves

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

to indicate marital status.

Bindi can usually be described as a traditional red circular mark or dot which can vary from small to large. When this is accompanied by a vermillion mark on the parting of hair just above the forehead, it indicates that the particular lady is married. The term 'bindi' is derived from the Sanskrit word 'bindu' meaning "a drop or a small dot or particle". Even though traditionally, bindi is a red colored dot, it can be worn in other colors also, like yellow, orange and so on. The shape and size of the bindi can also vary.

Conventionally, it's the Hindu married women who wear bindi. But, this mark can have several meanings and so, you may also see unmarried girls and even children wearing it. It's the occasion, the color of the bindi and its shape that determines what it denotes. The customary bindi is made with red sindoor powder. The bindi is called the tilak when it's applied on the forehead of a person, at the conclusion of a religious function or havan.

The purpose of wearing a bindi can also vary. If it covers the entire forehead in three horizontal lines, then it denotes the wearer is an ascetic or belongs to a particular sect (like Brahmin). Sometimes, the bindi is used for mere beautification purpose by females. In this case, you may also find her wearing a small jewelry instead of the typical red dot. Though in India, a widow cannot wear a vermillion, she is free to sport a bindi.

Bindi is called by different names in different languages of India and is also know as Tika. Thus, alternative names for bindi is Pottu in Tamil and Malayalam, Tilak in Hindi, Bottu or Tilakam in Telugu, Bottu or Tilaka in Kannada and Teep meaning "a pressing" in Bengali. Sometimes, the terms sindoor, kumkum, or kasturi are used depending upon the ingredients used in making the Bindi mark.

How to apply Vishnu Tilaka (urdhva-pundra) on one's body

Vishnu-Tilaka refers to clay markings (Gopi-chandan) that are worn on the forehead and other parts of the body by Vaishnavas, signifying their devotion to Lord Krishna or Vishnu. These symbolic markings consecrate the body as the Lord's temple. The U-shaped mark represents the heel of Lord Visnu, and the oval part represents the Tulasi leaf.

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

Tilaka, the mark on the forehead, is said to be urdhva-pundra. Pundra means "lotus". In this context, it refers to the lotus-feet of Shri Hari. Urdhva means "upward". The lotus- feet of Shri Hari viewed from the heel resemble lotus flowers with five petals. The tilaka mark is therefore a symbol for the imprint of the lotus-feet of Shri Hari. It is the mood of a Vaisnava, in an attitude of reverential submission, that he desires to place his head beneath the lotus feet of his Beloved.

Tilaka is applied to twelve parts of the body, and the twelve names of the Lord are recited with each application. "When putting the twelve tilaka marks on the twelve places of the body, one has to chant the mantra consisting of the twelve Vishnu names. After daily worship, when one anoints the different parts of the body with water, these names should be chanted as one touches each part of the body." [Caitanya-caritamrita Madhya 20.202]

To apply tilaka, start with a little Ganges or Yamuna water (if you don't have any, get some water, and stirring it with your right middle finger, chant:

om
ganga cha yamune chaiva
godavari saravati
narmade sindho kaveri
jale 'smin sannidhim kuru

"O Ganges, O Yamuna, O Godavari, O Saravati, O Narmada, O Sindhu, O Kaveri, please become present in this water."

Put the water in your left hand, and rub the hard clay of tilak into the water, creating a wet paste out of the clay. Begin by putting your ring finger of the right hand into the clay, and starting between the eyebrows, bring the finger straight up to the hairline, making two straight lines. It should look like a long, narrow U-shape. Then use some more tilak to make the Tulasi leaf on your nose, it should extend about 3/4 of the way down your nose.

Chant the following verses while rubbing gopi-candana (sacred yellow clay) in your right palm;

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

lalate keshavam dhyayen / narayanam athodare
vakshah-sthale madhavam tu / govindam kantha-kupake
vishnum ca dakshine kukshau/bahau ca madhusudanam
trivikramam kandhare tu/vamanam vama-parshvake
shridharam vama-bahau tu/hrishikesham tu kandhare
prishthe ca padmanabham ca/katyam damodaram nyaset
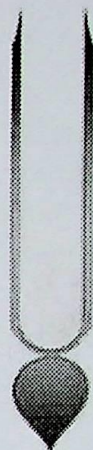
While marking the body with tilaka, one should chant the following mantra, which consists of the twelve names of Lord Vishnu.When one marks the forehead with tilaka, he must remember Keshava. When one marks the lower abdomen, he must remember Narayana. For the chest, one should remember Madhava, and when marking the hollow of the neck one should remember Govinda. Lord Vishnu should be remembered while marking the right side of the belly, and Madhusudana should be remembered when marking the right arm. Trivikrama should be remembered when marking the right shoulder, and Vamana should be remembered when marking the left side of the belly. Shridhara should be remembered while marking the left arm, and Hrishikesha should be remembered when marking the left shoulder. Padmanabha and Damodara should be remembered when marking the back." [Caitanya-caritamrita Madhya 20.202]

As you apply the tilak to your body, chant the following mantras:

forehead	*om keshavaya namah*
middle belly	*om narayanaya namah chest om madhavaya namah hollow of throat om govindaya namah*
right side belly	*om vishnave namah*
right upper arm	*om madhusudanaya namah*
right shoulder	*om trivikramaya namah*
left side belly	*om vamanaya namah*
left upper arm	*om shridharaya namah*
left shoulder	*om hrishikeshaya namah*
upper back	*om padmanabhaya namah*
lower back	*om damodaraya namah*

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri
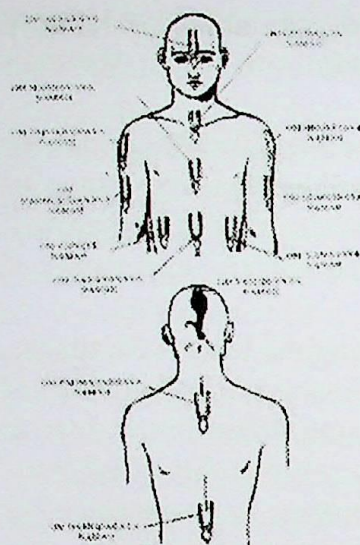
The shikha (hair-tuft or ponytail) area is not marked with tilaka; rather, after washing the right hand, wipe the remaining water on your shikha while chanting *om vasudevaya namah.*
The Nectar of Devotion (Bhakti-rasamrita-sindhu of Shrila Rupa Gosvami) stresses the importance of tilaka (urdhva-pundra)

In the Padma Purana there is a statement describing how a Vaishnava should decorate his body with tilaka and beads: "Persons who put tulasi beads on the neck, who mark twelve places of their body as Vishnu temples with Vishnu's symbolic representations [the four items held in the four hands of Lord Vishnu-conch, mace, disc and lotus], and who have Vishnu tilaka on their forehead, are to be understood as the devotees of Lord Vishnu in this world. Their presence makes the world purified, and anywhere they remain they make that place as good as Vaikuntha."

A similar statement is in the Skanda Purana, which says: "Persons who are decorated with tilaka or gopi-candana [a kind of clay resembling fuller's earth which is produced in certain quarters of Vrindavana], and who mark their bodies all over with the holy names of the Lord, and on whose neck and breast there are tulasi beads, are never approached by the Yama-dutas." The

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

Yama-dutas are the constables of King Yama (the Lord of death), who punishes all sinful men. Vaishnavas are never called for by such constables of Yamaraja. In the Shrimad-Bhagavatam, in the narration of Ajamila's deliverance, it is said that Yamaraja gave clear instructions to his assistants not to approach the Vaishnavas. Vaishnavas are beyond the jurisdiction of Yamaraja's activities.

Always remember Vishnu. While decorating the body with tilaka, we give protection to the body by chanting twelve names of Vishnu. Although Govinda, or Lord Vishnu, is one, He has different names and forms with which to act differently. But if one cannot remember all the names at one time, one may simply chant, "Lord Vishnu, Lord Vishnu, Lord Vishnu," and always think of Lord Vishnu. Vishnor aradhanam param: this is the highest form of worship. If one remembers Vishnu always, even though one is disturbed by many bad elements, one can be protected without a doubt. The AAyurveda-shastra recommends, aushadhi cintayet vishnum: "even while taking medicine, one should remember Vishnu", because the medicine is not all and all and Lord Vishnu is the real protector. The material world is full of danger (padam padam yad vipadam). Therefore one must become a Vaishnava and think of Vishnu constantly. This is made easier by the chanting of the Hare Krishna maha-mantra. Therefore Shri Chaitanya Mahaprabhu has recommended, kirtaniyah sada harih [Cc. adi 17.31] param vijayate shri-krishna-sankirtanam, and kirtanad eva krishnasya mukta-sangah param vrajet.

Gopi-chandana Mahatmya

The Glories of Gopi-candana

According to the Gaudiya Vaishnava tradition, gopi-candana, or the sacred clay from Dvaraka, is applied on the body in twelve places while reciting mantras to Lord Vishnu. This process purifies one's body, designating it as a temple of the Lord. Besides purification, the tilaka also offers the wearer protection from ghosts, evil influences, bad dreams, accidents and many other things. It keeps one's mind calm and allows one to constantly remember Lord Krishna.

The following story from the Garga Samhita describes

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

the wonderful glories of the sacred clay known as gopi-candana.

From Garga Samhita, Canto Six, Chapter Fifteen, Translation by Sri Kushakratha Das

Text 15

yasya sravana-matrena
karma-bandhat pramucyate
gopinam yatra vaso 'bhut
tena gopi-bhuvah smrtah

Simply by hearing about Gopi-bhumi, which is so named because the gopis resided there, one become free from the bondage of karma.

Text 16

gopy-angaraga-sambhutam
gopi-chandanam uttamam
gopi-chandana-liptango
ganga-snana-phalam labhet

In Gopi-bhumi gopi-chandana was manifested from the gopis' cosmetics. A person who marks his limbs with gopi-chandana tilaka attains the result of bathing in the Ganga.

Text 17

maha-nadinam snanasya
punyam tasya dine dine
ngopi-chandana-mudrabhir
mudrito yah sada bhavet

A person who daily wears gopi-chandana tilaka attains the pious result of daily bathing in all sacred rivers.

Text 18

asvamedha-sahasrani
rajasuya-satani ca
sarvani tirtha-danani
vratani ca tathaiva ca
krtani tena nityam vai
sa krtartho na samsayah

A person who daily wears gopi-chandana tilaka attains the result of performing a thousand asvamedha- yajnas and a hundred rajasuya-yajnas. He attains the reusult of giving charity and following vows at all holy places. He attains the goal of life. Of this there is no doubt.

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

Text 19

ganga-mrd-dvi-gunam punyam
citrakuta-rajah smrtam
tasmad dasa-gunam punyam
rajah pancavati-bhavam

Twice as sacred as the mud of the Ganga is the dust of Chitrakuta. Ten times more sacred than that is the dust of Panchavati-tirtha.

Text 20

tasmac chata-gunam punyam
gopi-chandanakam rajah
gopi-chandanakam viddhi
vrndavana-rajah-samam

A hundred times more sacred is the dust of gopi-chandana. Please know that gopi-chandana is equal to the dust of Vrindavana.

Text 21

gopi-chandana-liptangam
yadi papa-satair yutam
tam netum na yamah sakto
yama-dutah kutah punah

Even if in the past he has committed hundreds of sins, if a person wears gopi-chandana tilaka, then Yamaraja cannot take him away. How, then, can Yamaraja's messengers touch him?

Text 22

nityam karoti yah papi
gopi-chandana-dharanam
sa prayati harer dhama
golokam prakrteh param

A sinner who daily wears gopi-chandana tilaka goes to Lord Krishna supreme abode, Goloka, which is beyond the world of matter.

Text 23

sindhu-desasya rajabhud
dirghabahur iti srutah
anyaya-varti dustatma
vesya-sanga-ratah sada

In Sindhu-desa there was a king named Dirghabahu. He

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

was cruel and sinful and he was addicted to visiting prostitutes.

Text 24

tena vai bharate varse
brahma-hatya-satam krtam
dasa garbhavati-hatyah
krtas tena duratmana

While he was on the earth this cruel sinner murdered a hundred brahmanas and ten pregnant women.

Text 25

mrigayayam tu banaughaih
kapila-go-vadhah krtah
saindhavam hayam aruhya
mrgayarthi gato 'bhavat

One day he mounted a sindhu horse and went hunting. With a flood of arrows he accidentally killed with a brown cow in that hunt.

Text 26

ekada rajya-lobhena
mantri kruddho maha-khalam
jaghanaranya-dese tam
tiksna-dharena casina

One day, greedy to get his kingdom, with a sharp sword his angry minister killed him in the forest.

Text 27

bhu-tale patitam mrtyu-
gatam viksya yamanugah
baddhva yama-purim ninyur
harsayantah parasparam

Seeing him fallen to the ground and dead, the Yamadutas came, bound him, and, joking as they went, took him to the city of Yamaraja.

Text 28

sammukhe 'vasthitam viksya
papinam yama-rad bali
citraguptam praha turnam
ka yogya yanatasya vai

Seeing this sinner brought before him, powerful Yamaraja said to his scribe Chitragupta, "What is the proper punishment for him?"

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

Text 29

sri-chitragupta uvaca
catur-asiti-laksesu
narakesu nipatyatam
nihsandeham maha-raja
yavac candra-divakarau

Sri Chitragupta said: O great king, he should be thrown into eight million four hundred thousand hells for as long as the sun and the moon shine in the sky.

Text 30

anena bharate varse
ksanam na su-krtam krtam
dasa-garbhavati-ghatah
kapila-go-vadhah krtah

On the earth he did not perform a single pious deed. He killed ten pregnant women. He killed a brown cow.

Text 31

tatha vana-mriganam ca
krtva hatyah sahasrasah
tasmad ayam maha-papi
devata-dvija-nindakah

He killed thousands of deer in the forest. He offended the demigods and the brahmanas. He is a great sinner.

Texts 32 and 33

sri-narada uvaca
tada yamajnaya duta
nitva tam papa-rupinam
sahasra-yojanayame
tapta-taile maha-khale
sphurad aty-ucchalat-phene
kumbhipake nyapatayan
pralayagni-samo vahnih
sadyah sitalatam gatah

Sri Narada said: Then, by Yamaraja's order, the Yamadutas took that sinner and threw him into a terrible, eight-thousand mile wide cauldron of bubbling boiling oil in the hell of Kumbhipaka. The moment that sinner came to it, the boiling oil, which was as hot as the great fires at the time of cosmic devastation, suddenly became cool.

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

Text 34

vaideha tan-nipatanat
prahlada-ksepanad yatha
tadaiva citram acakhyur
yama-duta mahatmane

O king of Videha, as Prahlada was unhurt in the same situation, that sinner was not hurt by the boiling oil. Then the Yamadutas described that great wonder to noble-hearted Yamaraja.

Text 35

anena su-krtam bhumau
ksanavan na krtam kvacit
citraguptena satatam
dharma-rajo vyacintayat

Yamaraja and Chitragupta carefully reviewed the sinner's case and concluded that while he was on the earth the sinner had not for a moment performed even a single pious deed.

Text 36

sabhayam agatam vyasam
sampujya vidhivan nrpa
natva papraccha dharmatma
dharma-rajo maha-matih

Then Vyasadeva arrived in that assembly. Bowing down before Him, and carefully worshiping Him, saintly and noble-hearted Yamaraja asked Vyasadeva the following question.

Text 37

sri-yama uvaca
anena papina purvam
na krtam su-krtam kvacit
sphurad-agny-ucchalat-phene
kumbhipake maha-khale
asya ksepanato vahnih
sadyah sitalatam gatah
iti sandehatas cetah
khidyate me na samsayah

Sri Yamaraja said: When a certain sinner, who had never performed even a single pious deed, was thrown into the terrible boiling oil of Kumbhipaka, the oil suddenly became cool.

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

Because of this my mind is now tortured with doubts.

Text 39

sri-vyasa uvaca
suksma gatir maha-raja
vidita papa-punyayoh
tatha brahma-gatih prajnaih
sarva-sastra-vidam varaih

Sri Vyasadeva said: O great king, the intelligent sages, who have studied all the scriptures, know that the ways of piety, sin, and spiritual progress are very subtle and difficult to understand.

Text 40

daiva-yogad asya punyam
praptam vai svayam arthavat
yena punyena suddho 'sau
tac chrnu tvam maha-mate

Somehow or other, by destiny, this sinner did perform a pious deed, and by that deed he became purified. O noble-hearted one, please hear the story of this.

Text 41

kasyapi hastato yatra
patita dvaraka-mrdah
tatraivayam mrtah papi
suddho 'bhut tat-prabhavatah

That sinner died in a place where from someone's hand some gopi-chandana from Dvaraka had accidentally fallen. Dying in gopi-chandana, that sinner became purified.

Text 42

gopi-chandana-liptango
naro narayano bhavet
etasya darsanat sadyo
brahma-hatya pramucyate

A person who wears gopi-chandana tilaka attains a spiritual form like that of Lord Narayana. Simply by seeing him one becomes free of the sin of killing a brahmana.

Texts 43 and 44

sri-narada uvaca
iti srutva dharma-rajas
tam aniya visesatah

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

vimane kama-ge sthapya
vaikuntham prakrteh param
presayam asa sahasa
gopi-chandana-kirti-vit
evam te kathitam rajan
gopi-chandanakam yasah

Sri Narada said: Hearing this, Yamaraja, who understands the glories of gopi-chandana, took the sinner, placed him a an airplane that goes anywhere one wishes, and sent him to Vaikuntha, which is above the worlds of matter. O king, thus I have described to you the glories of gopi-chandana.

Text 45

gopi-chandana-mahatmyam
yah srnoti narottamah
sa yati paramam dhama
sri-krishnasya mahatmanah

One who hears this account of gopi-chandana's glories becomes exalted. He goes to the supreme abode of Lord Krishna, the Supreme Personality of Godhead.

Quotes on Tilak: *Urdhva Pundra Vidhi*

1. Atharvana Upanisad: Anyone who marks his body with the tilak which resembles the lotus feet of Lord hari becomes dear to the Paramatma. He becomes fortunate and attains liberation.

2. Maha Upanisad: One gets released of all the bondage of samsara when one marks his body with the tilak markings and knows Narayana who is known by karma, jnana and bhakti yogas. Ultimately, he attains Lord Visnu.

3. Agni Purana: A brahmana should not wear the three lined tilak across (tiryak pundra) even for as a joke or play. One should mark his body with the vertical tilak only according to the prescribed rules.

4. Brahmanda Purana: A brahmana should wear urdhva pundra; a ksatriya ardha candrakara (half-moon) pundra; vaisya round shaped pundra; and a sudra tri pundra (horizontal tiryak pundra). A brahmana should never wear the horizontal tilak. He is to be considered a sudra if he wears it.

5. Brahmaratra: One should meditate on Me by chanting Om and should mark his body with vertical tilak daily. Anyone who marks thus attains sayujya liberation.

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

6. Vasista smrti: One should mark the tilak on his forehead as follows: he should start from the nose tip and go till his kesa (hair). The width should be one angula (circa 1 inch). This is urdhva pundra laksana.

7. Sanat Kumara Samhita: Urdhva pundra should be worn with clay and should be worn with a gap inbetween and nicely. In between the two lines, one should mark Sri or Laksmi in the form of Haridhra curna. One should not mark anything else inbetween. Anyone who marks like this is freed from all sinful reactions. Anyone who marks the tilak without any gap is condemned.

8. Padma Purana: Those devotees on whose neck tulasi kanti mala and lotus seed kanti malas are hanging and on whose shoulders there are the markings of conch and cakra and on whose body there are 12 tilak markings, they purify the entire universe immediately.

9. Isvara samhita: Anyone who marks his body with the clay which has touched Lord Visnu's body attains the benefit of an asvamedha sacrifice and is glorified in Visnu's abode. One should mark inbetween the vertical lines mother Laksmi with the help of yellow curna or powder.

Jahnava Nitai das: The tilak is an external symbol of our surrender to Krishna, or to our object of worship. The shape and material used may differ according to the particular process of surrender the sampradaya follows.

In the Sri Vaishnava sampradaya the tilak is made out of the white mud found in anthills. The scriptures tell us that the mud from the base of a Tulasi plant and the white mud from within the ant hill are both pure and best for making tilak. The Sri Vaishnavas will draw two lines representing the feet of Sri Narayana, and in the middle they will put a red line to represent Lakshmi Devi. The red line was originally made from a red stone found within the ant hill. The ants would usually make their ant hill on top of these red stones. When you rub the stone in water, a red color paint is formed. The category of Shakti is generally represented with the color red in all lines, both Vedic and Tantrik. Because the Sri Vaishnava sampradaya begins with Sri Lakshmi Devi, and because they approach Narayana only

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

through Lakshmi, their tilak reflects this process of surrender. The tilaks of each sampradaya actually depict the siddhanta of the sampradaya.

In the Vallabha sampradaya the tilak worn is generally a single vertical red line. This line represents Sri Yamuna Devi. The form of Krishna worshiped in the Vallabha line is Sri Nathji or Govardhana. The consort of the Govardhana hill is the river Yamuna. Their process of surrender goes through Sri Yamuna Devi.

In the Madhva sampradaya the tilak is made out of Gopichandana mud from Dwaraka. Two vertical lines are made out of Gopichandana to represent the feet of Lord Krishna. This gopichandana tilak is nearly identical to that used in the Gaudiya sampradaya. In between a vertical black line is made from the daily coal of the yajna-kunda. In their sampradaya, the process of worship involved nitya-homa, or daily fire sacrifices to the Lord. The remnant coal of the puja was taken each day to mark the forehead. Underneath the black line, a yellow or red dot was put to indicate Lakshmi or Radha. Those who did not perform daily fire sacrifice would only put the simple gopichandana tilak.

In the Gaudiya sampradaya the tilak is usually made out of the Gopichandana mud. Some lineages prefer to use the mud from Vrindavana. The main tilak is basically identical to the Madhva tilak. The slight difference arises due to the emphasis on nama-sankirtana, or the chanting of the Lord's names. In Sri Chaitanya's line, nama-sankirtana is the yajna to be performed in kali yuga, and not the daily fire sacrifice performed in the Madhva sampradaya. As such, the black line made from the ash of the fire sacrifice is not applied in the Gaudiya sampradaya. The second difference arises due to Sri Chaitanya's process of approaching the Lord. In the Gaudiya line one does not approach Srimati Radharani directly, but always indirectly through the servant. To indicate this, the red dot representing Radha is replaced with a tulasi leaf offered at the base of the Lord's feet. Only with the mercy of Tulasi Devi can we develop pure devotion to Sri Sri Radha and Krishna.

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

In the scriptures there are very general descriptions of the procedure for applying tilak. For example it is mentioned that the tilak should be urdhva-pundra, or vertical lines; the body should be marked in twelve locations, etc. But these instructions are very general and leave a lot of the details to the acharyas. Even in a simple point, such as the location of the tilak, one person may interpret the 'shoulder' to start from the arm, where as another may interpret it to start higher up near the neck. This is actually the case in the two branches of the Sri Vaishna sampradaya.

The actual design of the tilak will manifest either through divine revelation or through scientific study. An example of divine revelation is the Gaudiya lineage of Sri Shyamananda. Radharani revealed a portion of her broken bangle to Sri Shyamananda, which he used in applying tilak to his forehead. As a result, his followers apply a unique design of tilak from other branches of the Gaudiya sampradaya.

In other cases, an acharya may scientifically analyze the sampradaya siddhanta and compare its compatibility with the tilak they wear. The external purpose of the tilak is to differentiate the followers of a sampradaya from other classes of philosophers, just as one branch of the armed forces wears a uniform to differentiate itself from the other branches. In such a case, the tilak may change when there occurs a shift or branching of the sampradaya due to philosophical views. The newly formed branch may re-analyze the tilak in connection with its siddhanta and make changes that fully reflect their process of surrender. Such is the case among the two branches of the Sri Vaishnava sampradaya. Due to a difference of opinion in regards to the process of surrender, two distinct tilaks emerged. In any case, the ultimate purpose of tilak is to sanctify oneself and mark the body as the temple of the Lord. The scriptures do not specify in detail the manner that this should be done, and as such it is the acharyas who crystalize the procedures while adhering to the general prescriptions given in the scriptures.

urdhvapundra (Vaisnava) symbolism:

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

1. U = foot of Visnu and Tulasi leaf on His foot, in "U" place between leave empty (it is meant for Visnu) 2. two lines = Brahma and Siva
tripundra (Saiva): three horizontal lines (Padma Purana)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

जन्म : दिनांक 08 जुलाई, 1978 (ज़िला : खरगौन, म०प्र०);

कार्यक्षेत्र : इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व, पत्रकारिता, अधिवक्ता, सामाजिक कार्यकर्ता

शिक्षा : प्रारम्भिक शिक्षा नरसिंहगढ़ (जिला : राजगढ़, म०प्र०); स्नातक, एलएल० बी०, बी०एड०, स्नातकोत्तर, एम०फिल० (विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, म०प्र०), पीएच० डी० (2011, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल, म०प्र०, शोध-शीर्षक : 'मनुस्मृति में वर्णित अपराध एवं दण्ड-विधान : एक मूल्यपरक अध्ययन')

लेखन, संपादन, प्रकाशन : पचास से अधिक राष्ट्रीय, क्षेत्रीय एवं प्रान्तीय संगोष्ठियों में शोध-पत्रों का वाचन; अनेक शोध-पत्रों का प्रतिष्ठित शोध-पत्रिकाओं में प्रकाशन; *'भारतीय इतिहास की विकृतियाँ एवं समाधान'* शीर्षक पुस्तक प्रकाशित (प्रकाशक : भारतीय शिक्षण मण्डल, नागपुर), *'मध्यप्रदेश का पर्यटन'* (सं०), *'मनु का दण्ड-विधान'* (प्रकाशक : अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना), 'महाराजा भोज' (सं०) (प्रकाशक : अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना), 'मध्यप्रदेश के मन्दिर और स्थापत्य' (सं०) (प्रकाशक : अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना)

अभिरुचि : प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं पुरातत्त्व के विविध आयामों और इतिहास-लेखन की विविध प्रविधियों में गहन अभिरुचि और मौलिक शोध-कार्य

सम्प्रति : राष्ट्रीय कार्यकारिणी सदस्य, क्षेत्रीय संगठन-सचिव, मध्य क्षेत्र (म०प्र० एवं छ०ग०), अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना

स्थायी पता : 'आराधना', सरदारपुरा, देवास गेट, उज्जैन (म०प्र०)

पत्र-व्यवहार का पता : 10196, केशव कुञ्ज, आपटे भवन, झण्डेवाला, नई दिल्ली-110055

सचलभाष : 09407528546, 011-23675667

ई-मेल : harshtomar79@gmail.com

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri
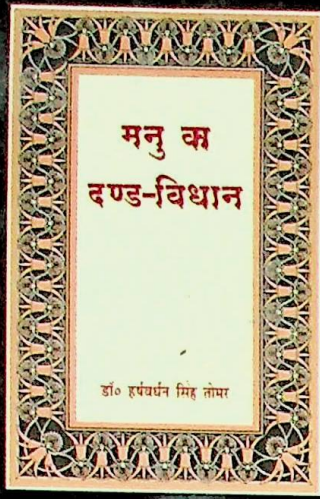
मनु का दण्ड-विधान
प्रकाशन वर्ष : 2014
पृ. सं. : 294
ISBN No : 978-93-82424-09-3
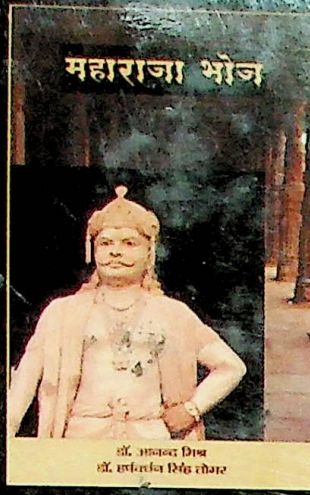
महाराजा भोज
प्रकाशन वर्ष : 2015
पृ. सं. : 150
ISBN No : 978-93-82424-04-8
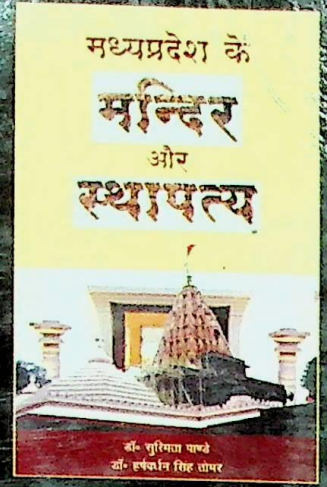
मध्यप्रदेश के मंदिर और स्थापत्य
प्रकाशन वर्ष : 2015
पृ. सं. : 268
ISBN No : 978-93-82424-11-6

प्रकाशक :

अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली-55

प्रकाशन-विभाग
अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना
बाबा साहेब आपटे-स्मृति भवन, 'केशव-कुञ्ज',
झण्डेवाला, नयी दिल्ली-110 055
दूरभाष : 011-23675667
ई-मेल : abisy84@gmail.com
वेबसाइट : www.itihassankalan.org

श्रीमहाकालेश्वर मन्दिर प्रबन्ध समिति
उज्जैन, मध्यप्रदेश
दूरभाष : 0734-2550563
ई-मेल : admin@mahakaleshwar.nic.in
वेबसाइट : www.mahakaleshwar.nic.in